गुरुत्तं

भाग-IV

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

स्वर्ण जन्म जयंती महोत्सव

2017

प्रकाशक

गजेन्द्र ग्रन्थमाला

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर
श्री वसुनंदी जी मुनिराज की स्वर्ण जन्म जयन्ती
के अवसर पर प्रकाशित

कृति : गुरुत्तं भाग-IV

मंगलाशीष : श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका श्री 105 वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान: निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, बौलखेड़ा
गजेन्द्र ग्रन्थमाला, H2/16, II फ्लोर, अंसारी रोड,
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002 मो. 9810035356

संस्करण : प्रथम सन् 2017

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : 100.00 रुपये

मुद्रक : एन.एस. एन्टरप्राईजिज
2578, गली पीपल वाली,
धर्मपुरा, दिल्ली-110006
दूरभाष : मोबाईल : **9811725356, 9810035356**
e-mail : swaneeraj@rediffmail.com

''णाणं पयासओ''

सूर्योदय होने से केवल तमोपुंज का ही अंत नहीं होता अपितु दिव्य प्रकाश का भी उदय होता है। प्रकाश जीवंतता का प्रतीक है, दिवाकर का प्रकाश दिव्यता का द्योतक भी है, उसके माध्यम से प्राणी दिव्यता को प्राप्त करने में समर्थ होता है। प्रकाश को केवल ज्ञान का ही प्रतीक नहीं माना अपितु सुख का कारण भी स्वीकार किया गया है। इसीलिए न्याय ग्रन्थों में इसलिये दीपक को स्वपर प्रकाशी निरूपित करते हुये ज्ञान की महिमा को प्रदर्शित किया है। जिस प्रकार प्रकाश के बिना अंधकार में जीया गया जीवन अनेक दु:ख क्लेश, अशांति, वैमनस्यता, ईर्ष्या, विद्वेष, चिन्ता आदि विकारों को जन्म देने वाला होता है एवं दुष्कृत्यों का निमित्त कारण बन जाता है, उसी प्रकार चेतना में विद्यमान अंधकार मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम और दु:ख रूप प्रवृत्ति कराने वाला होता है।

बहिर्जगत में विद्यमान तमसावृत्त निशा का निराकरण करने के लिये आदित्य समर्थ होता है। अनेक चंद्रादि ज्योतिर्ग्रह निशा में उदित होकर अपने अस्तित्व का बोध कराते हुये शीतल प्रकाश भी प्रदान करते हैं। चेतना के प्रदेशों पर विद्यमान मिथ्यात्वादि के अंधकार को दूर करने में सूर्यादि अनेक ग्रह भी समर्थ नहीं होते, आत्मप्रदेशों में विद्यमान अंधकार को सम्यक्त्व, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र के तीन रत्न ही तिरोहित करने में समर्थ होते हैं। इन तीन रत्नों की प्राप्ति सर्वज्ञ, वीतरागी, प्राणी मात्र के लिए हितोपदेशी जिनेन्द्र देव के माध्यम से ही संभव है किन्तु वर्तमान में दुखमा नाम का पंचमकाल उदयावस्था को प्राप्त है अत: भरत, ऐरावत क्षेत्र में केवली भगवान का यहाँ सद्भाव संभव नहीं है, उनके अभाव में जिनवाणी भव्य प्राणियों के मिथ्यात्वादि अंधकार को दूर करने में समर्थ है।

आ. पद्मनन्दी स्वामी जी ने पद्मनंदीपंचविंशतिका में लिखा है-

सम्प्रत्यस्ति न केवली किल किलौ त्रैलोक्यचूड़ामणि-
स्तद्वाचः परमासतेऽत्र भरत क्षेत्रे जगद्योतिका।
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तेषां समालम्बनं,
तत्पूजा जिनवाचिपूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः॥

वर्तमान में इस कलिकाल में तीन लोक के पूज्य केवली प्रभु इस भरत क्षेत्र में साक्षात् नहीं हैं तथापि समस्त भरतक्षेत्र में जगत्प्रकाशिनी केवली प्रभु की वाणी मौजूद है तथा उस वाणी के आधारस्तंभ श्रेष्ठ रत्नत्रयधारी मुनि भी हैं इसीलिए उन मुनि का पूजन तो सरस्वती का पूजन है तथा सरस्वती का पूजन साक्षात् केवली का पूजन है।

जिनवाणी का संवर्धन, संरक्षण एवं संस्थिति वर्तमान में निर्ग्रंथ साधु आदि चतुर्विध संघ से है। निर्ग्रंथ संत आदि आत्मसाधक जिनवाणी की दिव्य देशना के माध्यम से स्वपर का कल्याण करने में संलग्न हैं। जिनवाणी का प्रचार-प्रसार ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम को ही वृद्धिंगत नहीं करता है अपितु मोहनीय कर्म के क्षयोपशम को वृद्धिंगत करने में भी कारण है तथा अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र, असाता वेदनीय एवं अंतराय कर्म के बंधन से बचाने वाला है, आत्मकल्याण के मार्ग में आने वाले विघ्नों को विलुप्त करने वाला है। जिनवाणी के सम्यक् प्रचार-प्रसार से असातावेदनीय को सातावेदनीय में, अशुभ नामकर्म को शुभ नामकर्म में, नीचगोत्र को उच्चगोत्र में संक्रमित भी किया जा सकता है। जिनवाणी के अध्ययन-अध्यापन से शुभास्त्रव, सातिशय पुण्य का बंध, अशुभ का संवर एवं पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

वर्ष 2016-2017 हम परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुदेव के स्वर्ण जयन्ती वर्ष के रूप में अनेक धार्मिक

अनुष्ठानों के साथ आयोजित कर रहे हैं। इसी श्रृंखला में आचार्य प्रणीत वर्तमान में अनुपलब्ध बहुपयोगी 50 शास्त्रों का प्रकाशन करने का संकल्प निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति आदि संस्थाओं ने लिया है। उसी क्रम में प्रस्तुत ग्रंथ गुरुत्तं-IV आपके श्री करकमलों में स्वपर हित की मंगल भावना से समर्पित है।

हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि आप प्रस्तुत ग्रंथ के माध्यम से स्व-पर कल्याण की भावना को वृद्धिगंत करते हुए जिनशासन की प्रभावना में भी निमित्त बनेंगे। सुधी पाठकों से सविनय अनुरोध है वे प्रस्तुत ग्रंथ से स्वकीय पात्रता के अनुसार आत्मा को पवित्र करने वाली सतत प्रवाही श्रुत गंगा से श्रुतामृत को ग्रहण कर उसका सदुपयोग ही करें। हंसवत् क्षीरग्राही दृष्टि बनाकर गुणों को ही ग्रहण करें, दोषों का परिमार्जन करने में तत्पर हों। प्रमादवश, अज्ञानतावश हुयी त्रुटियों को या चूक को मूल या चूक समझकर ही विसर्जित कर दें। आप जैसे सुधी पाठक इस ग्रंथ रूपी दधिका में उतरकर नवनीत को ही ग्रहण करें क्योंकि कोई भी ग्वाल या गोपी छाछ ग्रहण करने के उद्देश्य से दधि मंथन नहीं करती। अतः आप भी तदैव प्रवृत्ति करें।

मैं अंतस् की समग्र निष्ठा, भक्ति, समर्पण के साथ सर्वज्ञ देव, श्रुत सिंधु एवं निर्ग्रंथ गुरुओं के चरणों में अनंतशः प्रणाम निवेदित करता हूँ तथा परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरुदेव के पद कमलों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमन करता हुआ उनके स्वस्थ संयमी जीवन की एवं आत्म ध्यान के संवर्द्धन की भावना करता हूँ।

जिन श्रुताम्बुज चंचरीक
-मुनि प्रज्ञानंद

पुरोवाक्

तत्त्वबोध मनोरोधः, श्रेयोरागात्मशुद्धया।
मैत्रीद्योतश्च येनस्युस्- तज्ज्ञानं जिनशासने॥

तत्त्वज्ञान, मन का निरोध, आत्म हित का राग, आत्म शुद्धि, मित्रता का प्रकाश जिससे हो उसे जिनशासन में सम्यक्ज्ञान माना गया है।

मिहिर के प्रचंड ताप से संतप्त पथिक जो तृषा से व्याकुल हो, मूर्च्छित हो गया हो, वह मलयगिरि पर चलने वाली शीतल सुगंधित वायु का स्पर्श पाते ही नव ऊर्जा का आहरण करता है और पूर्व पुण्योदय से यदि मलय का शीतल लेप तन को संस्कारित करे तब उसका सर्वाताप दूर हो जाता है। उमंग व उल्लास के साथ वह पुनः अपने मार्ग पर अग्रसर होता है, इसी प्रकार जिनेंद्र भगवान् की वाणी भवाताप से संतप्त प्राणियों के लिए शीतलता प्रदान कर मोक्षमार्ग पर गतिमान् करती है।

''जिणवयणं परमोसही'' जिनेंद्र भगवान् के वचन परम औषधि हैं, जो जन्म, जरा, मृत्यु इन महारोगों का निवारण करने में समर्थ हैं। संप्रति काल में भरत क्षेत्र में जिनेंद्र प्रभु की दिव्य ध्वनि का श्रवण तो नहीं किया जा सकता किंतु जिनराज की वाणी को मुनिराज के मुख से सुनना परम सौभाग्य की बात है। जो मुनि स्वयं तो भव सागर को पार करने में पुरुषार्थरत हैं हीं और श्रुतज्ञान के माध्यम से अन्य भव्य जीवों को भी सद्मार्ग की प्रेरणा दे रहे हैं।

जिस प्रकार पर्वत से प्रस्फुटित हुई निर्झरणी सभी की तृषा को शांत करने में समर्थ होती है उसी प्रकार मुनिराज के वचन भी संसार के दुःख से आकुल व्याकुल प्राणियों के परिणामों को समतामय करने में समर्थ होते हैं। मुनिराज के वचन संसारी भव्य प्राणी को उसी प्रकार

सहायक होते हैं जिस प्रकार नौका का अवलंबन लेने वाले प्राणी समुद्र को पार करने में समर्थ होते हैं।

मुनि के वचनों का श्रवण स्वाध्याय के अन्तर्गत ही आता है। देह को प्रतिबिम्बित करने वाले आदर्श तो बहुत हैं किंतु स्वाध्याय वह आदर्श है जिसमें जीव के परिणाम परिलक्षित होते हैं, स्वयं के गुण व दोषों का अवलोकन किया जा सकता है, आत्म-स्वरूप को जाना जा सकता है। ''स्वाध्याय'' उस माइल स्टोन की तरह है जो अनजान मार्ग पर चल रहे राही की गति को निराबाध व नि:शंकित करते हैं। अर्थात् जिस प्रकार माइल स्टोन पढ़कर व्यक्ति को ज्ञात होता है कि उसका गमन सही दिशा में चल रहा है उसी प्रकार गुरुवचन भी संसारी प्राणी को बताने में समर्थ हैं कि उसके द्वारा किया गया आचरण या व्यवहार मिथ्या है या सम्यक्।

गुरोराज्ञा श्रेयान् सर्वान्, सर्व विघ्न विनाशन:।
सन्मार्गदर्शिका की नित्यं, मनसाऽपि न लंघयेत्॥

गुरु की आज्ञा सभी के लिए कल्याणकारी है, सब विघ्नों का नाश करने वाली है, नित्य ही सन्मार्ग को दिखाने वाली है इसका कभी मन से भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

प्रस्तुत कृति ''गुरुत्तं-IV'' :- पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के प्रवचनों का संकलन है। इसके अंतर्गत 'योग्यता की परख' 'सहनशीलता', 'चिंता', 'समता भाव' जैसे समसामायिक सार्वजनिक सार्वभौमिक विषयों का संकलन है तो वहीं गागर में सागर के समान 'वर्तमान से वर्द्धमान', 'समर्पण', 'मर्यादा' जैसे विषयों को भी लिया गया है।

विश्वभर में अपने ''मीठे प्रवचनों'' के लिए विख्यात पूज्य गुरुदेव की वाणी आबाल-वृद्ध व सामान्य जन से विद्वत् वर्ग तक

अवग्राह्य है। जिस प्रकार माँ के द्वारा मुखरित शब्द शिशु के अंतरंग तक पहुँचता है उसी प्रकार श्रोताओं का अनुभव है कि पूज्य गुरुदेव की मीठी वाणी सीधे ही हृदय पटल पर पहुँचकर अंत: करण को प्रभावित करती है।

गुरुदेव का चिंतन जो शब्दों की पोशाक पहन भव्यों के कर्णगोचर हुआ उसी को यहाँ सभी के कल्याणार्थ लिपिबद्ध किया गया है।

इनसे वंचित रहने वाले भव्य जनों तक गुरु की यह कल्याणकारी वाणी पहुँच सके, इस हेतु इन प्रवचनों का संकलन ''गुरुत्तं-IV'' के रूप में किया गया है।

यदि इस पुस्तक के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से इसका अध्ययन करें। इस पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती, मुद्रण-प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुजनों को पूज्य गुरुवर श्री का मंगलमय शुभाशीष।

गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे। शताधिक वर्षों तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अक्षर शिल्पी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिश: नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु.....

-आर्यिका वर्धस्व नंदनी

अनुक्रमणिका

1.	योग्यता की परख	1
2.	वात्सल्य	12
3.	कर्त्तव्य	23
4.	वर्तमान से वर्धमान	33
5.	समता भाव	42
6.	जाकी रही भावना जैसी	51
7.	मानवता	60
8.	अपना-पराया	68
9.	प्रार्थना और परमात्मा	78
10.	जीवंत दुश्मन-चिंता	87
11.	सबसे बड़ा आतंकवादी	97
12.	जीवन के दोहरे मापदण्ड	107
13.	नि:स्वार्थ सेवा	116
14.	ज्ञान का अजीर्ण	126
15.	संस्कारों का शंखनाद	135
16.	भारतीय संस्कृति	145
17.	ये कैसा पैसा	155
18.	अहिंसा परमो धर्म:	164
19.	''सुखद जीवन''	173
20.	समय	182
21.	''धैर्य''	192
22.	संकल्प	202
23.	ठहराव	211
24.	सहनशीलता	222
25.	मंगल जीवन	232
26.	ऐसी वाणी बोलिये	242
27.	दृष्टा का दृष्टिकोण	253
28.	मर्यादा	263

पर-तत्ती-णिरवेक्खो दुट्ठ-वियप्पाण णासण-समत्थो
तच्च-विणिच्छय-हेदू सज्झाओ झाण सिद्धियरो॥४६१॥

– का.अ.

जो महापुरुष पर की निंदा नहीं करते, सांसारिक किसी वस्तु की वांछा नहीं करते और मन में उठने वाले खोटे विकल्पों को नष्ट करके शास्त्र पढ़ते हैं, उनके ही तत्त्व निश्चय का कारण स्वाध्याय तप होता है।

१. योग्यता की परख

अनादि काल से इस अखिल विश्व में अनंत पदार्थ विद्यमान हैं, नाना पर्यायों से संयुक्त वे अनंत पदार्थ अन्य जीवादि की उन्नति व पतन में समान रूप से कारण रहते हैं। जीव के उपकार और अपकार में जिस प्रकार जीव को मुख्य माना जाता है उसी प्रकार पुद्गल को भी गौण नहीं किया जा सकता। पुद्गल के द्वारा भी जीव के प्रति अनंत उपकार होते हैं और पुद्गल के द्वारा जीव का अनंत प्रकार से अपकार भी होता है। पदार्थ वही है किंतु जो पदार्थ का सदुपयोग करना जानता है उसके माध्यम से अपना व अन्य जीवों का उपकार करने में समर्थ होता है और यदि वह उस वस्तु का सदुपयोग करना नहीं जानता है तो उसके लाभ से वंचित रह जाता है, और वस्तु का दुरुपयोग करता है तो अपना व दूसरों का घात कर लेता है व अपकार कर लेता है।

महानुभाव ! संसार में ऐसे प्राणी अधिक हैं जो वस्तु का संग्रह करते हैं, वस्तु के बारे में सुनकर के, जानकर के यह सोच कर संग्रह करते जाते हैं कि अमुक-अमुक समय में इस-इस वस्तु का प्रयोग करुँगा। किंतु ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो अल्प साधन सामग्री के माध्यम से भी बहुत बड़ी उपलब्धि प्राप्त कर सकते हैं। अधिक साधनों की सम्प्राप्ति भी साधना में बाधक है, जब किसी व्यक्ति के पास अधिक साधन होते हैं तो वह गन्तव्य तक देरी से पहुँच पाता है जिसके पास सीमित साधन होते हैं वह अपने लक्ष्य तक अनुकूलता वश पहुँच जाता है।

अधिक साधन वाला व्यक्ति लापरवाह हो जाता है, कर्त्तव्य च्युत हो जाता है, वह अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने लग जाता है। अधिक साधन वाला व्यक्ति उसकी गुणवत्ता को भी भूलने लगता है किंतु जिसके पास सीमित साधन होते हैं वह उन्हीं सीमित साधनों का

सदुपयोग कर लेता है जैसे किसी महिला के पास 50 साड़ियाँ हैं तो वह बार-बार देखती है और सोचती है इसे पहनूँ या इसे पहनूँ इस विकल्प में उसका समय ज्यादा खराब होता है और फिर भी निर्णय कर नहीं पाती किंतु जिसके पास कुल मिलाकर दो ही साड़ियाँ हैं तो यह नियत है कि एक साड़ी आज पहने दूसरी कल, उसका समय भी खर्च नहीं होगा। ऐसे ही जिसके पास अल्प साधन हैं वह उनका सदुपयोग ज्यादा अच्छा कर सकता है, जिसके पास ज्यादा साधन हैं वह उनका सदुपयोग कर पाये ऐसा नियामक संबंध नहीं है। देखो-

संसार में अनादि काल से अक्षरों का समूह विद्यमान है, वे अक्षर गाली भी बनते हैं, वे अक्षर मंत्र भी बनते हैं। अक्षरों व शब्दों की शक्ति अचिन्त्य है। अक्षर कर्म बंध में भी कारण हैं व कर्म विच्छेद में भी कारण हैं। नीतिकार कहते हैं-

अमंत्र मक्षरं नास्ति, नास्ति मूल मनौषधं।
अयोग्यो पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः॥

संसार में ऐसा कोई भी अक्षर नहीं है जो मंत्र रूप न बन सके, अक्षर चाहे पृथ्वी बीज हो, अग्नि बीज हो, जल बीज हो, मारुत बीज हो या व्योम/आकाश बीज हो। ये पाँच प्रकार के अक्षर अपने प्रभाव को दिखाने में समर्थ होते हैं। यदि कोई व्यक्ति संतापित है तो जब बीजयुक्त अक्षर को संयुक्त करके उसका जाप, ध्यान, चिंतन-मनन करता है तो उसे शांति मिलती है। यदि कोई शीत से परेशान हो रहा है तो अग्नि बीज युक्त अक्षरों का बार-बार उच्चारण करे तो शरीर में भी ऊष्मा पैदा होती है, शीत बाधा दूर होती है। यदि चित्त चंचल हो रहा है तो पृथ्वी बीजों का चिंतन करे मन स्थिर होता है। किसी के मन में तनाव आ रहा है तो व्योम रूप बीजाक्षरों का चिंतन-ध्यान-जाप करने से मस्तिष्क विकार व तनावों से खाली होता है। यदि किसी में कूटस्थता आती जा रही है, निष्क्रीयपना आता चला जा रहा हो तो

3

मारुत बीज रूप अक्षरों मंत्रों का ध्यान के रूप में, जाप के रूप में प्रयोग करे तो वह मारुत बीज उसकी कूटस्थता को दूर करने में समर्थ होता है।

महानुभाव ! जिस व्यक्ति के पास अक्षरों का समूह तो है किंतु ये ज्ञान नहीं है कि किस अक्षर का प्रयोग कहाँ किया जाता है तो वह व्यक्ति उसी तरह से है जैसे किसी के पास बहुत सारी औषधियाँ तो हैं किन्तु वह उन औषधियों का प्रयोग करना नहीं जानता तो उसके लिये वह औषधियाँ लाभदायक नहीं हैं। मेडिकल स्टोर पर पहुँचकर या वहाँ बैठकर कोई व्यक्ति निरोगी नहीं होता, डॉक्टर के पास पहुँचने से, सामान्य औषधि का प्रयोग कर भी वह रोगी निरोगी हो सकता है। ये जरूरी नहीं है कि किसी के पास भोजन सामग्री ज्यादा है तो उसे देखने से भूख की तृप्ति हो जायेगी अपितु भूख में तो अल्प भोज्य सामग्री भी यदि स्वास्थ्य के लिये अनुकूल है तो उसे तृप्ति देने वाली हो सकती है।

किसी ने बहुत सारे व्यंजन बनाये किंतु भूल वश उन व्यंजनों में नमक डालना भूल गया तो नमक न डालने से सारा भोजन नीरस जैसा हो गया, सबने भोजन तो किया किंतु स्वाद नहीं आ रहा और दूसरे व्यक्ति ने नमक डालकर के सूखी रोटी मात्र छाछ के साथ ही सही यदि खिला दी तो जो स्वाद आया उसे सामने वाला बड़े आनंद के साथ खाता है। उसने समझ लिया कि किस वस्तु में उपयोगी क्या है नमक विहीन नाना नीरस व्यंजनों की अपेक्षा सूखी रोटी व नमकीन छाछ आनंददायी है। ऐसे ही किस व्यक्ति के लिये किस अक्षर की आवश्यकता है, किस मंत्र की आवश्यकता है, किस प्रकार की औषधि की आवश्यकता है यह सब देखना जानना बहुत जरूरी है।

संसार में हम संग्रह करने की प्रवृत्ति से ऊब नहीं रहे। एक विद्यार्थी है जो पढ़ता जाता है किन्तु उस पढ़ाई का वह सदुपयोग नहीं

4

कर पाता, उसे बोरियत होने लगती है, एक साधक है वह भी अध्ययन करता है, धर्म के शास्त्रों को कण्ठस्थ करता है, एक शास्त्र कण्ठस्थ किया, दो किये, 10 किये यहाँ तक कि कई साधकों को तो यह कहते भी सुना है कि 20, 40, 50, 60 शास्त्रों को कण्ठस्थ किया। कण्ठस्थ करने से क्या ? वह तो Tap Recorder है चालू कर दिया तो उससे थोड़े ही कुछ होने वाला है। यदि एक शास्त्र भी कण्ठस्थ करके उसका सही चिंतन मनन किया है तो उस एक के माध्यम से भी कल्याण हो सकता है।

एक व्यक्ति ने कहा-कि मैंने अपने जीवन में 108 बार समयसार पढ़ा है। किन्तु क्या अंतर आया? बोला-मुझे बड़ा आनंद आता है, किंतु भैया तुम्हारी प्रवृत्ति तो ज्यों की त्यों है। मतलब? मतलब तो यही है कि अभी तक रात्रि भोजन भी छोड़ नहीं पाया, देवदर्शन भी कभी-कभी करता है और अभिषेक पूजन तो कभी किया ही नहीं है तो ये बताओ तुम्हारे 108 बार समयसार पढ़ने से क्या फायदा ? दूसरी ओर एक मुनिराज से पूछा महाराज श्री क्या आपने समय सार पढ़ा है वे बोले नहीं भईया मैंने तो समय सार देखा है, अपने गुरु महाराज से समय शब्द की व्याख्या सुनी थी कि आत्मा का सार समयसार है, वह रत्नत्रय ही समयसार है उसके अलावा कोई समयसार नहीं है इतना सुनकर ही मैंने यथाजात दिगम्बर अवस्था को स्वीकार कर लिया। तो ये बताओ जिसने 108 बार समयसार पढ़ा उसने समयसार का सदुपयोग किया अथवा जिसने अपने गुरु महाराज के श्री मुख से सुनकर ''समय सार'' अर्थात् आत्मा का सार तो रत्नत्रय है उसे ग्रहण कर लिया उस व्यक्ति ने सदुपयोग किया?

ऐसे ही किसी व्यक्ति के पास बहुत सारी अच्छी-अच्छी पुस्तकें हैं और वह सभी अच्छी पुस्तकों का मात्र संग्रह करता जाता है किंतु एक भी पुस्तक पढ़ता नहीं है और न किसी को पढ़ने के लिये देता

हैं किंतु इकट्ठा करता चला जा रहा है, उनसे उसे तनाव हो गया तो ऐसा व्यक्ति तो अपने समय व जीवन का दुरुपयोग कर रहा है। एक व्यक्ति ऐसा है जो पुस्तकालय से एक पुस्तक लाता है, पूरी पढ़ता है व जमा करके दूसरी ले आता है। व्यक्ति जिसने अपने घर को ही लाइब्रेरी बना लिया, हजारों पुस्तक रख लीं व दूसरे व्यक्ति ने अपने घर में 10 पुस्तक भी नहीं रखी जो उसके पास थीं उन्हें भी लाइब्रेरी में जमा कर दी ताकि जिसके पास समय है वह भी उन्हें पढ़े। मैं तो एक-एक पुस्तक लाता जाऊँगा व पढ़ता जाऊँगा तथा उसका जो सार है, तथ्य है, सारांश है उसको अपने जीवन में लाने का सम्यक् पुरुषार्थ करूँगा।

यहाँ पर भी यही बात कह रहे हैं कि 'अमंत्रमक्षरं नास्ति' संसार में ऐसा कोई भी अक्षर नहीं है जो मंत्र रूप न हो सके, हर स्वराघात मंत्र के रूप में हो सकता है। हर प्रकार की ध्वनि मंत्र बन सकती है और इन मंत्रों की शक्ति अचिन्त्य होती है। ॐकार की ध्वनि वातावरण को परिशुद्ध करती है तो वहीं कटु शब्दों की ध्वनि वातावरण को दूषित करती है। जैसे शुद्ध जल से किसी वस्तु का प्रक्षालन किया जाता है तो मल धुल जाता है तो वहीं गंदे पानी के प्रक्षालन से वस्तु मलिन हो जाती है।

महानुभाव ! आगे नीतिकार कहते हैं-'नास्तिमूलमनौषधं'- ऐसा संसार में कोई पेड़ नहीं है, ऐसी कोई लकड़ी उसका जड़, तना, पुष्प व फल नहीं है जिसे औषधि के रूप में प्रयोग में न लाया जा सके, सभी वृक्ष औषधि बन सकते हैं, सभी वृक्ष औषधि रूप हैं। किसी का तना औषधि बन जाता है, किसी की जड़ औषधि बन जाती है, किसी के पत्ते, किसी के पुष्प तथा किसी के बीज व छाल औषधि बन जाते हैं। किसी का अर्क औषधि बन जाता है, किसी की छाया भी औषधि बन जाती है किंतु जब तक उसके बारे में जानकारी नहीं

है तब तक वह वृक्ष वृक्ष है, लकड़ी है। जैसे किसी व्यक्ति के पास हीरा तो है किंतु उस हीरे का मूल्य जानता नहीं हैं काँच का टुकड़ा समझकर फेंक देता है कौवे को उड़ाने के लिये। ऐसे ही जो व्यक्ति नहीं जानता है उसके पास चाहे बहुत सारी औषधियाँ भी हों फिर भी वे औषधियाँ औषधि नहीं रह पाती मात्र एक वस्तु बनकर रह जाती हैं।

महानुभाव ! मुनिराज के वचन भ्रमरूपी रोग का हरण करने वाले होते हैं। जो उनके वचनों को अपने चित्त में स्थान देता है नि:संदेह उनके वे वचन भी औषधि का काम करते हैं, भ्रमरूपी रोग को, मिथ्यात्व रूपी रोग को दूर करते हैं, अज्ञान, तृष्णा, कषाय, मोहरूपी रोगों को दूर करते हैं और जब वे वचन चित्त से निकल जाते हैं कान के द्वार से बाहर निकल जाते हैं तो वे इस प्रकार कार्य करने में समर्थ नहीं हो पाते। किसी दुकानदार की दुकान पर बहुत सारी माचिस व मोमबत्तियाँ रखी होने के बाद भी उसकी दुकान पर अँधेरा हो सकता है, किसी दुकानदार के पास मिट्टी के बहुत सारे दीपक रखे हैं घी या तेल रखा है फिर भी उसकी दुकान व घर पर अँधेरा है, किसी दुकानदार के पास बहुत सारी टार्च रखी हैं फिर भी दुकान में अँधेरा है, जो इलैक्ट्रीशियन पूरे नगर में बिजली सप्लाई का कार्य करता है किंतु उसके स्वयं के घर में अँधेरा पड़ा है क्योंकि जहाँ स्विच है उसे उसका पता ही नहीं। तो जब तक उसे जानकारी नहीं है तब तक वह सार्थक नहीं हो सकती इसी तरह हमारे और आपके जीवन में बहुत सारी अच्छी बातें होती हैं। देखो-

अच्छा व्यक्ति सिर्फ वह नहीं कहलाता जो सिर्फ अच्छी-अच्छी बातें करता है, अच्छा व्यक्ति वह नहीं कहलाता जिसके विचार अच्छे होते हैं अपितु अच्छा व्यक्ति वह होता है जो अच्छे कार्य करता है, जिसका मन अच्छा होता है, जिसकी आत्मा अच्छी होती है। क्योंकि

7

अच्छी-अच्छी बात व अच्छे-अच्छे विचार तो दीवारों पर भी लिखे जाते हैं तो उनके लिखने से दीवार अच्छी नहीं होगी उसके पास यदि कोई दीर्घशंका या लघुशंका करके गया तो बदबू नष्ट नहीं हो जायेगी। ऐसे ही अच्छे वाक्य बोलने मात्र से हमारी चेतना में विद्यमान बदबू हमारे मन में विद्यमान कषायों की गंदगी नष्ट नहीं होती अच्छे शब्दों का जब तक सही सदुपयोग नहीं करें तब तक वे अच्छे शब्द हमें अच्छा नहीं बनाते।

जैसे कोई हलवाई अनेक मिठाईयाँ बनाकर रखता चला जाता है उसे मिठाई की मिठास का तब तक आभास व अहसास नहीं होगा जब तक कि वह स्वयं उस मिठाई को अपनी रसना इन्द्रिय तक नहीं ले जाता। ऐसे ही कोई भ्रमर यदि पुष्प वाटिका में भ्रमण करता रहता है वो पुष्पवाटिका में घूमते-घूमते जब तक किसी पुष्प पर बैठकर पराग को ग्रहण नहीं करता है तब तक सुगंधि का परिज्ञान नहीं होता। यदि वह भ्रमर अपने मुख में या नासिका में गंदगी के परमाणु दबा करके बैठा रहे तो वाटिका में भ्रमण करते हुये भी सुगंधि का परिज्ञान नहीं हो सकेगा।

महानुभाव ! आगे नीतिकार ने कहा-'अयोग्यो पुरुषो नास्ति' संसार में कोई भी पुरुष अयोग्य नहीं है। अधिकांश व्यक्ति नकारात्मक विचारधारा में जीने वाले होते हैं वह दूसरों की गलतियाँ निकालने लगते हैं। कल ही कोई व्यक्ति पत्रिका पढ़ रहा था उस पत्रिका में कुछ Point दिये थे। उन Points में केवल नकारात्मक बात थी कि उसने ऐसी गलती की, यहाँ यह गलती की। उन्हें लग गया उस व्यक्ति के पास केवल एक ही काम रह गया, इसके पास क्या केवल एक ही चश्मा रह गया लगभग इतने सारे व्यक्तियों की गलती ही गलती देखता जा रहा है इसके अलावा क्या संसार में और व्यक्ति नहीं है इसे अच्छाई दिखाई ही नहीं दी। अरे ! कहीं उसी पृष्ठ पर या

8

आगे-पीछे ऐसा कोई एकाध वाक्य लिख देता कि ये अच्छाई है तो बहुत अच्छा रहता।

हमारा जैन दर्शन अनेकान्तमय है, स्याद्वादमय है, हम केवल एक को गौण करते हैं लुप्त नहीं करते। एक समय एक को गौण व दूसरे को प्रधान किया जाता है, एक समय एक को प्रधान तो दूसरा गौण हो जाता है कभी किसी को पूर्ण रूप से लुप्त या नष्ट नहीं किया जाता है। जो व्यक्ति अपनी पुस्तक में, पत्रिका में केवल बुराई ही बुराई लिखता है तो समझना चाहिये कि वह एकाक्षी है और काना व्यक्ति तो समाज में अशुभ होता है सामने पड़ जाये तो लोग कहते हैं अपशकुन करने वाला हो गया। वह एकाक्षी व्यक्ति अच्छा नहीं माना जाता।

यदि कोई व्यक्ति सिर्फ अच्छाई ही अच्छाई कहता है तो क्या वह अच्छा माना जा सकता है वह भी तो एकाक्षी ही रहा। यदि बुरे व्यक्ति की बुराई को भी अच्छाई के रूप में कह रहा है तो बुरा व्यक्ति बुराई से मुक्त नहीं हो सकता कभी न कभी वह व्यक्ति स्वयं उसकी बुराई को भी स्वीकार कर लेगा। इसलिये अच्छाई को अच्छाई के रूप में देखना चाहिये, बुराई को बुराई के रूप में देखना चाहिये। जिस व्यक्ति के पास इस प्रकार की क्षमता है, कला है, बुद्धि है, विद्या है, हुनर है जिसके पास इस प्रकार सदुपयोग करने का तरीका है वह व्यक्ति उस वस्तु का सदुपयोग करने में सक्षम हो सकता है।

बात आज से बहुत समय पहले की है-भारतीय संस्कृति में पशुपालन की परम्परा दीर्घकाल से रही है, पक्षियों से स्नेह करने की परम्परा रही है। पशु-पक्षी भारतीय संस्कृति में एक परिवार के सदस्य की तरह से आत्मीयता व प्रेम-वात्सल्य को प्राप्त होते रहे हैं। पशु-पक्षियों ने मनुष्यों की रक्षा उस प्रकार से की है जैसे परिवार का व्यक्ति रक्षा करता है। यहाँ तक कि वे पालतू पशु-पक्षी परिवार के

9

किसी सदस्य के अस्वस्थ होने पर, बाहर चले जाने पर या मृत्यु हो जाने पर शोकाकुल व दु:खी होते हैं।

एक व्यक्ति के पास बहुत अच्छी गाय थी, देशी गाय थी वह बहुत अच्छा दूध देती थी। कहा जाता है गाय के दूध में स्वर्ण की मात्रा होती है। वह दूध पाचक व पौष्टिक होता है और यदि कहीं कपिला गाय मिल जाये तो फिर कहना ही क्या ? कपिला गाय जिसकी पूँछ जमीन का स्पर्श करती जाये उसका दूध नि:संदेह अति-उत्तम माना जाता है। गाय के दूध में हजारों रोगों को दूर करने का सामर्थ्य होता है किंतु ऐसा सामर्थ्य अन्य सभी दूधों में नहीं होता। दूध की संज्ञा में तो आक का दूध भी आता है किंतु वह उन गुणों से सहित नहीं होता। वह गाय बहुत उत्तम थी, वह उस गाय के गोरस से उत्तम पदार्थों का सेवन किया करता था, कभी दूध पीता, रबड़ी खाता, कभी मलाई खाता व अन्य मिठाई बनाता कभी दही-पनीर आदि बना-बना कर खाता व आनंदित होता था। उसी खाद्य सामग्री से अपने अतिथियों का भावभीना स्वागत करता।

एक बार उस गृहस्थ के घर में विदेशी सम्राट ने प्रवेश किया, उस गृहस्थ ने उनका बहुत सम्मान व स्वागत किया। उसने गाय के दूध से बनने वाले नाना प्रकार के व्यंजन बनवाये व उस सम्राट को खिलाये। वह सम्राट उन्हें खाकर बहुत तृप्त हुआ, जब वह सम्राट जाने लगा तो उस गृहस्थ ने उसे रत्न से भरा स्वर्ण थाल भेंट करना चाहा तो सम्राट ने कहा मैं इन काँच के टुकड़ों का क्या करूँगा। अगर तुम्हें देना ही है तो मुझे वह वृक्ष दे दो जिससे आपने यह खाद्य पदार्थ बनाये हैं। उसने कहा मेरे पास तो यह गाय है जिसके माध्यम से यह सब पदार्थ बन जाते हैं। वह बोला ये गाय नाम का वृक्ष है, इस पर इतने सारे फल लगते हैं तो ये वृक्ष आप मुझे दे दो। मैं इसका जल सिंचन भी करूँगा, प्रकाश भी दूँगा सब करूँगा। वह बोला इसे जल

सिंचन व खाद नहीं डालना है, इसे तो चारा खिलाना है, पानी भी पिलाना है सर्दी-गर्मी बरसात से इसकी रक्षा करना है तब ये दुग्ध देती है।

वह सम्राट अपने सैनिकों को आदेश देता है और अपने वाहन में बिठा कर उस गाय को अपने देश में ले जाता है। सम्राट जैसे ही अपने देश में पहुँचा उसने ढिंढोरी पिटवा दी कि मैं ऐसा वृक्ष लेकर आया हूँ जो नाना-प्रकार के व्यंजन देता है। पहले सुना था, इतिहास की पुस्तकों में लिखा है कि पहले ऐसे कल्पवृक्ष हुआ करते थे जिनसे नाना प्रकार के उत्तम-उत्तम खाद्य पदार्थ प्राप्त होते थे किंतु पहले सुना था मैं तो आज वैसा वृक्ष लेकर आया हूँ। लोगों ने कहा-वाह ! सम्राट आप तो बड़े पुण्यात्मा हैं। सम्राट ने अपने सेवक को आदेश दिया कि जो कोई भी फल उस वृक्ष से मिले आप उसे लेकर आओ। वह गया, गाय ने ज्यों ही लघुशंका की तो सेवक उसे ले आया और सम्राट ने उस फल को परोसते हुये कहा खाओ-चखो देखो कितना अच्छा फल है। किसी सेवक ने चखा गोमूत्र में तो कोई स्वाद नहीं आया वे बोले महाराज इसमें कोई स्वाद नहीं ये कोई फल नहीं है ये तो बड़ा खराब सा है। तभी दूसरा सेवक दौड़ता हुआ आया बोला गाय ने दूसरा फल दिया है, अबकी बार गाय ने गोबर दिया था, सम्राट ने कहा देखो ये दूसरा फल बहुत अच्छा आया है, लोगों ने चखा तो बड़ा खराब लगा।

सम्राट ने कहा जब मैंने वहाँ खाया तो बहुत स्वादिष्ट फल थे यहाँ क्या हुआ? अब वह सोचता है लगता है उस गृहस्थ ने वृक्ष को बदल दिया या वृक्ष यहाँ पर आकर के रूठ गया है, उसे उचित खाद-पानी नहीं मिला। अपने सेवकों को भेजा व उस भारतीय गृहस्थ को बुलाया। सारा वृत्तांत कहा-आपने हमारे साथ धोखा किया है। वह बोला नहीं महाराज ! मैंने कोई धोखा नहीं दिया, आप उस विधि को भूल गये जिससे वह नाना प्रकार के व्यंजन बनते हैं। आपने गाय को

11

चारा पानी सब दिया ये तो उसका भूसा है दूध तो उसके स्तन के माध्यम से निकलता है उसे छानकर गर्म करके पिओ शरीर को हृष्ट पुष्ट करने वाला वह उसका मिष्ट दूध है। चाहे आप उसकी मलाई खाओ या मावा। उस गृहस्थ ने उस दूध का दही जमाया, नवनीत निकाला पुनः मट्ठा निकाल कर सम्राट को पिलाया। घी निकाला, इस प्रकार सारी विधि उस सम्राट को दिखायी व सिखायी इससे वह सम्राट बहुत संतुष्ट हुआ।

महानुभाव ! गाय वही थी किंतु विधि नहीं जानता था तो गोरस के पकवान ग्रहण नहीं कर सका। ऐसे ही संसार में वह व्यक्ति दुर्लभ है जो संसार में विद्यमान वस्तुओं का सदुपयोग करना जानता है। नीतिकार ने इस श्लोक के माध्यम से यही कहा है-संसार में ऐसा कोई अक्षर नहीं है जो मंत्र न बन सके, अपनी कामनाओं, भावनाओं व इच्छाओं को पूर्ण न कर सके और संसार में ऐसी कोई जड़ी-बूटी या वृक्ष नहीं जो औषधि न बन सके और संसार में कोई भी पुरुष अयोग्य नहीं है कोई सम्राट बनने के लायक है, कोई महामंत्री, पुरोहित, सेनापति, महाजन, शिल्पकार बनने के लायक है। सब अलग-अलग प्रकार की योग्यतानुसार बनने लायक हैं।

योजकस्तत्र दुर्लभः संसार में वस्तु दुर्लभ नहीं है वस्तुओं का सदुपयोग करने की विधि दुर्लभ है जिसके पास सही विधि है वही वास्तव में वस्तु का वास्तविक मालिक कहा जाता है। जिसके पास सही विधि नहीं है वह मालिक होते हुये भी उसका मालिक नहीं है इसलिये मालिक होने के साथ-साथ हमें मालकियत को भी प्राप्त करना है। आप सभी लोग भी वस्तु का सदुपयोग करने का सद्भाव रखें यही आत्म कल्याण का मार्ग है इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

'' श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

२. वात्सल्य

धर्म का मर्म क्या है ? मर्म का आशय रहस्य, गूढ़, अर्क या उसका निचोड़। धर्म की व्याख्या बहुत सीधी है, संक्षेप में ये मान के चलें जो दो हृदयों को जोड़ने में समर्थ है, वह धर्म है। जो तोड़ने का काम करता है वह अधर्म है। व्यवहार धर्म जोड़ने से चलता है निश्चय धर्म अपने अंतरंग में विद्यमान विकारों को, कर्मों को तोड़ने से चलता है। व्यवहार धर्म के लिये एकता के सूत्र में बँधना बहुत जरूरी है, समाज में जब एकता होती है, प्रेम-वात्सल्य का व्यवहार होता है तब नि:संदेह उस समाज में धर्म की वृद्धि होती है प्रभावना होती है। आप लोग जानते हैं जब दो ईंट या पत्थरों को जोड़ना हो तो उसमें सीमेन्ट लगाना जरूरी होता है, सीमेन्ट न हो तो भले ही कितनी सारी ईंटें हों कोई भी महल या भवन ठहर नहीं सकता।

यदि दो लकड़ी के टुकड़ों को जोड़ना हो तो फेविकोल या क्यूफिक्स आदि का प्रयोग करके जोड़ा जा सकता है। यदि दो कागजों को चिपकाना हो तो गम के माध्यम से चिपका सकते हैं। महत्त्व जितना कागज का है उतना ही उस गम का है। ईंट लकड़ी या नक्काशी वाले पत्थरों से ज्यादा महत्व उनको जोड़ने वाले सीमेन्ट, फेविकोल आदि का है। ऐसे ही समाज में एक, दो, चार, छ: व्यक्ति अलग-अलग दिखाई दे रहे हैं तो उनका महत्त्व इतना नहीं है महत्त्व तो उसका है जिस प्रेम और वात्सल्य के कारण उन्हें एक लाइन व एक कतार में खड़ा किया जा सके। यदि वे एक साथ एक लाइन में खड़े नहीं हो सकते, एक चादर पर बैठ नहीं सकते, एक साथ पूजा अभिषेक नहीं कर सकते तो समझो वहाँ पर धर्म की प्रभावना नहीं हो सकती।

आपने देखा होगा गर्मी में साइकिल आदि जब पंचर हो जाती थी उस पंचर को जोड़ने के लिये उस छेद में Direct Solution नहीं लगाना पड़ता, अपितु उस साइकिल वाले ट्यूब को भी घिसना पड़ता है,

टिकरी थोड़ी काटकर उसे भी थोड़ा घिसना पड़ता है फिर दोनों के बीच Solution लगाकर चिपकाना पड़ता है। दोनों को घिसना जरूरी है यदि नहीं घिसेंगे तो सोल्यूशन काम नहीं करेगा अर्थात् समाज में भी जब दो व्यक्तियों को जोड़ना पड़ता है तो दोनों के अहंकारों को घिसना जरूरी है जब तक दोनों का अहंकार घिसेगा नहीं तब तक प्रेम की भाषा उनकी समझ में नहीं आयेगी।

अहंकारी व्यक्ति को कितनी भी प्रेम की भाषा समझाओ, सुनाओ वह चिकने घड़े की तरह से ज्यों का त्यों रहेगा, कितने ही अच्छे शब्दों से उपदेश दो किन्तु वह मान नहीं पायेगा। जब उसे अपने अंहकार का बोध हो जाये, अपनी करनी पर पश्चाताप होने लगे, जब उसे लगे कि हाँ मैं कहीं गलत हूँ, स्वयं के दोष दिखाई देने लगें, जब वह उन दोषों का परिहार करने को तैयार हो जाये, जब वह अपनी चित्त की भूमि को रगड़ने के लिये तैयार हो जाये फिर किसी साध क संत द्वारा दिया गया स्नेह और वात्सल्य उसे नियम से धर्म से जोड़ने में सफल व सार्थक हो जायेगा। जब तक वह स्वयं के अहंकार को तोड़ने के लिये तैयार नहीं होता है, जब तक वह स्वयं अपनी आलोचना करने को तैयार नहीं होता, अपने दोषों को देखता नहीं है, अपनी चित्त की भूमि को स्वच्छ नहीं करता है तब तक धर्म से उसका जुड़ाव नहीं हो पाता।

महानुभाव ! वात्सल्य आत्मा का एक गुण है इसलिये वात्सल्य को सब जगह रखा। चाहे तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने की कारणभूत 16 कारण भावनायें हों, चाहें सम्यक्त्व के 8 अंग हों सब जगह वात्सल्य को रखा। वात्सल्य तो मानव का सबसे पहला गुण है। कोई धर्म को माने या ना माने किन्तु उसके अंदर सबसे पहले प्रेम और वात्सल्य हो। वात्सल्य एक ऐसा गुण है जिसके कारण चेतना के समस्त गुणों के प्रकट होने की संभावना रहती है। वात्सल्य एक ऐसा गुण है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने छोटे व बड़ों से मिल सकता

है, वात्सल्य एक ऐसी चीज है जिसके कारण वह धर्म के समीप पहुँच जाता है। जैसे गंध का लोभी भ्रमर स्वत: गंध के कारण पुष्प के पास पहुँच जाता है ऐसे ही धर्म का लोभी श्रावक या श्राविका वात्सल्य भाव के कारण एक दूसरे के पास पहुँच जाते हैं। ज्यों-ज्यों वात्सल्य भाव का अभाव होता चला जाता है त्यों-त्यों उसे साधर्मी के प्रति उपेक्षावृत्ति होने लगती है उनसे दूर भागने लगता है और भोगियों के साथ बैठने की उसकी इच्छा होने लगती है।

महानुभाव ! आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी जी, जो महान् वाग्मीक, नैयायिक, मंत्र-तंत्र विद् तपस्वी आचार्य हुये उन्होंने आज से लगभग 1900 वर्ष पूर्व जिनशासन की महती प्रभावना की। रत्नकरण्ड श्रावकाचार नाम का ग्रंथ उन्होंने लिखा उसमें उन्होंने वात्सल्य की परिभाषा देते हुए कहा-

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथाऽपेत-कैतवा।
प्रति पत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते॥१७॥

आचार्य महोदय कह रहे हैं-'स्वयूथ्यान्प्रति'-अपने यूथ के प्रति, अपने समूह के प्रति, समूह किसे कहते हैं? बहुत सारी वस्तुओं, भावों, व्यक्तियों के ढेर को समूह कहते हैं। एक को कभी समूह नहीं कहते। परंतु वह समूह तब हो सकता है जब वह समूह एक ही जाति का, एक ही वर्ण का, एक ही किस्म का वस्तु या व्यक्ति का हो यदि अनेक-अनेक प्रकार का है तो समूह नहीं कह सकते, तब कहेंगे कि नाना प्रकार की वस्तुयें भरी पड़ी हैं। एक प्रकार की बहुत सी वस्तुओं का तो समूह हो सकता है जैसे जंगल में पशु हैं एक गाय है, बैल है, बकरी, भेड़, सियार, चीता, खरगोश इन सबको ये नहीं कहेंगे कि समूह है बल्कि ये कहेंगे कि बहुत सारे जानवर हैं। भेड़ों का समूह, हाथियों का झुंड, मयूर का समूह अर्थात् समूह एक प्रकार का होता है।

15

एक ही विशेषता हो चाहे जाति की अपेक्षा से, चाहे वर्ण की अपेक्षा से, चाहे गुणवत्ता की अपेक्षा से उन सबमें एक विशेषता होती है तो वह एक समूह हो सकता है। यदि विशेषता एक जैसी नहीं है तो समूह नहीं हो सकता। जैसे खरगोश खरगोश के साथ बैठते हैं, तोते-तोतों के साथ, भेड़-भेड़ के साथ, बकरी-बकरी के साथ जब ये अपने समूह के साथ बैठते हैं तो मनुष्य को भी मनुष्य की समाज में बैठना चाहिये। इतना ही नहीं पशुपक्षियों में इतना प्रेम वात्सल्य देखा गया है कि एक दूसरों के कष्ट दूर करने के लिये स्वयं कष्ट लेने को तैयार हो जाते हैं। ये भाव मनुष्यों में भी आना चाहिये, क्योंकि 'स्वयूथ्यान्' अपने समान दर्जे वाले उन सभी व्यक्तियों के प्रति सद्भाव-समीचीन भाव होना चाहिये, असद् या कुभाव नहीं, मिथ्या भाव नहीं और भाव का अभाव भी नहीं होना चाहिये। क्योंकि जहाँ भावों का अभाव हो गया फिर तो आगे की वृद्धि रुक ही जायेगी।

भाव सद्भाव के रूप में हों, सुभाव रूप में हों तो स्वभाव की प्राप्ति भी हो सकती है। कुभावों, या दुर्भावों के माध्यम से कभी भी हमें स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती। जैसे दो पत्थरों के बीच कंकड़ रखकर चिपका नहीं सकते हैं ऐसे ही कुभाव के माध्यम से दो साधर्मी को मिला नहीं सकते। सद्भाव के माध्यम से ही हम दो धर्मात्माओं को जोड़ सकते हैं। ऐसी बात कहो जिससे दो धर्मात्माओं के हृदय जुड़ जायें, प्रेमभाव जाग्रत हो।

संसार में एक दूसरे की निंदा करने वाले व्यक्ति तो बहुत हैं किंतु वात्सल्य की डोर से बंधने व बांधने वाले बहुत कम हैं इसलिये निंदक व्यक्तियों से सर्वदा दूर रहना चाहिये। वे व्यक्ति कैंची कहलाते हैं। कैंची सिर्फ कपड़े को काट सकती है जोड़ नहीं सकती, कैंची चाहे छोटी हो या बड़ी हो, लोहे की हो या पीतल की हो, चाँदी की हो या सोने की कैंची कैंची ही होती है। ऐसे ही व्यक्ति चाहे उच्च घराने के हों, पढ़ें लिखे हों या विद्वान् हों यदि कैंची का काम करते

हैं तो उन व्यक्तियों से बहुत सावधान रहना चाहिये। सुई छोटी सी होती है पर दो वस्त्रों को जोड़ने का कार्य करती है। ऐसे ही कोई छोटा सा व्यक्ति आपको आपके मित्र से मिला दे और आपके मनमुटाव या भ्रम को दूर कर दे, आपस के तनाव को दूर कर दे, आपके व आपके मित्र के चित्त को निर्मल बना दे तो वही धर्मात्मा पुरुष है।

दोनों चित्तों की कषाय को जिसने शमित कर दिया, जिसने दोनों को गले मिला दिया वही धर्मात्मा है और जब मन में ये भाव रहता है कि मैं उसके सामने क्यों झुकूँ, या जो व्यक्ति अग्नि में घी का काम करने वाला होता है जो दूसरों से कहता है वो तेरे बारे में बुराई कर रहा था, तो ऐसे व्यक्ति कभी भी धर्म के संरक्षक, प्रवर्तक, संवाहककर्ता, समृद्धिकर्ता या उत्पादक नहीं बन सकते वे तो धर्म के विघातक हैं। जैसे अग्नि के माध्यम से लकड़ी की रक्षा नहीं होती लकड़ी जल जाती है ऐसे ही अधर्म के माध्यम से, निंदा चुगली के माध्यम से, वैमनस्यता के माध्यम से धर्म वृद्धि को प्राप्त नहीं होता नष्ट होता चला जाता है। जैसे जल सिंचन के माध्यम से वृक्ष फलीभूत, पुष्पित होते हैं, पल्लवित होकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ऐसे ही धर्मामृत के माध्यम से चित्त निर्मल होते है।

धर्मामृत वह वात्सल्य है जिसके माध्यम से धर्म की संवृद्धि होती है। तो कहा अपने समूह के प्रति सद्भावना रखो यदि सामने वाले से गलती भी हो जाये तो भी कुभावना मन में मत लाओ। संकल्प ले लो कि मैं किसी के प्रति मन में कुभाव पैदा नहीं करूँगा भले ही वह कैसा भी है मैं मन में दुर्भाव आने ही नहीं दूँगा। ऐसे संकल्प तो बहुत ले लेते हैं कि मैं आजीवन हरी नहीं खाऊँगा या ये फल नहीं खाऊँगा ये तो कोई बहुत बड़ी साधना नहीं है, संकल्प लो तो ऐसा कि मैं अपने साधर्मी के प्रति कभी कुभाव नहीं रखूँगा, मैं यदि विद्वान् हूँ तो दूसरे विद्वान् से ईर्ष्या नहीं रखूँगा, मैं श्रावक हूँ तो दूसरे श्रावक से ईर्ष्या नहीं करूँगा, मैं किसी साधक, श्रावक, त्यागीव्रती

की एक दूसरे से निंदा नहीं करूँगा अपितु उनके गुण प्रकट करूँगा। यदि मुझे बुराई दिखाई दे रही है तो सबसे पहले उस बुराई को मैं अपने अंदर से दूर करूँगा फिर जाकर के निवेदन पूर्वक उनसे कहूँगा कि महात्मन् ! हे बंधु ! आपसे निवेदन है कि आपका ये दोष मुझे दिखाई दे रहा है आप समर्थ हैं इस दोष को दूर करने में, तो बहुत अच्छा रहे यदि इसे दूर कर दें। देखो ! बर्तन को महिलायें प्रतिदिन साफ करती हैं यदि नहीं साफ करें तो गंदे हो जायेंगे इसी प्रकार अपने चित्त की सफाई भी प्रतिदिन करना चाहिये।

एक महात्मा जी थे वे प्रतिदिन अपने लोटे को बार-बार मांजते थे, साफ करते थे, शिष्यों ने पूछा महात्मा जी आप ऐसा क्यों करते हो ? तो वे बोले-मैं आप लोगों को कुछ सिखाना चाहता हूँ -जैसे लोटे को 4 दिन साफ न करो तो उस पर गंदगी जम जाती है ऐसे ही अपने चित्त को रोज-रोज साफ न करो तो इस पर भी गंदगी जम जाती है। ऐसे ही हमको अपने चित्त को साफ करना जरूरी है। जो व्यक्ति आलसी होते हैं, धर्म विरुद्ध होते हैं वो कहते हैं भगवान् मुझे एक बार में ऐसा दे दें कि मैं जिंदगी भर चैन से बैठा रहूँ किंतु धर्मात्मा कहता है भगवान् मैं तेरे पास प्रतिदिन आऊँगा तेरी भक्ति करूँगा, नित्य कुँआ खोदना है नित्य पानी पीना है, नित्य रोटी बनाना है नित्य खाना है, एक बार बनाकर के जिंदगी भर खाना नहीं चाहता। जो व्यक्ति पुरुषार्थी होता है वह धर्म करने से, साधना करने से पीछे नहीं हटता वो कहता है मैं जिंदगी के अंतिम क्षण तक त्याग तपस्या संयम का पालन करता रहूँगा आज पालन करके चैन से बैठना नहीं चाहता।

आप 'सनाथा पेत-कैतवा' शब्द को सुन रहे थे तो सनाथा का अर्थ होता है कि सद्भावों के साथ जो साधर्मी बंधु ये कहता है कि मैं तुम्हें पाकर के सनाथ हो गया अभी तक मैं अनाथ था, आप से सहित होते ही मैं सनाथ हो गया और आप से रहित होकर मैं अनाथ

18

हो जाता हूँ जैसे सनाथ में से 'स्' निकाल दो तो वह अनाथ हो जाता और अनाथ में स् लगा दो सनाथ हो जाता है। सद्भाव का चित्त जिसके साथ में मिल जाता है तो वह सनाथ हो जाता है सद्भाव के चित्त का जहाँ अभाव हो जाता है तो सनाथ से अनाथ हो जाता है।

हम दूसरों से कहें कि हम तुम्हें पाकर सनाथ हो गये, सामने वाला कहेगा-भईया हमें शर्मिंदा मत करो तुम्हें पाकर तो मैं सनाथ हो गया अभी तक तो मैं अनाथ जैसा पड़ा था। धर्म में कोई छोटा बड़ा नहीं होता एक कहे तुम्हारे माध्यम से मेरे धर्म का पालन हो रहा है, दूसरा कहे तेरे माध्यम से मेरे धर्म का पालन हो रहा है। श्रावक कहे-महाराज आपने मेरे धर्म की रक्षा की है मैं आपका जीवन भर उपकार नहीं भूल सकता, तो श्रमण को भी कहना चाहिये कि श्रावक महोदय आप दानादि देकर हमारे धर्म की रक्षा करने में निमित्तकारण बन रहे हैं, आप सहयोगी हैं, आप हमारे धर्म के रक्षक हैं आप हमारे बंधु हैं।

जब हम दूसरे को अपना सनाथ मानते हैं, चाहे अरिहंत भगवान को, चाहे श्रमण को, चाहे धर्मात्मा श्रावक को या जिनवाणी को उनके सद्वाक्यों को अपना मित्र मानते हैं तब हम भी किसी के साथ मिलकर उसको सनाथ बना सकते हैं। कोई हमारा आश्रय पाकर भी कह सकता है कि आपको पाकर मैं सनाथ हो गया। 'अपैत-कैतवा' किन्तु सनाथ बनने और बनाने का काम कैतवा से अपैत होकर के (कैतवा कहें तो छल-कपट-मायाचारी) मायाचारी और छल कपट का परिणाम रंचमात्र भी मन में न हो। मायाचारी और वात्सल्य दोनों एक साथ ऐसे नहीं ठहरते जैसे पेट्रोल और अग्नि एक साथ नहीं ठहर सकते। पेट्रोल नीचे रहती है और अंदर डिब्बी होती है जिस पर चोट पड़ती है चिंगारी निकली पेट्रोल उसे पकड़ लेती है। तो अग्नि पेट्रोल के साथ रह नहीं सकती। क्योंकि अग्नि की चिंगारी पेट्रोल को मिल

गयी तो पेट्रोल नष्ट हो जायेगी दोनों अलग-अलग रहते हैं ऐसे ही मायाचारी और वात्सल्य एक साथ नहीं रह सकता।

वात्सल्य उसी की चित्त की भूमि में उत्पन्न हुयी फसल है जिसका चित्त सरल है। जैसे उपजाऊ भूमि में खेती की जा सकती है, कीचड़ नदी तालाब में कमल खिलते हैं, पर्वत में कमल नहीं खिलते, पर्वत पर खेती नहीं की जा सकती ऐसे ही कठोर हृदय में वात्सल्य का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। वात्सल्य का प्रादुर्भाव सरल चित्त के साथ होता है जहाँ छल कपट नहीं है। जिसके चित्त में मायाचारी का तेजाब भरा हुआ है उसके चित्त में शक्कर डालने का क्या लाभ ? वह तेजाब शर्बत नहीं बन जायेगा, शक्कर डालने से तेजाब तो तेजाब ही रहेगा।

महानुभाव ! 'अपेत-कैतवा' मायाचारी को दूर करने में जो समर्थ है, वही अपने चित्त को सरल और सहज बनाने में समर्थ है। जो बालकवत् चित्त बनाकर के अपने चित्त की बात को दूसरों से कहते हैं, तो उनके चित्त की बात दूसरों के चित्त तक जल्दी पहुँच जाती है। जैसे चित्रों की बात तो चित्रों तक ही रह जाती है किन्तु चारित्र की बात चारित्र तक पहुँच जाती है। इसलिये जब चित्त निर्मल होता है तब जिसका चित्र खींचा जाता है वह सुंदर दिखाई देता है उसे देखकर चरित्र निर्मल होता है। वह उसके चारित्र को अपने चरित्र से देखता है और निर्मल करता है। अत: जब चित्त निर्मल होता है तब अपना चित्र भी दूसरे के चित्त के निर्मल होने में निमित्त बन जाता है।

चित्र चित्र को देखता है, चरित्र-चरित्र को देखता है और चित्त-चित्त को देखता है जिसमें जितनी ज्यादा शुद्धि होती है वह उसके प्रति आकर्षित होता है। चित्र चित्र की ओर आकर्षित होता है। अर्थात् पुद्गल माटी की देह दूसरों की मूर्ति को देखकर आकृष्ट होता है, संयमी दूसरे संयमी को देखकर उसके प्रति आकृष्ट होता है और

20

सरल सहज चित्त वाला दूसरे के सरल सहज चित्त को देखकर के उसके चित्त तक पहुँच जाता है और अपनी बात शब्दों में कहे या बिना शब्दों से कहे उसकी बात सीधी-सीधी उसके चित्त तक पहुँच जाती है और उसकी बात को वह स्वीकार कर लेता है।

कुटिल हृदय वाले माता-पिता यदि अपने बेटे को सुधारने का प्रयास करते हैं कहते हैं बेटा-बीड़ी सिगरेट नहीं पीना, बेटा ऐसा काम नहीं करना और यदि उसका पिता स्वयं ही बीड़ी सिगरेट पीता है तो बेटा उस आदत को छोड़ता नहीं कि जब वे खुद पीते हैं तो मैं क्यूँ छोडूँ ? पिता के हजार बार समझाने पर भी वह दुर्व्यसन नहीं छोडता वही बेटा जब साधु की शरण में आता है और साधु ने बड़े प्यार से पुचकारते हुये उसे समझाया कि रे भोले बालक ! क्यों अपने मनुष्य भव को गंवा रहे हो तुम क्यों इन कुसंस्कारों में पड़कर अपनी आदत खराब कर रहे हो, तुम भी इनको छोड़कर सुसंस्कारी बन सकते हो। साधु ने जब ये मीठे वचन कहे तो उनकी अंतरआत्मा से जो आवाज निकली वह आवाज बालक की अंतरआत्मा तक पहुँच गयी। जो पिता के वचन थे वे मुख से निकले और कान तक पहुँचे चमड़े से निकले शब्द चमड़े तक जा सकते हैं, मन से निकले शब्द मन तक पहुँच सकते हैं चेतना से निकले शब्द चेतना तक पहुँच सकते हैं। महानुभाव ! जब संत ने सरल हृदय से बड़ी विशुद्धि के साथ उसे समझाया तो बात उसकी समझ में आ जाती है।

छल कपट और मायाचारी के साथ कभी भी वात्सल्य भाव मन में बैठता नहीं है। जैसे दीपक की जलती हुयी बत्ती नदी-समुद्र या तालाब में फेंक दी जाये तो बुझ जाती है ऐसे ही वात्सल्य का दीपक मायाचारी के सरोवर में बुझ जाता है। सरलता सहजता के साथ यदि वात्सल्य भाव चलता है तो दीर्घकाल तक चलता है। आगे पूज्य आ. भगवन् कह रहे हैं-

21

'प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते'- वात्सल्य वह कहा जाता है जहाँ योग प्रतिपत्ति हो। किसके प्रति प्रणाम करना है, किसके प्रति हाथ जोड़ना है, किसके प्रति चरण स्पर्श करना है, किसके प्रति माथा चरणों में रखना है यह सब यथायोग्य होना चाहिये। ऐसा नहीं कि असंयमी के प्रति व्यक्ति इतना घुल मिल गया कि उसके चरणों में माथा टिका दिया और संयमी को देखकर तो दूर से ही हाथ जोड़कर चलता बना। तो ऐसा नहीं करना, हमें किसके प्रति कितना व्यवहार करना है यह ज्ञात होना चाहिए। जैसे माता-पिता छोटे बालक का पालन पोषण बड़े ध्यान से करते हैं ख्याल रखते हैं माँ क्षण भर के लिये भी अपने बालक को स्वयं से दूर नहीं करती। वहीं माँ जब बालक बड़ा हो जाता है तो दो-दो चार-चार दिन तक माँ व बालक का वियोग भी रहता है मिल नहीं पाते। तो वात्सल्य कितना कहाँ देना हैं 'यथायोग्य प्रतिपत्ति' जो नया श्रावक धर्म के क्षेत्र में आया या नये मुनि, नये त्यागीव्रती धर्म के क्षेत्र में आये उनको प्रोत्साहन दो जिससे वे और आगे बढ़ते चले जायें यदि जो बहुत पुराने हैं उनको आपने बहुत स्थान देना शुरू कर दिया और नये की उपेक्षा करना प्रारंभ कर दिया तो जिनशासन की समृद्धि नहीं हो सकेगी, वे धर्म के क्षेत्र में नहीं आ पायेंगे।

छोटे-छोटे पौधे व अंकुरों की सुरक्षा ज्यादा की जाती है जब वे 20-20, 30-30 फुट के पेड़ हो जाते हैं तब उनकी बाड़ नहीं लगायी जाती। बाड़ तो छोटे पौधे, अंगूर की बेल आदि पर लगायी जाती है साथ-साथ ऊपर से जाल भी डाला जाता है ताकि पक्षी चुग नहीं जाये, जो जितने छोटे होते हैं उनकी उतनी सुरक्षा की जाती है। जो जितने लघु हैं उनके प्रति वात्सल्य भाव उमड़-उमड़ कर आता है जैसे माँ के अंदर वात्सल्य उमड़-उमड़ कर आता है। अपने छोटे बालक को देखते ही आँचल में दूध आ जाता है। अपने 60 साल के पुत्र को देखकर क्यों आँचल में दूध नहीं आता। अब उसके प्रति यथायोग्य

प्रतिपत्ति करनी है। उससे तो बस प्यार से बोल लिया इतना ही पर्याप्त है और छोटे बालक को देखकर दुग्ध स्तन में आ गया इससे यह सिद्ध होता है कि वात्सल्य भाव (प्रतिपत्ति यथायोग्य) यथायोग्य देना है ऐसी बात यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं। यदि जहाँ वात्सल्य देना चाहिये वहाँ हमने नहीं दिया तो धर्म का विघात हो गया और जहाँ नहीं देना चाहिये वहाँ दिया तो वहाँ भी विघात की संभावना है। जैसे अंकुरों को सुरक्षित नहीं किया जाल से नहीं ढका तो वे अंकुर उजड़ गये, सूख गये और बड़े-बड़े पेड़ों को जाल से, कपड़े से ढक दिया उन्हें प्रकाश, हवा नहीं मिली तो वे भी मर गये।

किसी ऐसे व्यक्ति को जो निष्ठुर है, धर्म विरोधी है, संहारक है उसे प्रोत्साहन देने से धर्म का विघात होता है तथा जो धर्म के प्रति समर्पित है अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहता है उसके प्रति यदि वात्सल्य दिया जाता है तो नि:संदेह धर्म की वृद्धि होती है जिनशासन की प्रभावना होती है। अब हम और आप मिलकर के अपने चित्त को निर्मल बनायें और वात्सल्य की सरिता अपने चित्त के हिमालय से प्रवाहित करें।

हम भावना भाते हैं कि हमें दूसरों के पास से वात्सल्य मिले किन्तु उससे पहले वात्सल्य को अपने हृदय से तो निकालो हमारे हृदय रूपी हिमालय से पहले वात्सल्य की गंगा बहे तब तो हमें सब जगह वात्सल्य की गंगा दिखाई देगी अन्यथा यदि हमारा हृदय शुष्क पड़ा रहेगा तो हमें भी कहीं वात्सल्य दिखाई नहीं देगा। इसलिये हम वात्सल्य अपने चित्त में पैदा करें, वात्सल्य से धर्म व धर्मात्माओं की रक्षा करें, उससे अपनी आत्मा की व अपने गुणों की रक्षा करें यही आत्मा का कल्याण करने वाला एक अनुपम गुण है इसे आप और हम प्रकट करने का सम्यक् पुरुषार्थ करें। ऐसी आप सभी के प्रति मंगल भावना भाता हूँ और अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय

३. कर्त्तव्य

संसार में प्राय:कर के दो प्रकार के मनुष्य हैं एक वे जो कर्त्तव्य का पालन करना चाहते हैं और दूसरे वे जो केवल अधिकारों का प्रयोग करना चाहते हैं। जो केवल अधिकारों का प्रयोग करना चाहते हैं वे बिना कर्त्तव्य के अधिकारों को प्राप्त नहीं कर पाते और जो अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं उन्हें अधिकार सहज में ही प्राप्त हो जाते हैं। उपस्थित पुण्यात्मा महानुभाव ! कर्त्तव्य शब्द अपने आप में इस अर्थ को ध्वनित करता है 'करने योग्य कार्य' करने योग्य कार्य क्या हैं? ये करने योग्य कार्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार परिवर्तित होते हैं। कहाँ पर तुम्हें क्या करने के योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है, किस समय तुम्हें क्या करने योग्य है या नहीं, किस व्यक्ति को क्या करना चाहिए, किसे क्या नहीं करना चाहिये, कब कौन सा कार्य सर्वोत्तम है कब कौन सा कार्य नि:संदेह निकृष्ट कहा जा सकता है। कार्य वही है किन्तु द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अनुसार उसकी उपयोगिता भी बदलती चली जाती है।

जैसे एक छोटा बालक उससे कोई अपराध हो जाता है तो वह अपराध माता-पिता के द्वारा क्षमा कर दिया जाता है, माता-पिता का कर्त्तव्य है उस समय क्षमा कर देना वे उसे संस्कार दे रहे हैं। कोई विद्यार्थी है उसने अभी स्कूल में प्रवेश किया है, उससे गलतियाँ हो जाती हैं वह क्षमायोग्य है। संघ में किसी शिष्यवर्ग ने प्रवेश किया उससे भूल हुयी तो गुरुदेव के द्वारा संघस्थ गुरुभाईयों के द्वारा प्रेमपूर्वक समझा दिया गया उसकी गलती को सुधारने का प्रयास किया गया और क्षमा कर दिया गया, यह प्रारम्भिक दशा थी।

एक व्यक्ति ऐसा है जो साधना के क्षेत्र में चरम सीमा पर पहुँच गया उससे वही अपराध होता है तो पुन: उसके गुरु केवल क्षमा नहीं

करते और केवल समझाते भी नहीं हैं अपितु उसे प्रायश्चित भी देते हैं। स्कूल में वही विद्यार्थी जिसे जाते-जाते कई वर्ष बीत गये उससे वही गलती हुयी जो उससे पहले दिन हुयी थी तो स्कूल के अध्यापकगण उसे क्षमा नहीं करते, समझाते नहीं अब उनका कर्त्तव्य उसे दण्ड देना भी हो जाता है। उसी प्रकार माता-पिता के सामने उनका वही बालक जिसे दीर्घकाल से संस्कार दिये किन्तु उसने पुनः वही गलती की जो पूर्व में की थी तो माता पिता अब बालक को डाँटते हैं उसे दण्ड भी देते हैं। क्यों ? क्योंकि पहले प्रारंभिक दशा थी और अब दशा बदल गयी। द्रव्य बदल गया द्रव्य के बदलने से कर्त्तव्य भी बदलते हैं।

क्षेत्र-एक व्यक्ति पहले मंदिर में था उस समय उसका कर्त्तव्य कुछ और था, वही व्यक्ति जब दुकान पर है तब उसका कर्त्तव्य कुछ और है, वही व्यक्ति जब घर पर है तब उसका कर्त्तव्य कुछ और है, वही मित्रों के साथ है तब कर्त्तव्य कुछ और है। कर्त्तव्य अलग-अलग बदलते चले गये। स्थान के बदलने से कर्त्तव्यों में भी बदलाव आता चला जाता है क्योंकि एक ही प्रकार की प्रक्रिया वह हर स्थान पर करेगा तो निःसंदेह वह कुशल नहीं कहलायेगा वह मूर्ख भी सिद्ध हो सकता है और उसका दुःपरिणाम भी उसे भोगना पड़ सकता है।

काल-काल के अनुसार भी कर्त्तव्य में अंतर आता है। काल कौन सा है ? प्रातःकाल का समय है या संध्याकाल का समय है या मध्याह्न काल का समय है। जैसे किसी व्यक्ति ने भोजन माँगा जब भोजन के समय भोजन माँगा और भोजन देने वाले ने भोजन दे दिया उस समय भोजन देना उसका कर्त्तव्य था, किंतु रात्रि में उसने भोजन माँगा तो मना कर दिया, चाहे वह भोजन देने वाला रसोईया ही क्यों न था, उसने कहा अब समय भोजन का नहीं है, वह समय विश्राम करने का है। उस समय उसे अपने कर्त्तव्य का पालन करना है व दूसरे

के लिये भी कर्त्तव्य का पालन कराने में सहयोगी बनना है। यह उसकी सहज प्रवृत्ति थी, तो समय के अनुसार भी कर्त्तव्य बदलते हैं। एक ही व्यक्ति के साथ समय के अनुसार उसने अलग-अलग व्यवहार किया।

वही एक व्यक्ति जिसके परिणाम पहले क्षमाजन्य थे, उसके परिणाम सरल और सहज थे, अच्छे परिणाम थे फिर भी उससे कोई चूक होती है तो समझदार व्यक्ति उसे बड़ी सहजता में सरल भाषा में समझा देता है। जब बाद में समझाने के उपरांत भी वह व्यक्ति लापरवाह होकर वैसी भूल करता है तो वह प्रायश्चित का भागीदार हो जाता है। महानुभाव ! जिस समय परिणाम सरल और सहज थे अर्थात् भगवान् ऋषभ देव के समय में जब मुनिराज साधना व तपस्या करते थे तो कर्त्तव्य में कई बार चूक हो जाती थी तब उनके प्रायश्चित जघन्य व लघु थे किंतु भगवान् महावीर स्वामी के समय में शिष्य वक्र स्वभावी हो जाने के कारण अपने कर्त्तव्य में चूक करते तो प्रायश्चित दीर्घ व कठोर रहे। मध्यम तीर्थंकर जो रहे उनके बीच में साधक से यदि कहीं गलती हुयी तो प्रायश्चित सहज और मध्यम थे।

जो व्यक्ति द्रव्य, क्षेत्र काल भाव को नहीं जानता एक ही सिद्धान्त की तरह से अपने कार्य को कर्त्तव्य मान के करता है तो वह कर्त्तव्य के फल को प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है। जैसे माली का कर्त्तव्य है पौधों का सिंचन करना तो पौधों का सिंचन कब करना ? जब बारिश हो रही है तब ? नहीं, उस समय जल सिंचन न करके उनकी सुरक्षा करनी है और जब बारिश नहीं हो रही है तब उसका जल सिंचन करना है। यदि वृक्ष को नुकसान पहुँचाने पशु पक्षी या जानवर आदि आ रहे हैं तब उस समय उनकी रक्षा करने वहाँ बैठना है।

तो ये कर्त्तव्य भी अलग-अलग प्रकार से हैं। कर्त्तव्य हर व्यक्ति के अनुसार अलग-अलग होते हैं। एक पद के अनुसार कर्त्तव्य होते हैं,

26

अपनी क्षमता के अनुसार होते हैं, अपनी-अपनी जिम्मेदारी के अनुसार कर्त्तव्य होते हैं जो सबके कर्त्तव्य एक से मानता है वह कर्त्तव्यों के बारे में अभी अनभिज्ञ है। वास्तव में कर्त्तव्य हैं क्या?

कर्त्तव्य धर्म का आधार है, बिना कर्त्तव्य के धर्म का प्रारंभ नहीं होता। जैसे आधार के बिना कोई आधेय वस्तु ठहरती नहीं ऐसे ही कर्त्तव्यों के पालन करने वाले व्यक्तियों के बीच में ही धर्म ठहरता है। जिस प्रकार जल नदी, झील, समुद्र, सागर में ठहरता है, दूध, घी आदि किसी बर्तन के पात्र में ठहरते हैं आटा, अनाज किसी कनस्तर में रखा जाता है तो वस्तु किसी न किसी आधार से रखी जाती है ऐसे ही ध र्म भी कर्त्तव्य के आधार से रहता है। जहाँ व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता वहाँ धर्म ठहरता नहीं है। सछिद्र अंजुली में जल नहीं ठहरता ऐसे ही कर्त्तव्य विहीन व्यक्तियों के पास धर्म नहीं ठहरता। धर्म भवन की नींव की तरह से है चाहे वह भवन महल के समान हो या सामान्य, उसकी नींव आवश्यक है।

एक झोंपड़ी भी यदि बनानी हो तो भी नींव खोदते हैं जिसमें लकड़ी की टेक गाढ़ी जा सके, यदि पाषाण के भवन बना रहे हों तो उसी प्रकार की नींव खोदी जाती है। नींव के बिना कोई भी भवन बनकर खड़ा नहीं होता। महानुभाव! कर्त्तव्य भी इस तरह से होता है जैसे कोई बीज जमीन में बो दिया उस बीज को जब जल सिंचन मिलता है और वह उत्तम भूमि में नम्रता व आद्रता के कारण अंकुरित होता है उसमें एक साथ दो अंकुर होते हैं एक अंकुर नीचे की ओर जाता है और दूसरा अंकुर ऊपर की ओर जाता है नीचे की ओर जाने वाला अंकुर जड़ कहलाता है ऊपर की ओर जाने वाला अंकुर पादप (पौधा) बन जाता है। यदि एक अंकुर नीचे नहीं जाये तो ऊपर वाले का संवर्धन नहीं होगा। और ऊपर वाला नहीं है तो नीचे वाले की कोई महत्ता नहीं रहेगी। नीचे वाली जो जड़ है वह कर्त्तव्य माना जाता

है। कर्त्तव्य जितने पुष्ट होते हैं जितने गहरे व मजबूत होते हैं, जितने सुदृढ़ होते हैं तो अधिकार उतने ही अच्छे होते हैं। ऊपर जाने वाला वह तना होता है, पौधा अधिकार के रूप में फलित होता है पुष्पित होता है उसकी छाया मिलती है। यदि किसी वृक्ष की जड़ें कमजोर हैं तो वह वृक्ष ऊपर ज्यादा फैलाव नहीं कर पाता जो जितने ज्यादा कर्त्तव्यों का पालन करता है उसे उतने अधिकार प्रयोग करने की आज्ञा होती है उसे उतने ज्यादा अधिकार स्वत: ही मिल जाते हैं। जितना बड़ा वृक्ष उतनी बड़ी छाया। जितना बड़ा मकान उतने रहने के स्थान।

ऐसे ही जो जितने ज्यादा कर्त्तव्यों का पालन करेगा, वह उतने ज्यादा व्यक्तियों पर अधिकार कर सकेगा। जो जितने ज्यादा व्यक्तियों का ख्याल रखता है उतने ही व्यक्ति उसके अण्डर में रहने के लिये तैयार रहेंगे। कौन कितने कर्त्तव्यों का पालन कर सकता है यह उसकी क्षमता पर निर्भर करता है उतने ही उसे अधिकार होते हैं। बिम्ब से बड़ा प्रतिबिम्ब नहीं होता। बिम्ब के अनुसार ही प्रतिबिम्ब होता है। ऐसे ही कर्त्तव्य जितने बड़े होते हैं अधिकार भी उतने ही बड़े होते हैं अधिकार कभी कर्त्तव्य से बड़े नहीं होते। आप कहेंगे कि प्रात:काल और संध्याकाल मे जब सूर्य का उदय व अस्त होता है उस समय तो प्रतिबिम्ब बिम्ब से बहुत ज्यादा बड़ा दिखाई देता है तो हम यह भी तो कह सकते हैं कि जब सूर्य मस्तक पर आ जाता है फिर तो वह परछाई नीचे पैरों के तले आ जाती है किंतु बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनों एक जैसे होते हैं यदि प्रकाश की समीपता है जैसे दीपक पास में जल रहा है उस समय आप खड़े हो जायेंगे तो आपकी परछाई ज्यादा दूर तक नहीं जायेगी।

कर्त्तव्य आपको जिसने सौंपे है वही आपको अधिकार सौंपेगा। कर्त्तव्य से अधिकारों का निर्णय किया जाता है अधिकारों से कर्त्तव्यों

का निर्णय नहीं करा जाता। जैसे मकान की नींव जितनी मजबूत होती है उसी के अनुसार मकान बनाया जाता है कितनी मंजिल का मकान बनाया जा सकता है यह इंजीनियर नींव को देखकर बताता है। नींव कमजोर होती है तो मकान ज्यादा ऊँचे नहीं बनाये जाते। यदि कोई व्यक्ति हठाग्रह वश बनाने का प्रयास भी करे तो उसका भवन धराशाही हो जायेगा। ऐसे ही वह व्यक्ति जो कर्त्तव्यों का पालन तो ज्यादा नहीं करे किंतु उनके बदले में अधिकार ज्यादा चाहे तो उससे अधिकार छीन लिये जायेंगे, वह अधिकारों से वंचित रह जायेगा। तो कर्त्तव्य के मायने-जड़, कर्त्तव्य के मायने नींव, कर्त्तव्य के मायने पात्र, कर्त्तव्य के मायने वह मूलबिम्ब, कर्त्तव्य अर्थात् धर्म का प्राण जिसमें धर्म का संचार होगा। कर्त्तव्य वह शरीर है जिसमें श्वसन क्रिया चलती है धर्म श्वसन क्रिया है यदि शरीर नहीं है तो श्वसन क्रिया नहीं चल सकती, इन्द्रियाँ नहीं हो सकती। तो कर्त्तव्य उस बॉडी का नाम है जिसमें इन्द्रियाँ होती हैं श्वांस ली जाती है, जिस शरीर के साथ आयु आदि कर्म रहता है।

महानुभाव ! अब थोड़ा और आगे चलते हैं कर्त्तव्य व्यक्ति कब करता है ? जब सामने वाले व्यक्तियों को जिन्हें अपना आदर्श मानता है उन्हें कर्त्तव्य करते हुये देखता है तो उसके मन में भी कर्त्तव्य करने का भाव आता है, अपने आदर्शों को कर्त्तव्यों की चोरी करते हुये देखता है तो सहज ही उसके मन में कर्त्तव्यों की चोरी का भाव आ जाता है। एक छोटी सी बात बताते हैं-

एक महात्मा जी मार्ग में चले जा रहे हैं रास्ते में एक व्यक्ति लेटा हुआ है। महात्मा जी ने उस व्यक्ति से कहा-भैया मैं तुम्हें कुछ धर्म का उपदेश सुनाऊँ तुम उसे सुनोगे। उसने कहा-नहीं मुझे अभी धर्म का उपदेश नहीं सुनना है। क्यों नहीं सुनना ? वह बोला मैं अभी परेशान हूँ। क्या परेशानी है? वह बोला मुझे बहुत जोर से प्यास लगी

29

है आप कुछ कर सकते हो तो पानी ले आओ वह महात्मा जी पानी की खोज करते हैं। आस-पास से झरने की आवाज सुनाई दी, पत्ते का दोना बनाकर उसके लिये जल लेकर आते हैं और उस मुसाफिर के मुख में थोड़ा-थोड़ा पानी डालते हैं इससे उसकी चेतना आती है। अब उस महात्मा ने कहा-क्या अब उपदेश सुनोगे? वह बोला नहीं। अरे ! अब क्या बात है वह पुनः बोला मैं एक करवट से लेटे-लेटे थक गया हूँ मुझे अच्छे से लेटा दो। महात्मा ने उसे सीधा कर लेटा दिया। पुनः पूछा अब तो उपदेश सुनोगे? पुनः बोला नहीं। क्यों? बोला मैं तीन दिन का भूखा हूँ मुझे कुछ खाने के लिये दे दो, महात्मा जी जंगल से कुछ फल लाये और उसे दे दिये फल खाकर पुनः महात्मा ने कहा-अब मैं तुम्हें उपदेश दे दूँ, उसने कहा अभी नहीं-मैं बहुत थका था, मुझे पिछले कई दिनों से भूख की बाधा से नींद नहीं आ रही थी मैं अब थोड़ा सोना चाहता हूँ यदि तुम कुछ कर सकते हो तो एक काम करो मुझे सर्दी लग रही है इसका कोई उपाय करो। महात्मा जी ने उसे अपना कंबल उड़ा दिया और वह कंबल ओढ़कर सो गया।

जब सोकर उठा तो महात्मा ने कहा अब तो उपदेश सुनोगे वह बोला हाँ अब मैं अवश्य उपदेश सुनूँगा। महात्मा जी ने कहा-अब क्या हुआ जो तुम उपदेश सुनने को तैयार हो गये, वह बोला बात यह थी मैं पानी के लिये तड़प रहा था पानी मुझे चाहिये था और मुझे भूख भी लगी थी, नींद भी आई, ठंडी भी लग रही थी इतने सब कारण होने के बाद भी आपने मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति अपना कर्तव्य समझकर की। मैं आपसे उपदेश सुनने के लिये इसलिये तैयार हो गया कि आप मात्र धर्म को सुनाने वाले नहीं हैं धर्म को आपने स्वयं अपने जीवन में धारण किया है इसलिये मेरी आपके प्रति श्रद्धा हो गयी है इसीलिये मैं आपसे धर्म सुनना चाहता हूँ और मैं धर्म अवश्य सुनूँगा

30

और आपको वचन देता हूँ जो भी आप धर्म की बात कहेंगे निष्ठा के साथ उस धर्म का पालन करूँगा। आपने जिस धर्म का पालन किया है नि:संदेह आप उसी प्रकार के धर्म की बात कहेंगे।

सबसे पहले मानव का धर्म वही है जो उसकी चर्या के माध्यम से प्रकट होता है, वाणी के माध्यम से प्रकट होने वाला धर्म तो केवल शब्द होता है उससे किसी का कल्याण नहीं होता। कल्याण होता है व्यक्ति की जीवन चर्या से। वह मुसाफिर उठकर बैठ गया और महात्मा के चरण पकड़ लिये और अपने नेत्रों के जल से उनका अभिषेक कर देता है। कहता है महात्मा जी बस मुझे धर्म मिल गया, मैं जान गया परोपकार करना ही सबसे बड़ा धर्म है। जिस व्यक्ति को जिस वस्तु की आवश्यकता है व्यक्ति के लिये उस वस्तु को उपलब्ध करा देना यह सबसे बड़ा धर्म है, मैं जान गया किसी तड़पते हुये प्राणी के प्राणों को बचा देना सबसे बड़ा धर्म है, स्वयं कष्ट सहन करके आपको भी ठंडी लग रही थी किंतु फिर भी आपने मुझे अपना कंबल उड़ा दिया मैं समझ गया ये धर्म है। आप अपने रास्ते से जा रहे थे झरने से मेरे लिये पानी लाये, मैं तो बिना बोले ही समझ गया वह धर्म है।

महानुभाव ! उसने कर्त्तव्य पालन करने का संकल्प ले लिया। महात्मा जी ने भी उपदेश में बस यही कहा था-वत्स ! कर्त्तव्य का पालन करना ही धर्म है तुम जहाँ पर भी रहो अपने कर्त्तव्यों का निष्ठा के साथ पालन करना यही धर्म का उपदेश है। ये उपदेश उस मुसाफिर ने सुना। यह मुसाफिर कोई और नहीं था, निकटवर्ती देश का वह राजा था। वह राजा उस महात्मा से बहुत प्रभावित हुआ अब वह राजा बड़ी निष्ठा के साथ अपने राजधर्म का पालन करता, रात्रि में अपने नगर में परिभ्रमण करता, देखता प्रजा में कोई असंतोष तो नहीं है, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता। जो राजा पहले अपनी प्रजा के प्रति क्रूर था अब दयालु हो गया।

31

जो राजा युद्ध क्षेत्र से भाग कर आया था जमीन पर पड़ा हुआ था एक राहगीर की तरह से, महात्मा ने जब उससे इस प्रकार का व्यवहार किया तो उसे लगा हाँ आज भी संसार में इस प्रकार का ध र्म है, आज भी कर्त्तव्य का पालन करने वाले हैं। मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया युद्ध क्षेत्र से भाग कर आ गया मेरी सेना वहाँ रणखेत हो गयी मुझे वहाँ अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये था, वीरगति को प्राप्त हो जाना चाहिये था किंतु जो हो गया उसका तो अब कुछ भी नहीं किया जा सकता।

वह एक रात्रि भेष बदलकर अपने नगर में घोड़े पर बैठकर आ रहा था, उसने देखा एक व्यक्ति रास्ते में पड़ा कराह रहा है जैसे ही उसकी दशा देखी उसे अपनी दशा ख्याल आ गयी कि एक बार मैं भी तो ऐसे ही पड़ा था उस समय महात्मा मेरे पास आये थे। वह अपने घोड़े से उतरता है, जाता है व्यक्ति के पास देखा तो वह बुखार से तप रहा था, उसकी दशा इतनी अस्वस्थ थी कि वह उठ भी नहीं पा रहा था राजा ने उसे अपने घोड़े पर बिठाया और अपने नगर की ओर ले गया। रात्रि के समय में राजा वेष बदलकर आया था उसे कोई पहचान नहीं पा रहा था, अधिकांश लोग अपनी गहरी नींद में सोये हुये थे, पहरेदार अपने कर्त्तव्य में लीन थे, जो सभी को सजग करते जा रहे थे कि 'जागते रहो' और राजा उस व्यक्ति को उसके घर तक ले जाता है जैसे ही दरवाजा खटखटाया उसमें से एक महिला निकली उस महिला ने वेष बदले राजा को देखा और पहचान लिया और उसके चरणों में गिरकर बोली–महाराज क्षमा करना मैं यहाँ की जमादार हूँ और आप मेरे बेटे को अपने घोड़े पर बिठा कर यहाँ तक लाये है, हम तो आपके इस उपकृत ऋण से सात जन्म में भी उन्मुक्त नहीं हो पायेंगे। आप वास्तव में धन्य हैं आप राजा नहीं राजा के रूप में देवता पुरुष हैं, भगवान् हैं जो आपके हृदय में इतना दया और करुणा का भाव है।

32

महानुभाव ! सत्यता ये ही है व्यक्ति जब कर्त्तव्य का पालन करने के लिये तैयार होता है तब उसे छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच दिखाई नहीं देता। व्यक्ति के मन में जब करुणा जाग्रत होती है तो करुणा ऐसी नहीं कि मात्र किसी तड़पते व्यक्ति को देखकर ही आये और चींटी को देखकर न आये, ऐसा नहीं कि अपने तड़पते भाई को देखकर तो आँखों से अश्रुधारा फूट पड़े और शत्रु/पड़ौसी को देखकर हृदय सूख जाये। कर्त्तव्य ये नहीं सिखाता है, कर्त्तव्य तो ये सिखाता है कि चाहे कोई भी क्यों न हो यदि करुणा का भाव है तो वह सबके प्रति हो, कर्त्तव्य ये सिखाता है कि किस समय किसको क्या आवश्यकता है उस समय हम ईमानदारी से अपने कर्त्तव्य का पालन करें। तभी ये कर्त्तव्य धर्म की श्रेणी में आता है।

कर्त्तव्य की झोली में ही अधिकारों का संवर्धन होता है इसके बिना अधिकारों का प्रयोग करना नि:संदेह धिक्कारने के योग्य होता है। हम आपसे इतनी ही अपेक्षा करते हैं कि आप जहाँ भी हैं, जिस स्थिति में भी हैं अपने कर्त्तव्यों का प्रभु परमात्मा और आत्मा की साक्षी में ईमानदारी के साथ पालन करें इसी में आपका कल्याण निहित है। आपके प्रति कल्याण की भावना भाता हुआ शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

४. वर्तमान से वर्धमान

व्यक्ति वर्धमान बनना चाहता है। हीयमान बनने के लिये आज कोई भी तैयार नहीं है। वर्धमान दशा को प्राप्त करना स्वभाव है, जो जीव की प्रकृति है, चेतना का नैसर्गिक गुण है। हीयमान दशा किसी भी आत्मा का स्वभाव नहीं हो सकता। वर्धमान दशा स्वभाव तब तक है जब तक पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति न हो जाये। वर्धमान बनने के लिये प्राय:कर विश्व के सभी प्राणी तैयार हैं किन्तु वर्धमान बनने का मूलमंत्र बहुत से लोग भूले हैं वर्धमान कैसे बनें? ऐसा कौन सा मंत्र है जिसके माध्यम से वर्धमान बना जा सके। वर्धमान बनने के लिये क्या कोई बहुत बड़ी तपस्या करनी है अथवा अपनी इन्द्रियों को कसकर के रखना है या कोई बहुत बड़ी पूजा, स्तुति, भक्ति आदि करनी है या बहुत बड़े व्रतों का पालन करना है या बड़े-बड़े हवन यज्ञ आदि करने हैं। आखिर वर्धमान कैसे बनें?

वर्धमान बनने का मूलमंत्र यदि समझ में आ जाये तो वर्धमान बनना न तो दु:साध्य है न दुर्लभ और न ही असंभव। हाँ वर्धमान बनना उनके लिये संभव है जिन्हें वास्तव में वर्धमान बनने का मंत्र याद है। तो क्या शास्त्रों में जो वर्धमान मंत्र लिखा है उससे वर्धमान बन जायेंगे ? वर्धमान मंत्र पढ़ने मात्र से हम वर्धमान बनें या ना बनें किंतु वर्धमान बनने का जो मूल मंत्र है उसे जीवन में अंगीकार कर लिया तो नियम से आत्मा वर्धमान बन जायेगी।

क्या है वर्धमान बनने का मंत्र ? दो पंक्तियाँ सुनी थी बच्चों के माध्यम से-

तज अतीत की यादें सारी त्याग अनागत मन से।
वर्तमान को वर्धमान बन जीयें निज चेतन से॥

यदि वर्तमान को जीना है तो वर्धमान बनना है किंतु वर्तमान को जीना कैसे है। वर्तमान को जीने की पहले दो शर्तें रखीं। पहली

34

शर्त-'तज अतीत की यादें सारी' अतीत की सारी यादों को तजना है। जब तक अतीत की यादें नहीं छोड़ी जायेंगी तब तक वर्तमान के क्षण को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतीत को भूत भी कहते हैं और भूत भयंकर होता है। भूत से प्राय:कर सब लोग घबराते हैं। वैसे भूत शब्द का अर्थ जीव/प्राणी होता है किन्तु भूत शब्द का रूढि अर्थ व्यंतरों का भेद 'भूत' होता है जो उपद्रव करने वाले देव होते हैं। वह भूत यदि किसी व्यक्ति को लग जाये तो वास्तव में बहुत परेशान करता है इसलिये भूतकाल को भूत की तरह से दूर से छोड़ो।

भूतकाल को छोड़ने का आशय है भूतकाल की जितनी भी यादें हैं स्मृतियाँ हैं उन्हें अलग करो। पुरानी सिलेट पर जो लिखा है उस लिखे को मिटाओ, उन पुरानी कॉपी, डॉयरी को अलग करो नयी खरीदो। यदि पुरानी ही पुरानी पर लिखते चले जाओगे तो कुछ भी समझ में नहीं आयेगा, इसलिये अतीत की यादों को तो छोड़ना है। अतीत की स्मृतियाँ कभी-कभी सुखद सी प्रतिभासित होती हैं तो कभी-कभी दु:खद। अतीत की स्मृतियों से चेहरे पर कभी-कभी मुस्कान भी आती है तो कभी-कभी अतीत की स्मृतियों से आँखें सजल भी हो जाती हैं। कभी-कभी अतीत की स्मृतियों में खोया हुआ व्यक्ति भूल जाता है कि मैं कौन हूँ, क्या करना है, कहाँ हूँ, कहाँ जाना है। अतीत में डूबने वाला व्यक्ति वर्तमान के क्षणों का सदुपयोग नहीं कर सकता। इसीलिये अतीत की यादों को तो भूलना ही श्रेयस्कर है। ठीक है चलो अतीत की यादें भूल जाते हैं किन्तु तो फिर याद क्या करना है? बस वर्तमान का क्षण। अतीत की स्मृतियों के साथ कहीं वर्तमान का क्षण विस्मृत न हो जाये इसलिये इसे हमेशा अपना केन्द्र बिन्दु बनाओ।

दूसरी शर्त-'त्याग अनागत मन से'। जो कुछ भी अनागत के लिये तुम्हारी इच्छायें हैं, भावनायें हैं, कल्पनायें, कामनायें चल रही हैं,

35

जो आपके ख्याली पुलाव बनाये जा रहे हैं, जो अरमान संजोकर के आप बैठे हैं उसमें भी अब नहीं जीना है क्योंकि यदि आप आकाश में महल बनाने का दु:साहस करोगे तो उसमें रह नहीं पाओगे, यदि पृथ्वी के नीचे बने महलों में जाने की कोशिश करोगे तो पहुँच नहीं पाओगे, आप तो केवल उसी महल में रह सकते हो जो आज तुम्हारे सामने खड़ा है।

अतीत एक ऐसे अतिथि की तरह से है जो तुम्हारे घर आया था उस समय आप उसका स्वागत कर पाये या न कर पाये किंतु अब वह जा चुका है, यदि कर पाये तो अच्छा है और नहीं कर पाये तो पश्चाताप करने से कुछ भी नहीं होने वाला क्योंकि अतिथि तो अब तुम्हारे यहाँ से जा चुका, वह अतीत का अतिथि तुम्हारे हाथ से निकल गया लौटकर कभी भी आने वाला नहीं, अतीत का बीता एक क्षण चाहे वह क्षणभर पहले ही क्यों न निकला हो वह अतीत का क्षण आपके जीवन में कभी आने वाला नहीं है।

अनागत वह अतिथि है जिसके आने की संभावना है, आ रहा है-आ रहा है, पर कब आयेगा? कैसे आयेगा? कहाँ आयेगा आयेगा या नहीं आयेगा कुछ नहीं पता जब जो आया नहीं तो उसका स्वागत अभी कैसे किया जा सकता है? नहीं किया जा सकता। माँ सिर्फ उस ही पुत्र को दुग्धपान करा सकती है जो पुत्र उसकी गोदी में है जो बालक जन्म लेकर मृत्यु को प्राप्त हो चुका है उसकी याद करके अपनी आँखें तो गीली की जा सकती हैं किंतु मृतक बालक को वह माँ अब दुग्धपान नहीं करा सकती। माँ उस बालक को भी दुग्धपान नहीं करा सकती जो बालक संभावित गर्भ में है। दुग्धपान उसे ही कराये जो उसकी गोदी में है, जो भूखा है, झटपटा रहा है, उसकी गोदी में खेलते/रोते बालक को ही दुग्धपान कराना बुद्धिमानी है।

ऐसे ही जो बुद्धिमान् मनुष्य होते हैं वे अतीत की समीक्षा करने में अपना समय व्यर्थ नहीं करते और ना ही अनागत के लिये ख्याली

36

पुलाव बनाते हैं। वे अनागत के लिये शेखचिल्ली जैसे सपने नहीं देखते। महानुभाव ! वर्तमान में जीने वाला ही नि:संदेह वर्धमान दशा को प्राप्त होता है।

तीन मित्र तीर्थ यात्रा करने के लिये गये। मार्ग जंगल में से होकर के जाता था, रात्रि जंगल में व्यतीत करनी पड़ी। तीनों ने कहा यहाँ हिंसक जंगली जानवरों का भय है थोडा सा जागरुक व जाग्रत रहें। तीनों थके हुये थे उन्हें भूख लगी थी तीनों के पास चूरमा के 4 लड्डू और साथ में थोड़ा दूध व चावल भी थे जो उन्होंने समीपवर्ती गाँव से खरीदे थे। तीनों ने खाने से पूर्व थोड़ा विश्राम करने की सोची। तीनों के बीच मुश्किल ये थी कि लड्डू तो चार थे और साथी तीन थे, 1-1 लड्डू तो तीनों के हिस्से में आ गया चौथा लड्डू जो बचा उसे कौन खायेगा? अब इसके बारे में क्या करें बहुत सोच समझ कर एक निर्णय लिया जिसको अच्छा स्वप्न आये वही उस चौथे लड्डू को खाये और इस निर्णय के साथ तीनों सो गये।

भगोने में खीर भी पक चुकी थी लड्डू भी रखे थे। एक साथी सोया खर्राटे लेने लगा, दूसरा सोया खर्राटे की आवाज नहीं आयी, तीसरा सोया उसकी खर्राटे की आवाज आने लगी। बीच वाला उठा उसने देखा ये दोनो तो सो गये, मुझे तो कस कर भूख लगी है मैं क्या करूँ। इधर-उधर देखता है सोचता है एक लड्डू तो मेरे हिस्से का है ही, उठाता है और खा लेता है। उसने सोचा मुझसे अच्छा सपना और किसका हो सकता है तभी दूसरा लड्डू उठाया और खा लिया, दो लड्डू खाकर बोला अकेले इससे मेरा काम नहीं चलेगा खीर भी सुबह तक खराब हो जायेगी खीर की भगोनी उठायी और गटागट थोड़ी खीर पी ली, पानी पीया पुनः थोड़ा लड्डू खाया, खीर पी, पानी पीया और ऐसे करके सारे लड्डू व खीर खाकर सो गया और गहरी नींद में लीन हो गया।

37

सुबह तीनों जगे, सामने भगोना भी ढका रखा था लड्डू का डिब्बा भी बंद था। फिर आपस में पूछा बताओ क्या स्वप्न आया। बीच वाला बोला मैंने तो बहुत खराब स्वप्न देखा पहले तुम दोनों अपने-अपने स्वप्न बताओ। पहला वाला बोला-आज मैंने देखा कि मैं जब सो रहा था एक देवदूत मेरे पास आया वो मेरे चरणों में साक्षात् प्रणाम करके कहता है हे भद्र ! मुझे युगों-युगों के बाद आपके दर्शन हुये आप तो स्वर्ग में इन्द्र थे। इन्द्रपद को त्याग करके आप यहाँ पर आ गये आपकी इन्द्राणी हैं, देवांगनायें हैं, अप्सरायें हैं मैं तो आपको यहाँ पाकर धन्य हो गया अब जाकर स्वर्ग में समाचार देता हूँ। और वह देव मेरी स्तुति किये जा रहा है और मुझे बहुत आनंद आ रहा है पहले मित्र ने अपना पूरा सपना कह सुनाया।

पुनः बीच वाले से पूछा तुमने क्या देखा-बोला मैंने कहा ना मैंने बहुत बुरा स्वप्न देखा है पहले तुम बताओ। अब तीसरा साथी अपना सपना सुनाने लगा-वह बोला जैसे ही मैं सोया मुझे जंगल का दृश्य दिखायी दिया, एक ज्योतिषी मेरे पास आया उन्होंने मेरे हाथों की लकीरें देखीं, मेरे पैरों के चिह्न देखे और कहने लगे-अरे ! तुम यहाँ कैसे ? मैंने पूछा क्यों क्या हुआ, वे बोले-या तो मेरी ज्योतिष विद्या गलत है या फिर तुम्हें यहाँ नहीं होना चाहिये। क्यों ? मेरी ज्योतिष विद्या कहती है तुम्हें तो चक्रवर्ती होना चाहिये तुम्हारी दशा, महादशा, अन्तर्दशा बहुत अच्छा कार्य कर रही है तुम्हें तो बस एक रात्रि के बाद चक्रवर्ती का पद मिलने वाला है, 96000 रानियाँ व छः खण्डों के स्वामी बन जाओगे। ज्योतिषी मेरे चरणों में अपना माथा रख रहा है कि चक्रवर्ती बनते ही उसे बहुत सारा इनाम मिलेगा। इस प्रकार तीसरे व्यक्ति ने अपना यह स्वप्न सुनाया।

बीच वाला साथी बोला-अरे एक पूर्व में इन्द्र था एक भविष्य में चक्रवर्ती होगा मैं क्या बताऊँ न तो मैं इन्द्र पद को छोड़कर आया न

38

आगे चक्रवर्ती पद को पाऊँगा मैं तो तुम दोनो के बीच में सो रहा था तभी क्या हुआ इस जंगल का एक देवता आया मेरे सिर पर खड़ा हो गया और मेरे पैर पर गदा मारी कहा उठ!-मैंने उससे कहा-क्या हुआ मुझसे कौन सी गलती हुयी। मैं तो उसके आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और थरथर काँपने लगा। मैंने पूछा क्या बात है-वह बोला बात कुछ भी नहीं बात इतनी है कि तेरे पास ये लड्डू रखा है, खीर रखी है फिर भी तू भूखा सो रहा है इन्हें जल्दी उठा और खा। मैंने उससे कहा मेरे दोनों साथी अभी सो रहे हैं सुबह जगकर मिलकर खायेंगे किंतु उसने मुझसे कहा-पहले लड्डू खा और अपनी गदा मारने का डर दिखाया तो मैंने 1 लड्डू खा लिया।

साथियों ने कहा फिर क्या हुआ, बोला दुबारा गदा दिखायी तो मैंने दूसरा लड्डू खा लिया, ज्यों ही गदा मारने को हुआ तो मैंने तीसरा लड्डू भी खा लिया। अरे फिर क्या हुआ ? अरे हुआ क्या चौथी गदा तो समझो मेरे ऊपर जमा ही दी मैंने झट से चौथा लड्डू भी खा लिया। मित्रों क्या बताऊँ उसने मेरी गर्दन को कसकर पकड़ा और भगोनी की तरफ इशारा करते हुये पूछा-इसमें क्या रखा है, देखा कि खीर है चिल्लाते हुये बोला-इसे क्या तेरे काका खायेंगे चल उठ और खा जल्दी से। मित्रों उसने जबरदस्ती मुझसे खीर उठवायी और पिला दी। अरे उसने मुझे बहुत मारा पीटा मेरी हड्डी-पसली अभी भी दर्द कर रही हैं। ये मुझे स्वप्न आया है। यह सुनकर साथियों ने डिब्बा खोला भगोना खोला तो देखा न किसी में लड्डू हैं न किसी में खीर।

महानुभाव ! एक मित्र ने अतीत का सपना देखा था, एक ने अनागत का सपना देखा था एक ने वर्तमान के खीर और लड्डू खाये थे। जो अतीत का सपना देखता है इन्द्र के वैभव का आनंद लेता रहता है वह तो सपने जैसा ही रहता है, जो अनागत में जाता है वह कल्पना

39

जाल जैसा है और जो उठकर के पुरुषार्थ करता है वही मोदक व क्षीरान्न को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। वर्तमान में जीने वाला व्यक्ति ही वर्धमान बनने का सच्चा अधिकारी है। जो व्यक्ति वर्तमान में जीया है वह नियम से वर्धमान बना है। वर्धमान नाम के तीर्थंकर तो केवल एक हुये थे किंतु सभी तीर्थंकर ही वर्धमान थे क्योंकि वे सभी वर्तमान में जिये थे।

एक बार वैशाली के राजकुमार वर्धमान के पास मगध सम्राट राजा श्रेणिक का पुत्र राजगृही से चलकर आता है और वर्धमान से मिलता है। अजातशत्रु कुणिक के माथे पर सलवटें पड़ी हुयी थीं किंतु वर्धमान के चेहरे पर बहुत कांति व शांति थी। अजातशत्रु ने वर्धमान से पूछा (दोनों आपस में मौसी के बेटे थे) वर्धमान एक बात बताओ मैं इतना चिन्तित, इतना व्यथित, इतना परेशान किंतु आपके चेहरे पर तो चिंता की एक भी लकीर नहीं आप बड़े निश्चिंत, प्रसन्नचित्त दिखायी दे रहे हैं आपके चेहरे पर इतनी कांति, शांति है कि मैंने तो कभी कल्पना भी नहीं की, कि किसी मनुष्य के चेहरे पर ऐसी कांति-शांति भी हो सकती है। इसका क्या कारण है? उन्होंने कहा-मैं अतीत की यादें नहीं करता और भविष्य के स्वप्न नहीं देखता हूँ। मैं केवल वर्तमान में जीना जानता हूँ इसलिये मैं शांत चित्त रहता हूँ और मेरे चेहरे पर कांति अटकेलियाँ खेलती रहती है।

महानुभाव ! वर्धमान के ये शब्द ध्रुव सत्य हैं। जो व्यक्ति अतीत के स्वप्नों में खोता नहीं है अनागत की पहेलियों में उलझता नहीं है वह व्यक्ति ही वर्तमान का आनंद ले सकता है। यदि जो भविष्य की पहेलियों को सुलझाने में उलझ गया या अतीत के काँटों से अपने वस्त्र को छुड़ाने में लगा रहा तो वह भी वर्तमान का आनंद नहीं ले सकता। वर्तमान का आनंद लेने की मुख्य शर्त है कि वह वर्तमान में ही रहे न एक कदम आगे न पीछे।

40

एक छोटे से गाँव में तीन कृषक रहते थे। उन तीनों के खेत पास-पास थे, तीनों संतोषी थे भद्रपरिणामी थे व आपस में प्रेमभाव से रहते थे। उन तीनों की परीक्षा लेने दरिद्र के भेष में कहा जाता है नारायण जी आये। एक देव नारायण का भेष बनाकर आया। वह पहले कृषक के पास गया, बोला-कृषक महोदय ! मुझे बहुत जोर से भूख लगी है मैं तुम्हें वरदान देने आया हूँ तुम मुझे भोजन दे दो। वह बोला-तुम स्वयं दरिद्र हो मुझे क्या वरदान दोगे, मेरे पास वरदानों की क्या कमी है। अभी कुछ समय पहले मैंने बहुत बड़ा भोज किया था, हजारों व्यक्तियों को भोजन कराया था, इससे पहले इतना बड़ा स्नेह भोज मेरे पिता जी ने किया था।

वृद्ध नारायण ने कहा-भाई तुमने क्या किया क्या नहीं मुझे इससे क्या यदि तुमने अभी मेरी भूख को शांत कर दिया तो मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि मैं निश्चित रूप से तुम्हें वरदान दूँगा। वह बोला तो वरदान दो ना, मैंने विगत कुछ समय पूर्व ही तो बहुत बड़ा कार्य किया था। दरिद्र ने कहा-जो तुमने किया है उसे भूल जाओ उसके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता है 'नेकी कर दरिया में डाल' अभी तुम्हारे पास क्या है ? कुछ नहीं। वह वृद्ध दरिद्र अगले किसान के पास गया-वह कृषक कहता है, हे वृद्ध नारायण ! आप हमारे पास आये थोड़ी देर ठहर जाओ मेरे खेत में बहुत अच्छी फसल आ रही है। मुझे विश्वास है फसल इतनी अच्छी आयेगी कि हजारों बोरों अनाज हो सकता है मैं उनसे बहुत व्यंजन बनवाऊँगा और आपको बहुत अच्छा भोजन करवाऊँगा बस थोड़ा सा ठहर जाओ।

वृद्ध नारायण कहता है-भाई मेरे प्राण तो कंठ में आ रहे हैं मैं ठहर नहीं सकता मुझे कोई भोजन दे दे मैं तो भोजन करना चाहता हूँ। वह तीसरे कृषक के पास गया-उसकी फसल पहले बहुत अच्छी आयी थी किंतु अभी उसके पास कुछ नहीं, पर उसने कहा हे देवता

! तुम मेरे यहाँ पधारे हो 'अतिथि देवो भव:' और उनके पैर पकड़कर कहा मैं आपको बहुत बड़ा भोजन तो नहीं दे सकता यदि आप वास्तव में क्षुधातुर हैं तो मैं आपकी क्षुधा को शांत करने का वह उपाय करता हूँ जिससे मैं स्वयं की क्षुधा शांत करता हूँ। मेरे पास चार टिक्कड़ व नमक मिर्च की चटनी है मैं इससे ही अपनी क्षुधा शांत करता हूँ। अभी मेरी क्षुधा इतनी तीव्र नहीं है इसलिये आप इसे ग्रहण कर लें। सूखे टिक्कर दे दिये, नारायण ने उसमें से दो टिक्कर खाये और दो वापस किये कि मेरी तृप्ति हो गयी और तथास्तु कहकर जाने लगा। देखते क्या हैं कि उसके खदान में स्वर्ण की अशर्फियों का कलश निकला। दोनों किसान देखते रहे कि इसके पास इतना धन कैसे आ गया। वह कहता है मुझे नहीं पता, मेरे पास जो वर्तमान में था उसमें से मैने दान दिया, उसके माध्यम से आया है और जो आया है वह भी मेरा नहीं है, आप सबके पुण्य से आया है इसे मैं नगर के लोगों के साथ बाँटकर के खाऊँगा।

महानुभाव ! उस कृषक ने वर्तमान का सदुपयोग किया था इसलिये उसे इतना वैभव मिला। जो अतीत के गुणगान कर रहा था वह वैभव से वंचित रह गया और जो भविष्य की कल्पना करके उसे सपने दिखा रहा था वह भी वंचित रह गया। इसी प्रकार जो व्यक्ति वर्तमान में जीता है वह नि:संदेह दूध की तरह है जो भविष्य में जीता है उसके पास छाछ भी नहीं रहता और जो अतीत की यादें करता है उसके पास दूध का नाम तो रह जाता है पर दूध नहीं। इसलिये वर्तमान में जीने वाला व्यक्ति वर्धमान बनता है। आप सभी वर्तमान में जीना सीखें, वर्धमान बनें, अतीत व अनागत को छोड़ें यही आत्म कल्याण का श्रेष्ठतम मार्ग है जिसे आप सब स्वीकार करें। मैं आप सबके प्रति अच्छी भावना रखता हूँ और इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

'श्री शांतिनाथ भगवान की जय'

५. समता भाव

जीवन में हम यदि कुछ बदलाव चाहते हैं तो जीवन के मूलभूत सूत्रों को, सिद्धान्तों को, मान्यताओं को बदलना होगा। हम गिरगिट की तरह जो रंग बदलते रहते हैं, हम जो मौसम की तरह से बदलते रहे हैं, हमारा चित्त थोड़े से निमित्तों को पाकर प्रभावी होता रहता है, हमें उस चित्त को सुदृढ़, स्वच्छ और परिपक्व बनाना होगा। कच्चा चित्त मोक्ष मार्ग में अयोग्य होता है, जब चित्त समर्थ हो जाता है तब वही चित्त अनुकूलता और प्रतिकूलता को समान रूप से सहन करने में समर्थ हो जाता है।

महानुभाव ! एक तिनका थोड़ी सी हवा से उड़ने लगता है, थोड़ी हवा चले तो धागा उड़ने लगता है उस थोड़ी सी हवा से रस्सी नहीं उड़ती या थोड़ी तेज हवा चले तो रस्सी उड़ जायेगी किंतु उससे सांकल नहीं उड़ती। यदि तूफान चले तो सांकल भी हिल सकती है किंतु लोहे का खंभा नहीं हिल सकता ऐसे ही जब चित्त चंचल होता है, व्यक्ति की सहनशीलता कम होती है, व्यक्ति का ज्ञान अपरिपक्व होता है, व्यक्ति गंभीर नहीं होता उतावला बावला होता है तब तक उसकी दशा पीपल के पत्ते की तरह से दोलायमान रहती है। जैसे ही उसमें स्थिरता आती है उसको हिलाना मुश्किल होता है। प्रारंभ में एक अंकुर होता है वह अंकुर हवा से हिलने लगता है पौधा होता है तो वह भी हिलने लगता है, वृक्ष बन जाता है तो छोटी-मोटी हवा से पत्ते हिलते हैं टहनियाँ नहीं, हवा तेज चलती है तो पत्तियों के साथ टहनियाँ हिलती हैं तना नहीं और जब तूफान आता है तो फिर पत्ती और टहनियाँ ही नहीं तना भी हिलने लगता है। बहुत भारी तूफान आता है तो पुनः जड़ भी हिल जाती है पेड़ उखड़कर आ जाता है। जिस व्यक्ति में जितना ज्यादा सत्व होता है जिसमें जितनी ज्यादा गंभीरता होती है, जिस व्यक्ति में जितना ज्यादा गहन तत्त्व ज्ञान होता

है, जितना अधिक बल होता है वह व्यक्ति उतना अधिक सहन करने में समर्थ होता है। देखो-

बहुत पतली तस्तरी यदि गैस पर रख दी जाये तो तुरंत गर्म हो जाती है, यदि मोटी प्लेट रखें तो बहुत देर से गर्म होती है। आपने देखा होगा पतला तवा बहुत जल्दी गर्म होता है कढाई जितनी ज्यादा मोटी होती है उतनी ही गर्म होने में ज्यादा देर लगती है। एक बार गर्म हो जाये तो ठंडी होने में देर लगती है इसी तरह महापुरुषों को क्रोध आता नहीं है यदि आ जाये तो उन्हें शांत करना बहुत मुश्किल होता है। क्षुद्र पुरुषों को छोटी-छोटी बातों पर क्रोध आता है और छोटी-छोटी बातों पर वे इतने प्रसन्न हो जाते हैं कि आपे के बाहर हो जाते हैं। कटोरी में रखे जल को तो गर्म किया जा सकता है किंतु समुद्र के जल को तिनकों की अग्नि से गर्म नहीं किया जा सकता।

महानुभाव ! आवश्यकता है जीवन में तत्त्व ज्ञान के माध्यम से अपनी शक्ति व क्षमता को बढ़ाने की। जिस व्यक्ति ने दीर्घकाल तक तत्त्व का चिंतन किया है वह व्यक्ति सुमेरूवत् हो जाता है वह वातावरण की अनुकूलता और प्रतिकूलताओं से प्रभावित नहीं होता। अनुकूलता और प्रतिकूलताओं से प्रभावित वही होता है जिसका चित्त अभी स्थिरता को प्राप्त नहीं है। ये विषमता का भाव दु:ख का और समता का भाव सुख का कारण है।

कोई सोचे हम अपने मन में समता भाव धारण किये हुये हैं, तो किसी पर अहसान नहीं कर रहे, उस समता से हमें आनंद आ रहा है और हम जब अपने आप में मस्त हैं तो बाहर में क्या हो रहा है उसे होने दो। जैसे कोई व्यक्ति समुद्र के पानी में डूबता चला जा रहा है वहीं समुद्र के किनारे बालक खेल रहे हैं शोर मचा रहे हैं तो उस व्यक्ति को कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा, जब वह समुद्र के पानी की सतह पर था तब उसे आवाज आ रही थी किंतु जब वह अंदर डूब गया तो कोई आवाज नहीं। ऐसे ही जब व्यक्ति तत्त्व ज्ञान में अंदर डूब

जाता है, जब व्यक्ति अपने कार्य में डूब जाता है, खो जाता है तो बाहर की विषमतायें उसे विचलित नहीं कर पातीं। समताभाव श्रमण को जितना आवश्यक है श्रावकों को भी उतना आवश्यक है। एक सच्चे श्रमण के लिये समता भाव अनिवार्य है तो अच्छे श्रावक के लिये भी समता भाव की अनिवार्य आवश्यकता है। बिना समता भाव के न तो श्रमण के जीवन में सुख शांति है और न ही श्रावक के जीवन में अमन-चैन है।

आप कहेंगे 'समत्व भाव'। वह संयम के उपरांत आने वाला समत्व भाव श्रमण के जीवन में आता है, किंतु असंयमी के पास भी कुछ तो समता रहती है, कुछ तो उसकी सहनशीलता होती है। जिसकी जितनी सहनशीलता होती है उसे उतनी ही आनंद की अनुभूति होती है। ये समता, सहनशीलता, तटस्थ भाव, मध्यस्थ भाव, साक्षीभाव, कूटस्थ भाव अपने आप में उस द्रव्य को दूसरे द्रव्य से परांगमुख करने वाला होता है, स्वद्रव्य में लीनता का कारण हो जाता है।

एक बार कोई एक युवा, संत महात्मा के पास पहुँचा कहने लगा-महात्मा जी मैं आपसे एक सलाह लेने के लिये आया हूँ क्योंकि सलाह उनसे लेनी चाहिये जो अपने कार्य में सफल हैं, जो आपने प्राप्त किया है उसे मैं भी प्राप्त करना चाहता हूँ। संत ने कहा मतलब ? महात्मन्! आप सुख और शांति को प्राप्त कर चुके हैं, स्वयं के आनंद में मस्त रहते हैं मैं भी सुख, शांति और आनंद को लेना चाहता हूँ। जब अपनी बुद्धि काम न करे तब गुरु की बुद्धि से चलना चाहिये। महात्मन् ! आपकी अच्छी सलाह मेरे जीवन में बहुत काम देगी। कृपादृष्टि करके मुझे एक अच्छी सलाह दे दो। महात्मन् ने कहा तुम्हें मेरे प्रति इतना विश्वास है तो पूछो, तुम इतनी आशा-उम्मीद के साथ मेरे पास आये हो। मैं प्रयास करूँगा तुम्हें सही सलाह देने का किंतु समझने का प्रयास तो तुम्हें ही करना पड़ेगा।

45

वह बोला, मेरी जिज्ञासा बस इतनी सी है कि मैं युवा हो चुका हूँ घर के सभी सदस्य कहते हैं घर में बहू कब लायेगा? किंतु मेरा मन कहता है कि मैं साधु बन जाऊँ किंतु मैं यह भी चाहता हूँ कि मेरे बाद मेरे माता-पिता दु:खी न हों, मैं अपने माता-पिता की सेवा करूँ या सन्यासी बनूँ? मैं क्या करूँ इसका समाधान नहीं कर पा रहा हूँ, मेरा चित्त सन्यासी बनने के लिये आतुर हो रहा है दूसरी ओर मन व्याकुल भी होता है माँ-बाप की सेवा करने के लिये किन्तु शादी करने का भाव मेरा है नहीं दूसरी ओर पता नहीं विवाहोपरांत सुख मिलेगा या दु:ख।

महात्मा सन्यासी बनने में भी बहुत खतरे हैं बहुत प्रतिकूलतायें होती हैं सभी अनुकूलताओं को छोड़ना ही सन्यासी बनना है। सन्यासी बनने पर तो पग-पग पर प्रतिकूलता है कहते हैं लोहे के चने चबाने जैसा है, अग्नि के दरिया में तैरने के जैसा है। यह सन्यासी बनना तो तलवारों की धार पर चलना है, सभी प्रतिकूलताओं को ओढ़ कर सो जाना है। सन्यासी बनना कोई फूलों की सेज नहीं है वह तो काँटों की/शूलों की सेज है।

महात्मा जी मेरा मन तो पक्का है कि आत्मा अजर-अमर है शरीर भले ही नष्ट हो जाये। मैं तो सन्यासी बनना चाहता हूँ फिर भी मेरा मन कभी-कभी शंकित हो जाता है मैं क्या करूँ ? मेरे लिये क्या अच्छा रहेगा सन्यासी बनना अच्छा रहेगा या गृहस्थ बनना अच्छा रहेगा? महात्मा जी ने कहा मैं इसका उत्तर देता हूँ। वह महात्मा गृहस्थ ही था उसकी चर्या संतोषी महात्मा जैसी थी। जल में रहकर कमल के जैसा संसार से विरक्त था।

जब वह युवा आया था उस समय मध्याह्न काल के 12 बज रहे थे, सूर्य मध्य में था अपना प्रखर प्रताप भूमण्डल पर फैला रहा था, उस समय उस महात्मा ने अपनी पत्नी को आवाज लगायी ओ भाग्यवान् ! जरा दीपक तो ले आ। उसकी पत्नी अंदर से आती है और

46

दीपक जला कर के सामने रख देती है। पत्नी ने कुछ भी नहीं पूछा। युवा के मन में शंका पैदा हुयी सूर्य का इतना प्रकाश हो रहा है और इन्होंने दीपक जला रखा हैं। जिन महात्मा के पास मैं सुझाव लेने के लिये आया वे कैसी अटपटी सी चेष्टा कर रहे हैं।

युवा ने कुछ कहना चाहा तब तक महात्मा ने कहा ठहरो। इतनी जल्दी भी क्या है तुम मुझसे पूछने के लिये आये हो ना तो मुझे बताने की चेष्टा मत करो। वह युवा शांति से बैठ गया। थोड़ी देर बाद वह स्त्री पुनः आती है और दो गिलासों में दूध रख जाती है एक गिलास उस युवा ने ले लिया और दूसरा महात्मा ने उठा लिया। दूध पीना प्रारंभ किया। दूध का एक घूंट ही उस युवा ने मुंह में दिया होगा तुरंत ही गिलास नीचे रख दिया क्योंकि उस दूध में बहुत सारा नमक पड़ा हुआ था। थू-थू करने लगता है। महात्मा ने दूध का गिलास उठाया और पूरा पीकर ही गिलास को नीचे रखा। महात्मा ने पूछा कुछ समझ में आया? उसने कहा-आपने अभी तक समझाया ही क्या है जो मेरी समझ में कुछ आये।

महात्मा ने कहा-चलो कोई बात नहीं है। मेरे साथ चलो। वह युवा साथ में गया, धूप बहुत तेज थी एक पहाड़ की चोटी पर चढ़ गये दोनों पसीना पसीना हो गये, मंदिर के समीप पहुँचे वहाँ एक महात्मा जी समाधि (ध्यान) लगाये बैठे थे, उनके पास पहुँचकर कुछ धर्म की चर्चा की, धर्म का उपदेश सुना और दोनों आने लगे तभी गृहस्थ संत ने पूछा-महात्मा जी आप बुरा न माने तो आपसे एक बात पूछूँ-मैं ये जानना चाहता था कि आपकी उम्र कितनी है महात्मा जी ने कहा मेरी उम्र लगभग 80 वर्ष मान लो शरीर की अपेक्षा से किंतु सन्यास को लिये हुये अभी 40 वर्ष हुये हैं। फिर थोड़ी देर बाद कहा महात्मा जी मैं भूल गया क्या आप फिर से बतायेंगे कि आपकी उम्र कितनी है-हाँ मेरी उम्र शरीर की अपेक्षा 80 वर्ष है व सन्यास की अपेक्षा 40 वर्ष हो गये। थोड़ी देर बाद पुनः यही प्रश्न किया महात्मा जी ने पुनः जवाब दे दिया।

47

अभी कुछ ही समय बीता कि वे दोनों वहाँ से आने लगे और थोड़ी दूरी पर से महात्मा जी को आवाज लगायी महात्मा जी ने आवाज सुनी और ऊपर से नीचे आये और कहा बताओ क्यों आवाज लगायी-वह बोला महात्मा जी बहुत जरूरी काम है हमें ऊपर चढ़कर आना मुश्किल था आपको आवाज लगाई क्षमा करना मैं आपकी उम्र भूल गया था कि कितनी है। महात्मा जी ने कहा शरीर की अपेक्षा 80 वर्ष सन्यास को लिये 40 वर्ष हो गये। महात्मा जी पहाड़ी पर चढ़ अपनी कुटिया में जाने लगे, अभी आधे रास्ते ही पहुँचे कि उसने पुन: महात्मा जी को आवाज लगायी-जल्दी आईये बहुत जरूरी बात पूछनी है-आप यहीं आईये-वे आये, कहा कहो क्या बात है? महात्मा जी मैं बस वही पूछ रहा था कि आपकी उम्र कितनी है उन्होंने वही कहा शरीर की अपेक्षा 80 वर्ष सन्यास ग्रहण किये 40 वर्ष हो गये। वह गृहस्थ संत व युवा दोनों नीचे उतर कर आये।

संत ने युवा से पूछा कुछ समझ में आया। वह युवा बोला मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आया मेरी समस्या तो ज्यों की त्यों खड़ी है मुझे कुछ समाधान मिला ही नहीं। उस गृहस्थ संत ने कहा-मैंने समाधान तो तुझे दे दिया। वह बोला मैं समझ नहीं पाया आप तो मुझे शब्दों में कहो-क्योंकि जो व्यक्ति जिस भाषा में समझता है उसे उसी भाषा में समझाना चाहिये, यह संकेत की भाषा मेरी समझ में नहीं आ रही है। महात्मा ने कहा-देखो-यदि तुम्हें गृहस्थ बनना है तो गृहस्थ ऐसा बनना अर्थात् ऐसा जीवन साथी लाना जिसके जीवन में तर्क नहीं हो, वितर्क नहीं हो जहाँ तर्क होता है वहाँ नर्क होता है। मैंने भरी दोपहरी में अपनी पत्नी से दीपक मँगवाया उसने ये नहीं पूछा कि दीपक क्यों मंगा रहे हो कोई बहस या विवाद नहीं किया अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुये उसने मेरी एक आवाज पर दीपक लाकर दे दिया।

48

और फिर स्वत: ही उसे लगा कि घर में अतिथि आया है तो वह दो गिलास दूध रख गयी तुमने भी पिया मैंने भी पिया, किंतु तुम एक घूंट पीकर ही रह गये। वह बोला पीता कैसे उस दूध में तो बहुत सारा नमक पड़ा था। महात्मा ने कहा-तुम सोच रहे हो कि मेरी पत्नी इतनी अच्छी कैसे है बिना टोके वह धूप में दीपक जला कर ले आयी बिना कहे अतिथि का सम्मान करने दूध ले आयी। क्योंकि मैं भी उसके प्रति इतना ही मध्यस्थ हूँ उतना ही सहन करता हूँ। चाहे दूध में बूरा आ जाये या नमक मैंने लौटकर कभी उसे उलाहना नहीं दिया।

जब वह मुझे सहन कर सकती है तो मैं भी उसे सहन करता हूँ। यदि ऐसी सहन करने की तेरी क्षमता हो तो बेटा तुम गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर सकते हो क्योंकि सहनशीलता और समता भाव दोनों तरफ से आता है। यदि तेरी पत्नी सहनशील हो तेरी हर बार सुनती रहे सहन करती रहे, तेरी सेवा करती रहे तो एक हाथ से ताली नहीं बजती। जब उसे गुस्सा आये जब वह अग्नि बने तब तुम पानी बन जाना, जब तू अग्नि बनें तो वह पानी बन जाये तो वह घर कभी नरक नहीं बन पायेगा। वहाँ महाभारत नहीं होगा शांति ही शांति रहेगी। वह बोला ठीक है महात्मा जी।

और दूसरी बात-यदि तेरा भाव महात्मा बनने का है तो फिर ध्यान रखना-जब मैं तुझे पहाड़ की चोटी पर ले गया उस महात्मा से हम मिले थे। उन्होंने अपनी समाधि तोड़कर हमें धर्म का उपदेश दिया फिर मैंने एक ही प्रश्न को 3-4 बार पूछा कि महात्मा जी आपकी उम्र कितनी है। उन्होंने सहजता से उत्तर दे दिया कि शरीर की अपेक्षा 80 वर्ष और सन्यास लिये 40 वर्ष हो चुके, ये बात मुझे और तुम्हें पहली ही बार में समझ आ गयी थी फिर भी मैंने थोड़ी-थोड़ी देर बाद वही प्रश्न बार-बार किया। महात्मा जी को पहाड़ी के ऊपर से नीचे तक भी बुला लिया। महात्मा जी के चेहरे पर एक बार भी क्रोध

49

की रेखा दिखायी नहीं दी। छोटी सी बात जिसमें कोई भी तथ्य नहीं था, बार-बार उम्र पूछने पर उस महात्मा को जवाब देने पर कौन सा पुण्य लाभ हो रहा था किंतु उन्होने झुंझलाया नहीं, डाँटा नहीं, फटकारा नहीं सहजता में हर बार उत्तर देते रहे। उन महात्मा जी ने सोचा कि मात्र पहाड़ पर बैठ कर तपस्या करना ही तपस्या नहीं है प्रतिकूलताओं को सहन करना भी तपस्या है। यह भक्त मेरी परीक्षा लेने के लिये आया है। जो जितनी ज्यादा परीक्षा देता है उसके उतने ज्यादा प्रमोशन होते चले जाते हैं। तो तपस्या करना तो पढ़ाई करना है प्रतिकूलताओं में समता धारण करना ही परीक्षा देना है।

परीक्षा कभी-कभी होती है। आज भी संसार में बहुत साधक हैं जो रसों का त्याग करते हैं, कोई उपवास करते हैं कोई नीरस करते हैं कोई अन्य-अन्य प्रकार के तप करते हैं किंतु उन्हें भी जब उनके गुरुभाई, श्रावक, शिष्य, भक्त कुछ भी उनसे एक शब्द कह दें तो क्रोध आ जाता है। आश्चर्य है, दाल रोटी छोड़ना तो सरल है किंतु अंदर की गाँठ को खोलना बड़ा कठिन है। अन्न को छोड़ना सरल है किंतु कषायों को छोड़ना वास्तव में कठिन है। समता भाव रखना बड़ा कठिन है। आप धूप में खड़े रह सकते हैं, आप सर्दी में भी खुले में रह सकते हैं। बरसात में खड़े रह सकते हैं, निर्वस्त्र रह सकते हैं और भी बड़ी-बड़ी साधना कर सकते हैं ये सब तो संभव है किन्तु प्रतिकूल प्रश्नों का अनुकूल उत्तर देना कठिन है। क्रोध के निमित्त मिल जाने के उपरांत भी क्रोध को नहीं आने देना बहुत कठिन है। अहंकार के निमित्त मिल जाने पर भी मन में अहंकार न आना बड़ा कठिन है।

सत्य मानना यह जीवंत बात अपने जीवन में अनुभव करना कि कोई व्यक्ति यदि तुम्हारे प्रतिकूल चलता है जिसे तुम कुछ कह भी नहीं पा रहे हो, सह भी नहीं पा रहे हो, तुम्हें क्रोध आता है उस क्रोध

को पीने का प्रयास करते हो अंदर में परिणाम खराब हो जाते हैं किंतु तुम्हें अपनी परीक्षा स्वयं लेनी है। आचार्य भगवन् श्री पूज्यापाद स्वामी जी ने सर्वार्थ सिद्धि में लिखा है-क्रोध के निमित्त मिलने पर भी तुम्हारा क्षमा भाव क्षण भर के लिये भी नष्ट न हो वही सही सच्ची क्षमा है।

जब क्रोध के निमित्त मिले ही नहीं तब क्षमामूर्ति, क्षमाशील, क्षमादेवता तुम बन गये तो कौन सी बड़ी बात है निमित्तों के मिलने पर भी तुम्हारे चित्त पर वही सौम्यता रहे, प्रसन्नता व मृदुता रहे, क्षमा भाव, सरलता व सहजता रहे तो वास्तव में सच्चे साधु/श्रावक हो। भले ही कोई तुम्हारे सत्य गुणों की ही प्रशंसा क्यों न कर रहा हो उस समय साक्षी भाव रखना ये साधुता है। सच्चे साधक की पहचान तो यही है कि वह क्रोध, मान, मायाचारी व लोभ से बचे। सच्चा महात्मा वही है जिसने कषायों को शमित कर दिया हो, इन्द्रियों का दमन कर दिया हो, साधु कहते भी उसे ही हैं जो सहन करना सीख गया है, जो समतामय परिणाम से जीता है, किंतु ये ध्यान रखना अच्छा श्रावक भी वही होता है जिसमें सहनशीलता व समता का भाव है।

रथ दोनों पहियों से चलता है श्रावक भी सच्चा हो, साधु भी सच्चा हो तभी नि:संदेह समाज में धर्म की प्रभावना सच्ची होती है। एक पहिया छोटा, एक बड़ा होगा तो रथ चल नहीं पायेगा, इसी प्रकार समाज में सुख शांति तभी हो सकती है जब साधकों के माध्यम से समता का जीवंत उपदेश दिया जाता है, श्रावकों के माध्यम से उस समता व सहनशीलता का व्यवहार किया जाता है तभी आत्मशांति की प्राप्ति होती है तभी स्वयं का व दूसरों का जीवन सुखद बनता है। आप भी सुखद जीवन के पात्र बनें आपके जीवन में परमशांति प्राप्त हो ऐसी मंगल भावना भाता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

६. जाकी रही भावना जैसी

छः द्रव्यों का आधार लोक है, बिना लोक के छः द्रव्य ठहर नहीं सकते। ये तीन लोक वातवलय के आधार से हैं। नारकी जीव नरकों के आधार से रहते हैं, स्वर्ग के देव स्वर्ग के विमानों के आधार से रहते हैं, त्रस तिर्यंच और मनुष्यादि मध्य लोक के आधार से रहते हैं। बिना आधार के कोई भी आधेय ठहरता नहीं है। जैसे वृक्ष भूमि के आधार से टिका हुआ है, साधु का मोक्षमार्ग रत्नत्रय के आधार से टिका हुआ है, रत्नत्रय आत्मा के आधार से टिका हुआ है। बिना आधार के कुछ भी नहीं है।

संसार में विद्यमान छः द्रव्यों में से चार द्रव्य तो निष्क्रिय हैं, दो द्रव्य सक्रिय हैं पुद्गल और जीव, उनमें से पुद्गल तो अचेतन है उसमें संवेदनशीलता भावना आदि नहीं होती किंतु जो जीव द्रव्य है उसमें शुद्ध अशुद्ध दशा होती है। अशुद्ध जीवों में कभी शुद्ध कभी अशुद्ध भावना होती है वह बदलती रहती है। जो सिद्ध बन चुके हैं उनकी भावना निरन्तर सदैव शुद्ध ही रहती है उनका शुद्ध परिणमन होता है। भावना के आधार से ही संसार चलता है जैसे वाहन रोड पर चल रहा है कोई कहता है वह रोड के आधार से चल रहा है, कोई कहता है पहियों के आधार से चल रहा है, कोई कहता है उसमें जलने वाले ईंधन पेट्रोल/डीजल के आधार से चल रहा है, कोई कहता है ड्राइवर के आधार से चल रहा है। चल तो आधार से ही रहा है किन्तु सबकी दृष्टि से वे आधार अलग-अलग हैं। ऐसे ही जो संसार चल रहा है वह कर्म के माध्यम से संसारी प्राणियों का परिणमन हो रहा है। कर्म भावनाओं के आधार से बंधते हैं भावनाओं के माध्यम से ही कर्मों का नाश होता है इसलिये आपने पढ़ा सुना होगा-

जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन वैसी

52

गोस्वामी तुलसीदास जी की ये पंक्ति कि जिसकी जैसी भावना होती है उसी प्रकार की उसे भगवान की मूर्ति दिखाई देती है उनका आशय तो यही है किंतु संसारी प्राणी की जैसी भावना होती है वैसे ही कर्मों का आश्रव व बंध होता है। जिस व्यक्ति की तीव्र भावना होती है तो तीव्र भावना के बल से शीघ्र ही फल को प्राप्त कर लेता है और भावना जब मंद होती है तो फल भी देरी से प्राप्त होता है। भावना अच्छी होती है तो फल अच्छा होता है भावना बुरी होती है तो फल भी बुरा होता है। कई बार ऐसा भी होता है जब भावना होती है तब प्रभु पाषाण में भी दिखाई दे जाते हैं मूर्ति का आकार तो पाषाण बाद में लेता है पहले भक्त या शिल्पकार इस पाषाण में भगवान की मूर्ति देख लेता है, कुम्भकार मिट्टी में मंगल कलश को देख लेता है, जैसे चित्रकार रंगों के अंदर नाना प्रकार के चित्र देख लेता है।

भावनाओं के माध्यम से व्यक्ति न जाने कहाँ-कहाँ तक पहुँच जाता है। भावनाओं से तीव्र पुण्य कमा सकता है, भावनाओं से तीनों संध्याकालों में तीर्थयात्रा कर सकता है, सभी को दान दे सकता है, भावनाओं के माध्यम से सभी की सेवा, उपकार कर सकता है। भावनाओं से ही वह बड़े-बड़े व्रतों का पालन कर सकता है किंतु इतनी उत्कृष्ट साधना इस काल में संभव नहीं है। भावना बहुत बड़ी होती है साधना उस समय बहुत छोटी होती है। भावना अनंत आकाश की तरह से है तो साधना उस समय विद्यमान तीन लोक की तरह से है। भावना का धरातल जितना बड़ा होता है कहा जाता है साधना उतनी अच्छी होती चली जाती है। भावना साधना का प्राण है, साध ना भावना का आधेय है।

महानुभाव ! भावना हम अच्छी रखें। जब भावना भा रहे हैं तो छोटी क्यों? दरअसल में बात ये है जो द्रव्य जैसा होता है उसकी भावना भी वैसी ही होती है, गरीब व्यक्ति की भावना ज्यादा बड़ी

53

नहीं हो सकती, यदि वह भगवान से माँगेगा भी तो कहेगा भगवान मुझे पेट भर के रोटी देदे, ज्यादा से ज्यादा कहेगा मेरी झोंपड़ी बना दे बहुत ज्यादा होगा तो कहेगा-हे प्रभु बस मेरा परिवार ठीक से रहे। तो छोटे व्यक्ति की भावना/दृष्टिकोण छोटा होता है बड़े व्यक्ति की भावना व दृष्टिकोण बहुत उदार व विशाल होता है। देखो-

एक व्यक्ति प्रात:काल अपनी गाड़ी को साफ कर रहा था, नयी गाड़ी थी। पड़ौसी ने देखा-सोचा ये तो रोज साइकिल से आने-जाने वाला व्यक्ति है आज इसके पास लगभग 5 लाख की गाड़ी कहाँ से आ गयी। उसने उससे पूछा-भैया गाड़ी कितने की ले आये, वह कहता है-भैया मुझे मालूम नहीं, बोला-क्यों? क्या हुआ? कहीं से उठाकर या चोरी कर लाये हो? वह बोला अरे भाई नहीं दरअसल में बात ये है कि ये गाड़ी मैंने खरीदी नहीं है यह गाड़ी मुझे मेरे छोटे भाई ने दी। पड़ौसी ने पुन: कहा हमने तो कभी तुम्हारा वह छोटा भाई देखा नहीं। हाँ तुम ठीक कहते हो वह मेरे पास रहता नहीं है वह शहर में रहता है 10 वर्ष पूर्व मैंने उसे पढ़ाई हेतु शहर भेजा था,

हम दोनों के माता-पिता पहले ही गुजर गये थे बचपन से मैंने अपने भाई को बड़ा किया पुन: मैंने किसी बैंक में चपरासी की नौकरी प्राप्त की इससे अपनी पत्नी का पालन करता रहा और अपने छोटे भाई को मैंने अच्छी से अच्छी शिक्षा देने का प्रयास किया। पैसे बचा-बचा कर अपने भाई को उत्तम शिक्षा देने में कहीं कोई कमी नहीं रखी और मेरी भावनाओं का प्रभाव पड़ा, मेरा भाई आज कलेक्टर बन गया उसने आईईएस किया, आज सरकार की ओर से उसे बंगला व गाड़ी आदि सुविधायें दी गयीं। किन्तु उसने गाड़ी में बैठने से मना कर दिया, क्योंकि उसके मन में मेरे प्रति कृतज्ञता का भाव था, उसने मुझे बुलाया उस बंगले में रहने के लिये किंतु मैं जा नहीं सकता तो उसने भी सौगंध खा ली कि आप नहीं आओगे तो मैं

भी उस बंगले में नहीं जाऊँगा, ये गाड़ी तो मुझे सरकार की ओर से मिली है इसे तो मैं नहीं भेज सकता किंतु सौगंध खाता हूँ जब तक आपके लिये गाड़ी नहीं ले लूँगा तब तक मैं गाड़ी में नहीं बैठूँगा। उसने अपनी मेहनत करते हुये जो तनख्वा आयी उससे किश्त से गाड़ी उठायी और मेरे पास भिजवा दी। उसने मुझसे कहा है भैया पहले गाड़ी में तुम बैठोगे उसके बाद जो मुझे सरकार की तरफ से गाड़ी मिली है उसमें मैं बैठूँगा। तो भैया इस प्रकार मेरे छोटे भाई से यह गाड़ी मुझे प्राप्त हुई है।

यह सब सुनकर वह पड़ौसी कहता है-हे भगवान् ! काश मेरे पास भी ऐसी गाड़ी होती। तो वह कहता है-भाई ! तुम ऐसी बात क्यों कहते हो अरे तुम्हें जब भगवान से माँगना ही है, भावना ही भाना है तो कहो-हे भगवान् ! काश मेरे पास भी ऐसा भाई होता। तभी एक संत महात्मा उस गली से निकल रहे थे उन्होंने उन दोनों की बातें सुनी-तो वे बोले अरे भाई तुम भी अधूरा ही माँग रहे हो जब माँगना ही है, भावना ही भानी है तब तुम ये कहो कि हे भगवान् ! मैं ऐसा भाई बन जाऊँ कि मैं अपने भाईयों को गाड़ी बाँट सकूँ।

महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि भावना जब छोटी थी तो पड़ौसी ने गाड़ी माँगी, दूसरे ने ऐसा भाई माँगा, संत ने कहा-क्यों ना मैं ही ऐसा भाई बन जाऊँ जो सबको गाड़ी दे सकूँ। भावना जब अच्छी होती है तब जीवन में सब अच्छा ही अच्छा होने लगता है। हम अच्छे-अच्छे कार्य करें पर भावना बुरी-बुरी रखें तो केवल अच्छे कार्य करने से आनंद नहीं आता अच्छी भावना चित्त से पैदा होती है व कार्य शरीर से किये जाते हैं, शरीर से किये गये कार्य का फल चेतना को नहीं मिलता। आनंद व दु:ख-सुख की अनुभूति तो भावना के आधार से होती है।

भावना चित्त के समीप होती है इसलिये जब तक भावनायें अच्छी नहीं हो तब तक अच्छे कार्यों का आनंद भी नहीं आता।

इसलिये भावना बहुत शुद्ध रखो। कई बार तो ऐसा भी होता है कि अच्छी भावना रखते हुये बुरा कार्य भी हो जाता है, तब भी व्यक्ति को संतोष होता है, सामने वाला कह जाता है, भैया तुम्हारी भावना तो अच्छी थी, भावना रोगी को बचाने की थी किंतु वह नहीं बच पाया तो डॉक्टर को अफसोस नहीं होता, डाकू की भावना मारने की थी किंतु वह नहीं मरा तब भी डाकू कहता है अरे! मर ही नहीं पाया। भावना मारने की होते हुये भी यदि वह नहीं मरा तो डाकू को तो पाप लगेगा ही लगेगा, भावना अच्छी थी किंतु बच नहीं पाया तो डॉक्टर को पुण्य लग सकता है।

एक साधक संसार के प्रत्येक प्राणी के लिये अच्छी भावना भा रहा है उसे पुण्य मिल रहा है और एक आतंकवादी सबके लिये बुरी भावना भा रहा है तो पाप लग रहा है। चाहे दोनों में से कोई भी कार्य नहीं कर पा रहे किंतु भावना करते हुये दोनों को अपनी-अपनी भावना के अनुसार पुण्य पाप लगता है।

दूसरी बात ये है-संसार तो एक दर्पण है दर्पण में जो भी बिम्ब सामने आता है प्रतिबिम्ब वैसा ही दिखाई देता है। संसार कुछ नहीं हमारे चित्त में दूसरे के प्रति जैसी भावना है वही भावना दूसरे के चित्त में हमारे प्रति पैदा हो जाती है। संसार के दर्पण में हम कुछ नहीं कर सकते मात्र अपनी भावना सुधार लो तो संसार में तुम्हें सब अच्छा ही दिखाई देगा। भावना बिगड़ गयी तो फिर सब बिगड़ा हुआ दिखाई देगा। दर्पण को सुधारने की आवश्यकता नहीं है, संसार को सुधारने की आवश्यकता नहीं है अपनी भावनाओं को सुधारने की ही आवश्यकता है।

अमेरिका में एक शोध प्रमुख संस्थान है उन्होंने भावनाओं के विषय में शोध किया कि कैसे भावनाओं का प्रभाव पड़ता है और शोध इस प्रकार किया कि एक कक्षा के 20 विद्यार्थियों को अलग-अलग

बैठा दिया। सबको 1-1 कागज और पेन दे दिया, बीसों विद्यार्थियों से कह दिया तुम्हें इस कागज पर अपनी कक्षा के अच्छे विद्यार्थियों के नाम एक ओर लिखना है व खराब विद्यार्थियों के नाम एक ओर लिखना है, सब विद्यार्थियों ने नाम लिखे किंतु एक विद्यार्थी ऐसा था जिसने खराब विद्यार्थियों के 18 नाम लिखे व अच्छे विद्यार्थियों में 2 नाम लिखे। वहीं एक विद्यार्थी ऐसा था जिसने खराब विद्यार्थियों में सिर्फ अपना नाम लिखा था और अच्छे विद्यार्थियों में 19 नाम लिखे।

पुनः सारे कागज एकत्र किये गये तो देखा गया कि कक्षा में एक विद्यार्थी ऐसा था जिसने अपनी लिस्ट में 18 खराब व्यक्तियों के नाम लिखे उस विद्यार्थी का नाम 18 विद्यार्थी की उस लिस्ट में था जिसमें उन्होंने खराब विद्यार्थियों के नाम लिखे थे दूसरी एक ओर वह विद्यार्थी था जिसने अपनी लिस्ट में केवल एक स्वयं का नाम ही खराब विद्यार्थी में लिखा था और 19 नाम अच्छे में लिखे थे। उस विद्यार्थी का नाम उन 19 विद्यार्थियों ने अच्छे में लिखा था कि ये कक्षा का सबसे अच्छा विद्यार्थी है। जिसने 19 को अच्छा माना था, तो उन 19 ने भी उसको अच्छा माना। जो सबको बुरा मानता है जिसने 18 को बुरा माना था तो उन 18 ने भी उसको बुरा माना।

भावना का प्रभाव था उसकी भावना खराब थी तो औरों की भी उसके प्रति खराब भावना रही। महानुभाव! भावनाओं का बहुत प्रभाव पड़ता है, भावना के माध्यम से व्यक्ति बहुत कुछ हासिल कर लेता है। जो हम शब्दों से नहीं कह पाते, जो वस्तु हम अपने हाथों से नहीं ले पाते, वह सुख-शांति, अमन-प्रेम-चैन, आह्लाद भावनाओं से लिया जा सकता है।

भावनायें एक दूसरे के आरोग्य लाभ में भी सहायक बनती हैं और बुरी भावनायें अहित करने में भी कार्यकारी होती हैं। भावनाओं का प्रभाव कैसे पड़ता है एक छोटा सा रूपक बताता हूँ-

57

किसी नगर में एक चंदन का व्यापारी था, उसके पास बहुत सारा चंदन था। वह सोचता है चंदन तो मेरे पास बहुत रखा है पर क्या करूँ बाजार में तो चंदन की लकड़ी के भाव गिरते ही जा रहे हैं। बाजार में चंदन खरीदने वाला कोई है ही नहीं, लगता है सबने मंदिर में पूजार्चना करना बंद कर दिया है कोई हवन आहूती भी नहीं करता, लगता है अब चंदन तभी कोई खरीदेगा जब नगर में किसी महापुरुष का देहावसान हो, किसी की मृत्यु हो जाये तो कई मन चंदन की लकड़ी खरीदी जा सकती है, किसी संत महात्मा की समाधि हो जाये उनके संस्कार में खरीदी जा सकती है किंतु नगर में तो अभी कोई संत है नहीं हाँ यदि हमारे देश का राजा मर जाये तो इसके संस्कार में मनों भर चंदन की लकड़ी लगेगी। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं होगा जो राजा की चिता में लकड़ी न लगाये सब लगाना चाहेंगे जब सब खरीदेंगे तो मेरी तो मनों-कुण्टलों लकड़ी बिक जायेगी।

अब राजा बीमार रहने लगा, राजा का मन विक्षिप्त हो गया, अनमना सा रहने लगा। मंत्रियों, पुरोहित, महारानी आदि सभी ने पूछा-राजन् क्या हुआ ऐसा क्या हो गया? राजा ने कहा-मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा हूँ कि ये क्या हो रहा है। मंत्री जी ने कहा-चलो एक काम करते हैं नगर भ्रमण के लिये चलते हैं सब रथ पर आरूढ़ होकर चल दिये। सहसा वही व्यापारी वहाँ मिला-राजा ने उस व्यापारी को देखा, व्यापारी ने राजा को देखा, राजा को अचानक उसके ऊपर क्रोध आया इस व्यापारी को मार दिया जाये। महामंत्री ने कहा-महाराज ये तो निरपराधी है हम ऐसा नहीं कर सकते हैं, कोतवाल आदि ने कहा महाराज अभी तो इसको बंदी बना लेते हैं बाद में जो आपका आदेश होगा वैसा देख लेंगे।

महामंत्री आदि उसके पास गये कहा-भाई क्या बात है तुम दु:खी दिखाई देते हो, तुम्हारे मन में व्याकुलता है हमसे अपने मन का

हाल नि:संकोच कहो। हम तुम्हें अभय प्रदान करते हैं कहो क्या बात है-पहले तो वह टालने की कोशिश करता रहा बाद में उसने कहा-मैं क्षमा चाहता हूँ मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया। मेरे मन में भाव आ गया था कि मेरे पास बहुत सारी चंदन की लकड़ियाँ रखी थीं वे बिक नहीं रही थीं तो मैं सोच रहा था कि राजा की मृत्यु हो जाये तो मेरी लकड़ियाँ बिक जायेंगी। मेरी दुर्भावनाओं के लिये आप मुझे क्षमा कर दो। मंत्री ने कहा-कोई बात नहीं तुम्हारी लकड़ियाँ बिक जायेंगी हमें तुम्हारी चंदन की लकड़ियों की आवश्यकता है। वह महामंत्री राजा के पास गया और कहने लगा-राजन् मैं आपके स्वास्थ्य लाभ के लिये निमित्त ज्ञानियों के पास गया उन्होंने कहा है कि आप महाअनुष्ठान करायें जाप व हवन करायें जिसमें नगर के सभी लोग एकत्रित हों तो आपको अच्छा स्वास्थ्य लाभ होगा।

राजा ने आज्ञा दे दी ठीक है। मंत्री व्यापारी के पास गया और कहा- राजा ने नगर में ढिंढोरी पिटवा दी है हवन व जाप अनुष्ठान के लिये क्या वह तुमने सुनी है ? वह बोला हाँ सुना है कि महायज्ञ होगा जिसमें चंदन की लकड़ी चाहिये। मंत्री ने कहा ठीक है तुम ढेर सारी लकड़ियाँ अगर-तगर-कपूर आदि सब कुछ लाओ चाहे वह जिस भाव भी मिले राज्य में लेकर आओ। राजा ने नियम लिया है कि जब तक मैं जीवित रहूँगा तब तक ये हवन चलता रहेगा। अब तो व्यापारी कहता है, हे भगवन् ! राजा चिरायु हो, दीर्घायु हो, स्वस्थ रहे, खूब हवन होता रहे मेरी चंदन की लकड़ियाँ बिकती रहेंगीं। मेरे पास चंदन की कमी नहीं है राजा 100 साल से भी ज्यादा जीये। व्यापारी की भावनायें स्वच्छ व शुद्ध हो गयीं तब उसे राजा के पास लाया गया उसे देखते ही राजा के मन में भी उसके प्रति अच्छे भाव आये-अरे जो मेरी दीर्घायु की भगवान् से प्रार्थना कर रहा है ये तो बहुत सज्जन है। मुझे इस निरपराधी को क्षमा कर देना चाहिये और राजा उसे क्षमा कर देता है।

महानुभाव ! कहने का आशय है कि जब व्यापारी की भावना खराब हुयी राजा के प्रति तो राजा की भी भावना खराब हुयी। व्यापारी की भावना अच्छी हुयी तो राजा की भी भावना अच्छी हुयी। बात चंदन की नहीं है बात भावना की है। भावनायें बहुत जल्दी पहुँच जाती हैं भावनाओं की गति तीव्र है।

एक बालक जंगल में पशु-पक्षियों के बीच में रहता था। पक्षी भी उसके ऊपर बैठते थे, उसके पिता ने कहा-तू पक्षियों के बीच में दिनभर खेलता रहता है आज जब तू शाम को घर आये तो एक चिड़िया ले आना मैं उसके साथ खेलना चाहता हूँ। वह बालक गया पक्षी सारे उसके पास आ गये। जब तक उसके मन में पकड़ने का भाव नहीं आया तब तक तो वे खेलते रहे किंतु ज्यों ही भावना मन में पकड़ने की आयी पक्षी सारे उड़कर दूर हो गये। वह एक महात्मा के पास गया-पूछा तो उन्होंने बताया-बेटा ! तेरी भावना पक्षी समझ गये थे तू उन्हें पकड़ना चाहता था इसलिये वे उड़ गये।

जब तक उन्हें तुमसे अभय दान मिल रहा था तब तक वे तेरे पास आ रहे थे तेरी भावना बदलते ही वे समझ गये। इंसान तो भाषा सुनता-समझता है किंतु पशु-पक्षी वृक्ष आदि भावना तक को पकड़ लेते हैं, भावना की भाषा विश्व की सर्वोत्कृष्ट भाषा है इसे कोई भी समझ सकता है, शब्दों की भाषा समझने वाले सीमित हैं भावना की भाषा समझने वाले देव तिर्यंच आदि सभी होते हैं। अतः सदैव अपनी भावना अच्छी रखो। 'भावना भव नाशिनी, भावना भव वर्धिनी' भावना ही संसार का नाश करने वाली है व भावना ही संसार को बढ़ाने वाली है इसीलिये आप सभी अच्छी भावना रखें मैं भी आप सभी के प्रति अच्छी भावना को भाता हुआ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

७. मानवता

अग्नि में यदि ऊष्णता नहीं है तो वह अग्नि अग्नि नहीं है, जल में शीतलता नहीं है तो वह जल जल नहीं है। हवा में यदि बहाव नहीं है तो वह हवा नहीं, मीठे में मिठास नहीं तो वह मीठा नहीं। बड़ा व्यक्ति वह होता है जिसमें बडप्पन हो ऐसे ही अपने लक्षण से रहित कोई लक्ष्य नहीं हो सकता। लक्षण दो प्रकार के होते हैं एक आत्मभूत और दूसरा अनात्मभूत। अनात्मभूत लक्षण वह होता है जिसे अलग किया जा सकता है जैसे किसी पुरुष के हाथ में लाठी या सिर पर टोपी उस लाठी व टोपी को अलग भी किया जा सकता है। आत्मभूत लक्षण वह होता है जो उस पदार्थ के साथ मिला हुआ होता है। आत्मभूत लक्षण से रहित वह वस्तु ही नहीं होती। जैसे ज्ञान दर्शन चेतना आत्मा का लक्षण है, ज्ञान दर्शन से रहित कोई आत्मा नहीं होती मनुष्य आत्मा का अनात्मभूत लक्षण है मनुष्य योनि वाली आत्मा को बुलाकर लाओ तो वह आत्मा मनुष्ययोनि से रहित भी हो सकती है इसलिये अनात्मभूत लक्षण है।

संसार में मानवाकृति के मानव तो बहुत हैं किंतु मात्र मानवाकृति प्राप्त कर लेने से कोई मानव नहीं हो जाता। मानव तब कहलाता है जब मानव में मानवता हो, वह मानव धर्म का पालन करे। आज संसार में धर्म मानने वाले बहुत से भरे पड़े हैं कोई किसी धर्म को कोई किसी धर्म को मानता है। कोई कहता है मैं जैन हूँ, कोई कहता है मैं सिक्ख हूँ, कोई कहता है मैं मुस्लिम हूँ, तो कोई पारसी, वैष्णव, इस्लाम धर्म को या कोई अन्य धर्म को मानने वाला है। ये सभी ध र्म बाद में हैं सबसे पहले है-मानव धर्म।

पहले मनुष्य जन्म लेता है फिर उसके बाद में उसे धर्म के संस्कार देकर के उस धर्म में दीक्षित किया जाता है। जो पहले मनुष्य

ही नहीं बन पाया तो पुनः अन्य धर्म का पालन कैसे कर पायेगा। जैसे किसी भवन में प्रवेश करने से पूर्व एडमीशन कार्ड दिखाना जरूरी है ऐसे ही मानवधर्म का सबसे पहले पालन करके मानव बनना है, उसके बाद में अपने अन्य-अन्य धर्म को स्वीकार करना है। पहले दूध तो अच्छा हो तब तो खीर बने जब दूध ही नहीं है तो खीर कैसे बने? तो ऐसे ही पहले वस्तु की मूल अवस्था हो पहले आटा तो हो तभी रोटी बनेगी आटा ही खराब है बदबू आ रही है तो अच्छी रोटी कैसे बन सकती है। ऐसे ही मूल में मानव धर्म होना चाहिये।

हम चले देवता कहलाने पर मावन भी कहला न सके,
हम चले विश्वविजयी बनने पर विजय स्वयं पर पा न सके।
हम चाहते हैं बस कैसे भी जल्दी से भगवान बनें,
किंतु नहीं चाहते इससे पहले एक अच्छे इंसान बनें॥

जो व्यक्ति विश्व पर विजय प्राप्त करना चाहता है उसे सबसे पहले स्वयं पर विजय प्राप्त करनी होगी। विजय प्राप्त करने का सबसे पहला सोपान स्वयं को जीतना है। यदि कोई व्यक्ति भगवान् बनना चाहता है तो भगवान् बनने की सबसे पहली शर्त है कि पहले वह एक अच्छा इंसान बने। एक अच्छा इंसान तो एक अच्छा भगवान् हो सकता है, एक अच्छा इंसान ही पुण्यात्मा धर्मात्मा व परमात्मा हो सकता है किन्तु बिना अच्छा इंसान बने कोई भी आत्मा धर्मात्मा, महात्मा, पुण्यात्मा, परमात्मा नहीं बन सकता।

महानुभाव ! सबसे पहली आवश्यकता है कि व्यक्ति मानव ध र्म का पालन करे। किसी से पूछो तुम कौन हो? तो वह अपने मूल को तो भूल गया वह कहता है-मैं डॉक्टर हूँ, इंजीनियर हूँ, कृषक हूँ, व्यापारी हूँ, विद्यार्थी हूँ आदि-आदि बातें तो कहते हैं किंतु वे मूल को तो भूल ही जाते हैं कि वास्तविकता में तो वह पहले मनुष्य हैं बाद में कुछ और हैं। मनुष्य नहीं है तो कुछ भी नहीं है। जब व्यक्ति स्वयं

के मूल को भूल जायेगा तो उसके वृक्ष पर फल नहीं आयेंगे। फूल का तिरस्कार करके, मूल की उपेक्षा करके, कभी वृक्ष पर फल नहीं आते। हम अपने मानव धर्म को समझें, मूलधर्म को समझें। मानवता हमारे अंदर आये, मानवता के साथ-साथ ही और अन्य धर्म आ सकता है जो मानव धर्म का पालन नहीं कर सकता वह जीवन में किसी भी धर्म का पालन नहीं कर सकता।

मानवता के मायने क्या हैं? मानवता के मायने क्या मीठा बोलना है? तपस्या करना है? प्रेम व्यवहार करना है? या व्रतों का पालन करना है? आखिर क्या है? तो मानवता के मायने है मानव धर्म का पालन। जो व्यवहार मानव के द्वारा करने के योग्य है वह व्यवहार मानवता कहलाता है। जो व्यवहार पशुओं के द्वारा करने योग्य है वह व्यवहार यदि मनुष्य करता है तो वह मानवता नहीं, जो व्यवहार दानवों द्वारा किया जाता है वह व्यवहार यदि मानव करता है तो वह मानवता नहीं है, मानवता कहलाती है जिसमें एक दूसरे के हितों का ध्यान रखा जाता है, मानवता वह है जिसमें दूसरों के कष्टों का अपहरण करके उसे सुखी बनाने का प्रयास किया जाता है अथवा जिसमें किसी को भी अनावश्यक रूप से कष्ट नहीं दिया जाता। मानवता के नाते व्यक्ति किसी पर अत्याचार नहीं कर सकता, अन्याय नहीं करता, अनीति का सहारा नहीं लेता, मानवता के नाते वह किसी को सताता नहीं है, किसी को धोखा नहीं देता अपितु कहता है मानवता को देख, भगवान से डर ऐसे कृत्य मत कर।

महानुभाव ! सबसे पहले मानवता चाहिये। मानवता के साँचे में ढला हुआ व्यक्ति ही अन्य कुछ बन सकता है। जैसे जो सोना शुद्ध हो गया उस सोने के आभूषण बनाये जा सकते हैं जब सोना ही शुद्ध नहीं है तो आभूषण कैसे बनेंगे? ऐसे ही पहले मानवता को शुद्ध होना चाहिये मानवता क्या कहलाती है-

63

प्रात:काल का समय था, नवयुगल दम्पत्ति अपनी नयी गाड़ी में बैठकर जा रहे थे। उनके साथ उनका एक छोटा सा बालक भी था। वे सैर करने के लिये जैसे ही शहर के बाहर निकले तो उनकी गाड़ी एक आलीशान होटल के सामने रुकी। पत्नी ने कहा-बेटा भूखा है इसके लिये दूध की आवश्यकता है वह गाड़ी से उतर कर होटल के अंदर गये दूध लिया और दूध के पैसे पूछे, 100 रुपये लगेंगे, उस व्यक्ति ने 100 रु. दे दिये। गाड़ी आगे बढ़ गयी। वे दिन भर घूमे, सैर की, मनोरंजन करते-करते शाम हो गयी। जो दूध उन्होंने खरीदा था अब वह खत्म हो चुका था। शाम को जब वे घूमकर लौट रहे थे तो गाड़ी दूसरे रास्ते से आयी, बालक को भूख लगी बालक रोने लगा, अभी शहर दूर था, तो रास्ते में वहीं जंगल में एक झोंपड़ी दिखाई दी सोचा यहाँ से पानी लेकर बच्चे को पिला दें जब शांत हो जायेगा तो आगे दूध खरीद लेंगे।

गाड़ी झोपड़ी के पास रुकी। देखा वहाँ एक वृद्ध व्यक्ति बैठा है, ठेले पर छोटा सा स्टोव रखा है चाय बना रहा था। उससे पूछा-बाबा क्या करते हो? वे बोले महाशय जी मैं चाय बेचता हूँ आपको चाहिये क्या? व्यक्ति ने चाय पीने से मना कर दिया। तो वृद्ध ने कहा-फिर आपको क्या चाहिये? वह बोला जब आप चाय बेचते हो तो दूध भी आपके पास होगा। बोला हाँ है। तो ठीक है मुझे थोड़ा दूध दे दो मेरा बेटा भूखा है रो रहा है। वृद्ध ने दूध दे दिया अब उस व्यक्ति ने वृद्ध से पूछा-इस दूध के कितने पैसे हो गये बताओ-बाबा जी ने कहा बेटा यहाँ बच्चों के लिये दूध नहीं बेचा जाता। बाबा जी ने जिस लहजे से कहा तो उन दोनों की आँखों में आँसू आ गये।

जो वृद्ध थोड़ी देर पहले उनसे कह रहा था एक चाय पी लो मेरी दो पैसे की कमाई हो जायेगी तब उन्होने चाय नहीं पी किंतु अब उन्हें लगा ये वृद्ध पुरुष मेरे बालक के लिये इतना सारा दूध जिसमें दो चाय

बन सकती हैं वह बिना पैसे के दे सकता है वास्तव में ये मानवता है। अब वे दोनों कहते हैं बाबा हम आपकी चाय अवश्य पीयेंगे और दोनों ने चाय पी-उन्होंने पैसे दिये थोड़ा ज्यादा पैसा देना चाहा यह सोचकर के कि इसने हमें फ्री में दूध दिया है उस दूध के पैसे भी इसी में शामिल हो जायेंगे। तो बाबा ने हाथ जोड़ लिये कहा-बेटा जितनी बुद्धि तेरे पास है उतनी मेरे पास भी है मैंने चाय की जो कीमत बतायी है उतने ही पैसे लूँगा। तू अपने बेटे के दूध के पैसे भी देना चाहता है बेटा मैं भगवान से डरता हूँ।

महानुभाव ! यह कहलाती है मानवता। मानवता के नाते उस वृद्ध ने बच्चे के दूध के हरगिज पैसे नहीं लिये। मानवता का आशय यह नहीं कि हजारों का दान दे दो, मानवता का आशय यह नहीं कि बहुत बड़ी-बड़ी धर्मशाला बनवाओ स्कूल खुलवाओ या बड़े-बड़े भण्डारे करवाओ मानवता के मायने तो यह है कि व्यक्ति के मन में इंसानियत हो जैसी आत्मा अपने शरीर में है वैसी आत्मा सामने वाले के शरीर में है। बस इतना समझ ले तो व्यक्ति अत्याचार नहीं कर पायेगा। जो इसको समझ नहीं पाता है चाहे वह कितना भी बड़ा आदमी बन जाये, आदमी बड़ा नहीं होता किंतु हर अच्छा आदमी बड़ा होता है, उसे कभी छोटा नहीं कहना। सभी अच्छे आदमी बड़े होते हैं उनके नाम इतिहास की पुस्तकों में लिखे जायें या ना लिखे जायें किंतु अच्छे आदमियों के नाम तो दिलों में लिखे जाते हैं पन्नों व पत्थरों पर नहीं क्योंकि पत्थर तो बहुत कठोर होता है आदमियों के नाम पत्थरों पर नहीं नवनीत जैसे हृदयों पर लिखने के लिये होते हैं। तो अच्छे आदमी ही बड़े आदमी होते हैं, सभी बड़े आदमी अच्छे आदमी नहीं होते।

जो बड़े-बड़े आदमी होते हैं जिनका नाम हो जाता है फिर उनके अंदर की मानवता मरने लगती है, सिकुड़ने लगती है, मानवता का ह्रास होने लगता है उन पर या तो धन का भूत सवार हो जाता है या

यौवन का भूत सवार हो जाता है या अपनी योग्यता का भूत सवार हो जाता है, अपनी प्रतिष्ठा वैभव का भूत सवार हो जाता है। फिर वह मानव को मानव नहीं समझता, तिर्यंचों को कुचलता चला जाता है, मानव को रोंदता चला जाता है समझता है मैं ही सब कुछ हो गया। मानवता जिसमें होती है उसके मन में चीटीं के लिये भी रहम होता है भूल से पैर भी पड़ जाये तो जैसे चीटीं तड़पती है वैसे ही वह तड़प जाता है। वह सोच लेता है यदि मेरे ऊपर हाथी का पैर पड़ जाता तो मेरी क्या दशा होती वही दशा इस छोटे जानवर की हो रही है। ये कहलाती है मानवता।

एक छोटे से ग्राम में राम निवास 'सुखिया' रहता था उसका छोटा सा परिवार एक पत्नी व एक बेटा रहता था। वह भगवान का भक्त, भद्रपरिणामी था सरल सहज था अपने काम से काम रखता दूसरों का उपकार जो कर दिया सो ठीक है। गाँव देहात का रहन सहन था ऐसा वह रामनिवास अपनी सुखिया नाम की पत्नि के साथ रहता था, इसलिये उसे राम निवास सुखिया कहते थे। उसकी पत्नी अपने पति का नाम राम न कहकर भगवान-भगवान कहती थी क्योंकि भगवान राम का नाम ले तो उसके पति का नाम आता। पहले परम्परा थी स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेती थी।

एक दिन की बात उसका 20 वर्ष का युवा बेटा खेत से काम करके लौटा तो उसका शरीर बुखार से तपने लगा उसका बहुत उपचार किया कई देशी दवाई लगायी-खिलाई किंतु उसका बुखार ठीक नहीं हुआ रात बीत गयी जागते-जागते। प्रात:काल सुखिया ने चिरायते का काढा पिलाया सही नहीं हुआ, सरैया दी उससे भी ठीक नहीं हुआ नाना प्रकार के देशी उपचार किये किंतु बुखार तो बढ़ता ही चला जा रहा था। वे दोनों अपने पुत्र को डॉक्टर के पास लेकर जाते हैं, डॉ. वी. के. चड्डा उस नगर का प्रसिद्ध डॉ. था। सुखिया और रामनिवास बहुत आशा और उम्मीद के साथ उसके पास पहुँचे क्योंकि उस डॉ.

66

की तारीफ पूरे शहर में थी। किंतु ये क्या जैसे ही डॉ. साहब अपने क्लीनिक से निकले उन्होंने अपनी गाड़ी स्टार्ट करी और जाने लगे। सुखिया ने खूब आवाज लगायी डॉ. साहब मेरा बेटा बहुत अस्वस्थ है, मूर्छित पड़ा हुआ है एक बार उसे देख लो। डॉ. साहब ने कहा–मेरे खेलने का समय हो गया मैं अभी इसे नहीं देख सकता, मेरे साथी मेरा इंतजार कर रहे होंगे कहते हुये गाड़ी आगे बढ़ा ली। बेचारे दोनों देखते रह गये कहाँ ले जायें अपने बेटे को। अब तो बस भगवान की ही शरण है। ज्यों ही बालक को उठाते हैं वहीं उस डॉक्टर के क्लीनिक पर ही बालक के प्राण चले जाते हैं। वे दोनों अपने मृत बालक को लाते हैं, अश्रुधारा दोनों की रुक नहीं रही और आकर उसका दाह संस्कार किया। पूरे गाँव के लोग इकट्ठे हो गये, सब उदास मलीन चित्त हो गये।

समय बीता कई वर्ष बीत गये। अब वह राम निवास वृद्ध हो गया चलने-फिरने में भी असमर्थ सा हो गया था। एक दिन संध्या काल की बात गाँव में अफरा-तफरी मच गयी, राम निवास ने पूछा-बात क्या है इतना शोर-शराबा क्यों हो रहा है तो मालूम हुआ कि डॉ. वी.के. चड्डा के बेटे को सर्प ने डस लिया, वहाँ बहुत भीड़ इकट्ठी हो गयी है बहुत सारे सयाने, मांत्रिक-तांत्रिक आ गये हैं किंतु कोई भी उसके विष को दूर नहीं कर पा रहा है। सुखिया ने भी बात सुनी। राम निवास कुछ आगे बढ़ा सुखिया ने रोकते हुये कहा नहीं-नहीं तुम वहाँ नहीं जाओगे। किंतु बाद में चुपचाप कंबल ओढ़कर वह वी.के. चड्डा के घर पहुँच गया भीड़ में घुस गया और धक्का खाते-खाते बालक के पास पहुँच गया बालक का पैर पकड़कर मंत्र पढ़ना प्रारंभ करता है और कुछ ही मिनट हुये कि बालक की चेतना वापस आ गयी और राम निवास चुपचाप वहाँ से लौटकर अपने घर आ गया।

बालक का विष दूर हुआ सबने पूछा वह व्यक्ति कौन था? पता लगाया तो पता चला कि हमारे ही गाँव के राम निवास ने बालक का विष उतारा है। वह डॉ. उपकार चुकाने के फर्ज से उसके पास आता है और कहता है मैं आपके लिये क्या कर सकता हूँ? वह वृद्ध कहता है डॉ. साहब तुम मेरा क्या उपकार करोगे छोड़ो गर तुम्हारे अंदर मानवता होती तो मुझे संतोष होता, तुम कोई भगवान नहीं थे मेरा इकलौता बेटा था वह आपके क्लीनिक पर अपने प्राण छोड़ देता है किंतु आप खेल को नहीं छोड़ सकते आपके अंदर मानवता नहीं है। आप बड़े डॉ. जरूर हैं, आपने बड़ी पढ़ाई लिखाई जरूर की है किंतु आपकी मानवता सूनी हो गयी।

मैं तो मानवता के नाते तुम्हारे बेटे के पास गया था मैं तुम्हारे बेटे को ठीक करके कोई अहसास नहीं जता रहा मैंने तो अपने मानव ध र्म का पालन किया है, कर्त्तव्य का पालन किया है और अपने कर्त्तव्य का पालन तो सबको करना चाहिये। तुम मेरे प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने आये हो मैं तो सिर्फ तुमसे इतना ही कहूँगा कि आगे कभी मानवता को भूलना नहीं, तुम हर मानव के काम आओ, प्रकृति ने तुम्हें इतना योग्य बनाया है उस योग्यता का अहंकार मत करो, मानव रहो। जो मानव बनकर रहता है वह नि:संदेह सभी धर्मों का पालन करने में समर्थ होता है। जहाँ मानवता नष्ट हो जाती है उसके सभी धर्म भी नष्ट हो जाते हैं।

आप और हम सभी सबसे पहले मानव धर्म का पालन करना सीखें बाद में अन्य धर्मों को अपने जीवन में आरोपित करें तभी हम अपने जीवन में सफल हो सकते हैं, जीवन को सार्थक कर सकते हैं। हमारा सबका जीवन सफल हो सार्थक बनें ऐसी मैं भावना भाता हूँ और इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

८. अपना-पराया

संसार परिभ्रमण का मुख्य कारण केवल एक है, यदि वह कारण हमारे द्वारा नष्ट हो जाये तो हमारा संसार परिभ्रमण भी नष्ट हो जायेगा। वह कारण है मुख्य रूप से 'मोह'। मोहनीय कर्म इस जीव को संसार में परिभ्रमण कराता है। बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। कारण होता है तो कार्य भी होता है, बीज है तो वृक्ष भी बनेगा, नदी बहकर के जा रही है तो कहीं न कहीं समुद्र भी होगा। कोई पुष्प खिल रहा है तो सुंगध भी निकलती होगी, यदि कहीं अग्नि जल रही है तो कहीं उसका धूँआ भी निकलता होगा। जल है तो उसमें शीतलता भी है ऐसा नहीं है कि कारण हो और कार्य न हो। जब कारण है तो कार्य है और कार्य है तो उसके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होगा।

मोह मुख्य रूप से कारण है संसार परिभ्रमण का। उस मोह के मुख्य रूप से दो भेद हैं। एक है दर्शन मोह और दूसरा है चारित्र मोह। दर्शन मोहनीय कर्म जीव की श्रद्धा/निष्ठा को विपरीत कर देता है, चारित्र मोहनीय कर्म जीव को जीव में नहीं रहने देता अजीव में भटकाता है। जब मोहनीय कर्म का प्रभाव जीव पर होता है तब ये जीव मोहित हो जाता है और मोहित होने का आशय है अपने आपको भूल जाना, पर में मोहित हो जाना। जो अपने आप में लीन रहते हैं वे मोहित नहीं होते।

आपने सुना होगा वह स्त्री सम्मोहित हो गयी, वह लड़की में मोहित हो गया या मंत्रमुग्ध जैसा हो गया ये मोहित शब्द आपके सुनने में कई बार आया होगा। मोहित हो जाना अर्थात् उसमें लीन हो जाना, उसमें खो जाना अपने आपको भूल जाना, अपने स्वभाव को भूल जाना अपने मूलधर्म को भूल जाना और पर को ही सब कुछ मान लेना। यहाँ तक कि अपने अस्तित्व को भूलकर पर में अपना अस्तित्व

स्वीकार कर लेना यह कहलाता है मोह और जो अपने अस्तित्व को स्वयं स्वीकार कर लेता है, अपने अस्तित्व के अलावा शेष सबको पर मानता है वह व्यक्ति मोक्ष का पात्र बन जाता है। मोक्ष और मोह दोनों विपरीत ध्रुव हैं। एक उत्तरीय ध्रुव और एक दक्षणीय ध्रुव। यदि मोह के ध्रुव से जो बँधा हुआ है तो मोक्ष के ध्रुव से वह दूर है और मोक्ष के ध्रुव पर पहुँच रहा है तो मोह के ध्रुव से छूट रहा है। दोनों एक साथ नहीं देखे जा सकते।

महानुभाव ! अपना और पराया ये दो शब्द प्राय:कर के प्रचलन में बहुत आते हैं इन दो शब्दों के अलावा व्यवहार नहीं चलता, संसार नहीं चलता, संस्था व समाज नहीं चलती यहाँ तक कि परिवार में दो व्यक्ति ही क्यों न हों, साधुओं का समूह ही क्यों न हो, यदि वे आपस में वचनालाप करते हैं या कोई भी शब्दव्यवहार करते हैं तो कहीं न कहीं उन्हें अपना-पराया शब्द का प्रयोग करना पड़ता है यहाँ तक कि मुनिराज भी व्यवहार वचनालाप में कहते हैं-यह हमारी पिच्छी है, हमारा कमण्डलु है, ये आपका है ये व्यवहार (अपना-पराया) चलता है। व्यवहार में अपना-पराया कहना अलग बात है और अन्तरंग में अपना-पराया मान लेना अलग बात है।

अपना पराया और पराया अपना। संसारी प्राणी से भूल हो गयी जो कुछ उसका अपना था वह तो उसने मान लिया कि पराया है और जो पराया है उसे अपना मान चुका है, जो अपना था वह पराया हो गया, अपने निजी मकान पर तो अन्य किसी किरायेदार ने कब्जा कर लिया है किंतु उसके नाम वह मकान नहीं है और जिस मकान में आप रह रहे हैं उस मकान के कागज आपके पास नहीं है और उसे आप अपना मान बैठे हैं, जो आपका महल है उसे आप भूल बैठे हैं। जो व्यक्ति अपने महल को भूल बैठा है दूसरे की झोंपड़ी पर कब्जा कर लिया है वह झोंपड़ी वाला व्यक्ति आता है कहता है मेरी झोंपड़ी

खाली कर, ये किराये का मकान है खाली कर। ऐसे ही ये शरीर आदि भी किराये के घर हैं जब खाली नहीं करता तब कहता है देख अभी इसमें आग लगाता हूँ तब वह जल्दी से खाली करता है और जैसे ही खाली करता है तो आग लगा देता है।

किंतु अपना निजी शाश्वत महल है वह सिद्धालय उसको हम भूले बैठे हैं, वहाँ पर जहाँ हमें रहना चाहिये उसमें निगोदिया जीव भरे बैठे हैं उन सिद्धों के बीच में सिद्ध बनकर के नहीं निगोदिया बन करके। हमें तो वहाँ रहना है। जब वे निगोदिया जीव वहाँ से निकलकर के व्यवहार राशि में आयेंगे, मनुष्य बनकर साधना करेंगे तब वे भी सिद्ध बन सकते हैं अभी तो वे संसारी प्राणी हैं। हमारा शाश्वत महल तो हमारी आत्मा है और हमें उस आत्मा के सिद्धालय में रहना है हम इस संसार में किसी कुटी पर अपना अधिकार जमा कर बैठ गये हैं और जब थोड़ी देर चैन से बैठ पाते हैं तब तक दूसरा व्यक्ति कहता है खाली करो किराये का मकान है कब तक रहोगे और जब तक उसे होश नहीं है कि मेरा भी कोई निजी मकान है तब तक वह भटकता फिर रहा है कभी इस मकान में घुस गया कभी उस मकान में घुस गया। सूने मकान में घुस जाता है और जब उसका मालिक आता है तो बाहर निकाल देता है। ऐसी अनादि काल से इस संसारी आत्मा की यात्रा चल रही है।

महानुभाव ! आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने समयसार में उदाहरण दिया है-

एक व्यक्ति अपना वस्त्र धुलवाने के लिये धोबी को दे देता है, धोबी ने वस्त्र धो दिया, उस धोबी के पास उसी प्रकार का दूसरा वस्त्र भी आया था उसने वह भी धो दिया, किन्तु भूल इतनी हो गयी धोबी ने जब वस्त्र दिये तो वस्त्र बदल गये। जब व्यक्ति अपने वस्त्र को पहनकर चौराहे पर पहुँचा तभी सामने से दूसरा व्यक्ति आया कहने

लगा ये मेरा वस्त्र है उतार मेरे वस्त्र को। उसने कहा नहीं ये तो मेरा है दोनों में बहुत झगड़ा हुआ अन्ततोगत्वा भीड़ एकत्र हो गयी पूछा गया बात क्या है? दोनों कहने लगे वस्त्र मेरा है-मेरा है। उनसे उनके वस्त्र की पहचान पूछी गयी, पंचों ने वस्त्र उतरवाकर पहचान देखी और निशान आदि देखकर झगड़ा मिटाया।

ऐसे ही हम जो दूसरों के वस्त्र पहन चुके हैं जिस पर्णकुटी काया में बैठे हैं ये हमारा वस्त्र तो नहीं है हमने इसे अपना मान लिया है। हमारे पंच अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु पंचायत लगाते हैं तब वे कहते हैं कि तेरे वस्त्र की पहचान क्या है? तेरे वस्त्र की पहचान है ज्ञान-दर्शन। किंतु वह कहता है मेरे वस्त्र की पहचान है स्पर्श रस गंध वर्ण। काया में तो ज्ञान दर्शन है नहीं इसमें स्पर्श रस गंध वर्ण ये चार गुण पाये जाते हैं। तब पंचपरमेष्ठी निर्णय देते हैं कि ये तो पुद्गल का है तेरा नहीं। इस पुद्गल की काया पर तू अपना अधिकार क्यों जमाता है? सरे चौराहे हमें वह वस्त्र उतार कर देना पड़ता है। और जिसमें ज्ञान-दर्शन चेतना पायी जाती है उसे जो खोज लेते हैं तो वे तो वहाँ अपने शाश्वत स्थान (सिद्धालय) में पहुँच जाते हैं जो नहीं खोज पाते है वे एक वस्त्र को उतारा तो दूसरा वस्त्र पहन लिया फिर झगड़ा होता पंच परमेष्ठी आते हैं समझाते हैं ऐसे अनंतकाल हो गया दूसरों की वस्तु पर कब्जा करते-करते।

ये वर्तमान की नीति नहीं है कि दूसरे की चीज पर कब्जा कर लो 10-20-50 साल तक, तो अब वह उसी की हो गयी उसके अधिकार में हो गयी, वह कहता है 'पट्टा झूठा कब्जा सच्चा'। ये तो सिद्धान्त की बात है तुम कितना ही कब्जा किये रहो इस पुद्गल पर, अनंतकाल तक किये रहो अंत में ये पुद्गल तुम्हारा नहीं हो सकता। भैया तुम्हारा तो ज्ञान दर्शन स्वभाव है, सुख-शांति है, तुम्हारा स्वभाव तो अमूर्तपना है, तुम्हारा स्वभाव अनंतशक्ति व चैतन्यता है फिर तुम

72

विभाव में क्यों डूब रहे हो। तुम स्वभाव को प्राप्त कर सकते हो, तुम ऐसे नहीं हो कि तुम अपने वैभव को न पा सको। जो व्यक्ति अपने महल तक नहीं जा सकता लंगड़ा है, लूला है, विकलांग है या रोगी है, महल बहुत ऊँची चोटी पर है वहाँ तक जा नहीं सकता वह तो खड़ा रह सकता है किंतु जिसमें सामर्थ्य है पहाड़ की चोटी पर चढ़ने की वह तो अपने महल में जा सकता है।

अर्थात् अभव्य जीव तो अपने महल में जा नहीं सकता वह उसके योग्य नहीं है, दूरानुदूर भव्य भी असमर्थता प्रकट करता है तुम तो आसन्नभव्य हो अरे तुम तो तीन लोक के शिखर पर जाकर के अपने शाश्वत महल में जा सकते हो, इसलिये तुम इन घरों में बार-बार क्यों प्रवेश कर रहे हो, ये तुम्हारे घर नहीं मिट्टी के घरोंदे में न जाओ। तुम्हारे जो भवन हैं वे रत्नों से बनें हैं। पाषाण रत्नों से नहीं चैतन्य रत्नों से बने हैं वहाँ जाकर शाश्वत सुख है। वहाँ जाकर तुम्हें कर्मों की मार सहन नहीं करनी पड़ेगी, वहाँ दण्ड नहीं भुगतना पड़ेगा।

एक बार प्रयास करके तो देखो एक बार तो बात मान के देख लो क्यों पराये घर में घुस रहे हो ये सर्प जैसी आदत अच्छी नहीं है इस बिल में घुस गया, उस बिल में घुस गया, ये टेड़े-मेड़े-चलने की आदत छोड़कर सरल-सहज बनो, जो अपना है उसे अपनाओ, अपने को अपनाओ, पराये को पर करो। जो पराये से परे रहता है, अपने को अपनाता है उसे पराये के द्वारा अपमान, अवहेलना सहन नहीं करना पड़ता, जो पराये को छोड़ देता है तो पराया उसे लात मारके भगाता नहीं है पराया तो पराया है वो कभी अपना नहीं होता, पराये की तो छाया भी बुरी होती है अपनी तो छाया भी अपनी माया भी अपनी सब कुछ अपनी है किंतु पुद्गल की माया, छाया, काया पर मत रीझो इससे तो दूर रहो। तेरी काया कैसी है-

ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्म मल वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम भोगें शर्म अनन्ता॥

73

अरे ! तेरी तो काया ज्ञान शरीरी, तेरी माया 'केवल लब्ध रमा धरंत' केवलज्ञानादि 9 लब्धि रूपी तेरी निजी विभूति है उसे प्राप्त कर। तेरे द्रव्य गुण पर्याय का जो परिणमन चल रहा है वही तेरी छाया है उसके बाहर कुछ नहीं स्वचतुष्टय, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव ही तेरा है इसलिये तू पर से विरक्त होकर अपने आप में रह।

संसारी प्राणी जिस वस्तु को अपनी मान लेता है उसके प्रति रागान्वित हो जाता है जिसे अपनी नहीं मानता है उसके प्रति विद्वेष से भर जाता है किन्तु यह उसका भ्रम है अपनी मान रहा है अपनी है नहीं, पराई मान रहा है तो पराई है नहीं। एक क्षण में उसके भाव बदलते हैं कभी कहता है वस्तु मेरी है तभी दूसरे क्षण कहता है वस्तु मेरी नहीं है, जब कहता है वस्तु मेरी है तब भाव अलग होता है और कहता है मेरी नहीं है तब भाव दूसरा होता है। जैसे-

एक व्यक्ति चला जा रहा था, सामने एक मकान में आग लग गयी तो लोगों ने शोर मचाया आग लग गयी, ये शोर उसके कान में भी आया उसने सुना मेरे मकान में आग लग गयी और वह दौड़कर जाता है, उसने अपने पिता जी से कहा-पिताजी अपने मकान में आग लग गयी, पिता ने कहा-अरे हमने तो अपना मकान बेच दिया उसकी लिखा पढ़ी भी हो गयी। अभी जो व्यक्ति रो रहा था, आँसू बहा रहा था अब चेहरे पर थोड़ी शांति आयी। फिर भी एक बार फोन लगाकर पूछा-भाई जो मकान बेचा था क्या उसकी लिखा पढ़ी हो गयी-वहाँ से जवाब आया नहीं। बस इतना सुनना ही था कि वह व्यक्ति पुनः रोने लगा, कहने लगा कि मैं तो बर्बाद हो गया। काश ! वह लिखा पड़ी तभी हो गयी होती तो सही रहता। महानुभाव ! ये संसारी प्राणी की दशा है, उसकी अपने-पराये की प्रवृत्ति चलती ही रहती है।

एक युवा व्यक्ति जिसने फौज में प्रवेश किया, उसकी शादी हुये अभी कुछ माह हुये थे, किंतु ऑडर आया तुम्हें शीघ्र ही अपनी

74

ड्यूटी पर पहुँचना है। अपनी पत्नी को समझाया कि मुझे सीमा पर जाना है लौटकर आने में लम्बा समय भी लग सकता है देश के लिये शहीद भी हो जाऊँ तो भी तुम घबराना नहीं। पत्नी ने कहा-संभव है आपके वंश की वृद्धि हो सकती है आप जल्दी आना मैं आपकी प्रतीक्षारत रहूँगी। वह युवा चला जाता है और समय बीतता है। 1 वर्ष बाद उसे खबर लगी कि उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुयी है। वह वहीं से खुशी व्यक्त करता है आने में असमर्थता ज्ञापित करता है। पुनः घर से पत्र आता है तुम्हारे पिता बहुत अस्वस्थ हैं आ सको तो शीघ्र आ जाओ, उसने पुनः असमर्थता प्रकट की कि नहीं आ सकता। कुछ समय बाद फिर समाचार गया पिताजी का देहावसान हो गया किन्तु वह फिर भी न जा सका। कुछ दिनों बाद फिर समाचार आया माँ का भी देहावसान हो गया। वह फिर भी न जा सका इस प्रकार उसे 12 वर्ष हो गये। 12 वर्ष बाद वह बहुत व्याकुल हो गया सोचने लगा मैंने आखिर किसके लिये धन कमाया ? मैंने अपने माता-पिता को खो दिया, अपनी जन्मभूमि को खो दिया, मेरी पत्नी न जाने किस प्रकार रह रही होगी, मैंने अपने पुत्र का मुख तक नहीं देखा इतनी सब बातों को सोच-सोच कर वह बहुत आकुल व्याकुल हो गया और अपने अफ्सर से कहा कि अब मैं अपने घर जाना चाहता हूँ, उसे घर जाने की आज्ञा मिल गयी।

यह बात जिस समय की है उस समय दूरभाष सम्पर्क भी नहीं था, वाहन आदि भी नहीं चलते थे। वह अपने घोड़े पर बैठकर आ रहा था और बहुत सारा धन जो उसने कमाया था सब अपने साथ लेकर आ रहा था। मार्ग में एक सराय में ठहरा, सराय के मालिक से अपने ठहरने की पूर्ण व्यवस्था करायी साथ में घोड़े के चारे-पानी की भी व्यवस्था करवायी, और सुबह जल्दी ही अपने घर पहुँच जाऊँगा यह सोचकर मन में खुश होकर सो गया। रात के 12 ही बजे थे कि

उसी सराय में एक महिला आयी उसके साथ में एक बालक था, बहुत बीमार था और बहुत रो रहा था उसकी माँ उसे चुप करने का प्रयास भी कर रही थी किंतु उस बालक को तीव्र वेदना थी। वहीं सराय में वह फौजी सो रहा था उसकी नींद खराब हुयी उसने सराय के मालिक को बुलाया, डाँटा कहा ये इतना शोर क्यों मचा रखा है। वह मालिक उस महिला के पास गया कहा-आप इसे शांत करिये किंतु माँ क्या करती उसकी आँखों से अश्रुधारा बहती चली जा रही थी क्योंकि वह अपने बेटे की बढ़ती वेदना को सह भी नहीं पा रही थी और उसके लिये कुछ कर भी नहीं पा रही थी। वह बालक बहुत तड़प रहा था बैचेन हो रहा था और चुप नहीं हो रहा था। अंत में उस युवा फौजी ने सराय के मालिक से कहा-मुझे सोना है, सुबह-सुबह मुझे जाना है इसे बाहर निकालो। सराय के मालिक ने उस महिला व बच्चे को बाहर निकाल दिया। अब वह फौजी चैन से सोने लगा और अपनी पत्नी व बेटे से मिलने के लिये स्वप्न संजोने लगा और सुबह उठकर अपनी जन्मभूमि पहुँच गया।

मकान देखा-अरे ये क्या ये तो खंडहर सा पड़ा है, अड़ौसी-पड़ौसी से पूछा मेरी पत्नी आदि कहाँ हैं उन्होंने बताया वह तुम्हारी याद में तुम्हें खोजती-खोजती यहाँ से चली गयी, बेचारी किसके सहारे जीती माता-पिता की मृत्यु हो गयी, बेटा भी उसका बीमार हो गया था, उसे लेकर तुम्हारी याद में तुमने मिलने के लिये 3 दिन पहले ही यहाँ से चली थी। क्या वो अभी तक तुमसे मिल नहीं पायी? वह फौजी वहाँ से निकलकर उसे खोजने जाता है सोचता है कहीं सरायों पर रुक-रुक कर गयी होगी तो मार्ग में जितने भी सराय पड़ते वहाँ पूछ-पूछ कर उसकी खोज करता हुआ निकल गया और पूछते-पूछते उसी सराय में पहुँचा जहाँ पर पिछली रात्रि रुका था, वहाँ पूछा क्या यहाँ कोई महिला रुकी थी, उस महिला का नाम, गांव का नाम आदि सब

76

बताकर पूछताछ की तो पता चला कि एक महिला आयी था किंतु रात्रि में ही उसे हमने यहाँ से निकाल दिया था वह रोती-हुयी यहाँ से चली गयी। वह और आगे उसे ढूँढने लगा, कुछ ही दूरी पर उसे वह महिला मिली-फौजी ने उससे पूछा-तुम कौन हो? वह बोली मैं भाग्य की मारी हूँ मेरे पति फौज में भर्ती हैं और अपना परिचय देती हुयी अपने पति का फोटो दिखा देती है और कहती है मैं अभी-अभी अपने बालक का अंतिम संस्कार करके आयी हूँ। इतना देख-सुनकर वह फौजी फूट-फूटकर रोने लगता है कहता है मैंने अपने बेटे को अपने ही हाथों से खो दिया। जिस बेटे के लिये मैं इतनी सम्पत्ति लाया था, वह मेरे कारण आज इस दुनियाँ में नहीं है। देखो जब उसे यह ज्ञात नहीं था कि सराय में आने वाली महिला व बालक उसके ही हैं, उसका ही बालक रो रहा है तब उस फौजी ने उसे वहाँ से बाहर निकलवा दिया और आज जब यह ज्ञात हुआ तब स्वयं उसके लिए रो रहा है।

महानुभाव ! आज दुनिया की यही शैली हो गयी है। वह अपना-पराया करता है। जिसे पराया मानता है उसके प्रति करुणा, दया, रहम सूखता चला जा रहा है और जिसे अपना मानता है उसके लिये प्राणों को भी देने के लिए तैयार रहता है।

यदि संसारी प्राणी सभी के प्रति दया-करुणा की भावना रखें, सबमें अपनत्व की भावना रखें तो शायद उसके साथ ऐसा धोखा न हो। अत: कभी भी मानवता को न भूलें अपने धर्म व कर्त्तव्य को न भूलें उनका निष्ठा के साथ पालन करें। अपने पराये का भेद भाव करना ही दु:ख का कारण व संसार का जनक है इसीलिये सब भेदभाव छोड़ अपने धर्म का पालन करो जिससे नि:संदेह आपको सुख शांति मिलेगी। अपने पराये के द्वन्द में फँस गये तो इस संसार के दु:खों से मुक्ति नहीं मिलेगी। आप भी इस भाव का चिंतवन करते

रहेंगे तो आपके मन से ममत्व भाव दूर होता चला जायेगा, समत्व भाव आता जायेगा, वह समत्व भाव ही कल्याण का मूल है। आप सभी का शुभ हो मंगल हो, ऐसी भावना करता हुआ शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

जो सस्सद णिय-दव्वं, णिय-गुण-पज्जायं णिच्च कालम्हि।
सग-चदुट्ठं णिय होदि, इयरं परं भणिदं समये॥

अर्थ:-जो शाश्वत निज द्रव्य, गुण, पर्याय हैं नित्य काल में वही अपना है। स्व चतुष्टय (स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) अपना है इसके इतर सब पर है ऐसा जिनागम में कहा है।

- अप्प-विहवो
(आचार्य श्री वसुनंदी मुनि)

९. प्रार्थना और परमात्मा

एक वाक्य आप सब लोगों के सुनने में आया होगा-आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है, जब-जब जिस चीज की आवश्यकता पड़ती है तब-तब उस वस्तु का आविष्कार किया जाता है। आविष्कार मनुष्यों के द्वारा किया जाता है, किंतु कई बार मनुष्य उस आविष्कार को करने में समर्थ भी नहीं हो पाते। जैसे कोई रोग जनता में फैलता चला जा रहा है उसकी औषधि नहीं मिल पा रही तो कई व्यक्ति उसके शिकार हो जाते हैं। किन्तु प्रकृति नियम से आवश्यकता की पूर्ति करती ही करती है, मानव उस आवश्यकता की पूर्ति कर पाये या न कर पाये किंतु प्रकृति सदैव अपना संतुलन बना कर रखती है। जब-जब भी प्रकृति को जिस चीज की आवश्यकता होती है तब-तब प्रकृति से वह वस्तु/वह व्यक्ति/वह पदार्थ स्वतः ही कहीं न कहीं से प्रकट हो जाता है।

रात्रि के बाद स्वतः ही प्रातः काल सूर्योदय होता है और सूर्य जब ढलता है तो स्वयं अंधकार आ जाता है। कभी आकाश में तारे भी आते हैं साथ में चन्द्रमा भी आता है, कभी आकाश में बादल होते हैं तो कभी बरसात होती है, कभी कड़कती धूप होती है तो कभी ठिठुरती सर्दी, कभी तेज हवा चलती है तो कभी तेज तूफान आँधी चलती है तो कभी हवा भी बंद हो जाती है। प्रकृति स्वयं ही अपना संतुलन बना लेती है। जहाँ शीत ज्यादा है पुनः वहाँ गर्मी भी ज्यादा हो जायेगी। जो व्यक्ति ज्यादा गर्मी सहन कर सकता है वह ज्यादा सर्दी भी सहन कर सकता है। जैसे वृक्ष की शाखा पर पड़ा हुआ वह झूला जितना आगे जा सकता है उतना ही पीछे भी जा सकता है, ऐसे ही प्रकृति में भी संतुलन रहता है। जहाँ हम रहते हैं वहाँ भी कभी कर्मभूमि का काल होता है, कभी भोगभूमि का काल होता है, कभी

दुष्टों का साम्राज्य आ जाता है तो कभी शिष्टों का साम्राज्य होता है। ये सब चलता रहता है।

वस्तु अनादिकाल से संसार में थी, है और रहेगी, वस्तु की कभी कोई कमी नहीं है। वस्तु की कब कहाँ कैसे आवश्यकता पड़ती है कहा नहीं जा सकता। वही वस्तु कभी तो कोई व्यक्ति ग्रहण भी नहीं करता और वही वस्तु कभी किसी के लिये बेशकीमती हो जाती है कि उसके लिये अपने प्राण भी दे सकता है। पानी मूल्यवान् नहीं होता पानी का मूल्य प्यास से बढ़ता है। यदि बाजार में पानी की कमी हो जाये तो बाजार में एक टेंकर पानी की कीमत 100 रु. भी हो सकती है 1000 रु. भी हो सकती है 10,000 रु. या उससे भी ज्यादा हो सकती है और वही टेंकर जब सब जगह पानी ही पानी बह रहा था, बारिश अच्छी खासी हुयी थी तब वह टेंकर भरा खड़ा है तब उसकी कोई आवश्यकता नहीं। तो जब प्यास तीव्र होती है तब पानी की कीमत बढ़ जाती है।

जब भूख जोरों से सताती है तब रूखे-सूखे भोजन की कीमत भी बढ़ जाती है, नींद जब सताती है तब बिस्तर की कीमत अपने आप बढ़ जाती है। तीव्र नींद की दशा में कंकड़-पत्थर पर भी बिस्तर का आनंद आ जाता है और आँखों में नींद न हो तो लगता है वे डवलप के गद्दे भी चुभ रहे हों। प्यास न हो तो अमृतोपमा शीतल मिष्ट सुगंधित जल भी ऐसा लगता है कि पीते ही मुख कड़वा हो गया हो पीने की इच्छा नहीं होती है, जब प्यास लगी होती है तब गड्ढे में रखा हुआ पानी जिसमें मिट्टी भरी हो उस पानी को भी पत्ते के दोने में पीकर प्यास बुझाई जा सकती है। जब भूख लगती है तब जंगल में पड़े फलों को खाकर भी क्षुधा को शांत किया जा सकता है और जब भूख न हो तब सामने 56 प्रकार के व्यंजन भी रखें हों उन्हें खाने की इच्छा भी नहीं होती।

80

महानुभाव ! संसार में एक व्यक्ति वे हैं जो नास्तिक कहलाते हैं, एक व्यक्ति वे हैं जो आस्तिक कहलाते हैं भगवान में आस्था रखते हैं। जो प्रभु परमात्मा में आस्था रखते हैं हम उनकी बात करते हैं उनमें भी अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो परमात्मा का नाम तो लेते हैं प्रार्थना, इबादत स्तवन आदि करते दिखाई देते हैं फिर भी प्रभु परमात्मा से मानव का साक्षात्कार नहीं हो पाता। आत्मा में प्रभु परमात्मा का कोई स्वाद नहीं आता। जब स्वाद नहीं आया तब प्रभु परमात्मा के पास भी पहुँच जाओ तो क्या फर्क पड़ता है।

एक बालक ने सब्जी बनायी वह उसमें नमक नहीं डाल पाया और टिफिन पैक करके ऑफिस ले जा रहा था, रास्ते में एक नमक की फैक्ट्री पड़ती थी उसने वह डिब्बा (टिफिन) ज्यों की त्यों नमक की बोरी में रख दिया 1 घंटे बाद टिफिन वापस ले लिया और जब सब्जी खायी तो उसे स्वाद नहीं आया। अरे ! मैंने तो इस टिफिन को 1 घंटे तक नमक की फैक्ट्री में नमक के बोरे में रखा था फिर भी स्वाद नहीं आया। तो भैया चाहे वह टिफिन नमक के बोरे में रखा हो या नमक की बोरी टिफिन के ऊपर रख दी जाये क्या फर्क पड़ता है जब तक कि नमक उस सब्जी में न पड़े। अंदर जाकर नमक न घुले तब तक नमक का स्वाद नहीं आ सकता। जब तक नमक की और सब्जी की दूरी बनी हुयी है तब तक वह नमक सब्जी में अपना प्रभाव नहीं छोड़ सकता, ऐसे ही प्रभुपरमात्मा की और भक्त की जब तक दूरी बनी है तब कितनी ही समीपता हो जाये जब तक वे दोनों मिलते नहीं हैं तब तक भक्त को भगवान की भक्ति का आनंद नहीं आता है। जब भक्त अपने आप में भगवान को घोलने लगता है तो भक्त भी अपने आप भगवान बनने लगता है। उसका कर्म मल धुलने लगता है। परमात्मा बनेगा तो कर्म का मल धुलेगा, परमात्मा अंदर घुसेगा तो कर्मों का ताला खुलेगा।

81

जब तुम्हारा चित्त निर्मल हो, चित्त के कपाट खुलें तब तो परमात्मा अंदर प्रवेश करे। आप कहते हो आ गया होगा। भई कैसे आ गया होगा, चाबी तो तुम्हारी जेब में रखी है क्या दरवाजा तोड़कर पहुँच जायेगा क्या? दस्तक देकर लौट जायेगा। ऐसे ही तुम्हारा प्रभु परमात्मा है वह हृदय के समीप आना भी चाहता है किंतु तुम तो अपने हृदय में अपनी प्रेयसी को, लाड़ले बेटे-बेटी को बसा कर बैठे हो, अपने मकान, दुकान, फैक्ट्री आदि को बसा कर बैठे हो अब परमात्मा वहाँ कैसे आयेगा? तुम्हारी सराय तो पहले से भरी है उसमें बैठने की जगह ही नहीं है और तुम निमंत्रण देते हो कि आकर मेरी सराय में ठहर जाओ। परमात्मा इतना समझदार तो है। अरे कोई मुसाफिर भी आता है तो भरी सराय देखकर चला जाता और फिर प्रभु परमात्मा तुम्हारी भरी सराय में कैसे आयेगा?

तो महानुभाव ! वह हृदय रूपी सराय खाली भी तो होना चाहिये जिससे प्रभु परमात्मा ठहरे। प्रभु परमात्मा लड़-झगड़ कर कभी तुम्हारे मन की वेदी पर नहीं बैठेगा, किसी को धक्का देकर के नहीं बैठेगा प्रभु परमात्मा को तो साक्षात साष्टांग प्रणाम करके, पूरी निष्ठा, भक्ति, समर्पण के साथ अपने आत्म प्रदेशों की शक्ति सहित जब बुलाओगे तब बैठेगा। प्रभु परमात्मा तो पारे की तरह से है पारा पकड़ में नहीं आता उसे पकड़ो तो वह छूट-छूट कर जाता है ऐसे ही प्रभु परमात्मा को जब आत्मा के अदृश्य प्रदेशों से बाँधा जायेगा तभी उसे मन के मंदिर की वेदी पर बिठाया जा सकता है और तुम सोचो कि प्रभु परमात्मा ऐसे ही आकर के बैठ जाये तो ऐसे वह नहीं बैठेगा।

जब प्रार्थना तीव्र होती है तब प्रभु परमात्मा आ जाता है, कहते हैं जब चातक पक्षी की प्यास बढ़ती है तो आकाश में सघन बादल छा जाते हैं। कहते हैं जब संध्याकाल में गाय का बछड़ा घर में रहता है तो बछड़े की आवाज गाय तक पहुँचे या न पहुँचे भावना पूर्ण रूप

82

से पहुँचती है इसलिये गाय संध्याकाल में गौधूलि बेला में दौड़ती हुयी अपने बछड़े से मिलने के लिये आती है। क्यों? क्योंकि उसकी भावना तीव्र हो गयी। जब भक्त प्रभु परमात्मा से मिलने के लिये पागल हो जाता है तब प्रभु परमात्मा से मिलन सहज ही हो जाता है, क्योंकि प्रभु परमात्मा हमसे दूर नहीं है। लोग कहते हैं सिद्धालय में है, विदेह क्षेत्र में है, मंदिर में है, यहाँ वहाँ है, प्रभु परमात्मा के जिनालय में तो बिम्ब हैं सिद्धालय में उनकी आत्मा है किंतु हमारा प्रभु परमात्मा तो हमारे जिनालय में है हमारी अंतर आत्मा है।

ज्यों-ज्यों प्रार्थना व प्रेम का विस्तार होता जायेगा उतना ही हम प्रभु परमात्मा के समीप पहुँचेंगे। ज्यों-ज्यों हम प्रभु परमात्मा के समीप पहुँचेंगे त्यों-त्यों हम अपनी आत्मा के समीप पहुँचेंगे। ज्यों-ज्यों अपनी आत्मा के समीप पहुँचेंगे त्यों-त्यों हमारी आत्मा परमात्मा बनती चली जायेगी। जो व्यक्ति आत्मा के समीप नहीं पहुँचता है तो समझो अभी प्रभु परमात्मा के समीप भी नहीं पहुँचा उसकी प्रार्थना भी मिथ्या है।

तुम्हारी प्रार्थना मोथरी हो जाती है रुन्द्र हो जाती है जैसे कोई व्यक्ति जब तलवार लेकर चलता है तो उसमें जंग न लग जाये इसलिये बार-बार धार देता है। जब चैत्र के माह में कोई किसान अपने खेत में लावणी करने जाता है तो अपने हसिया को देख लेता कि ध ार मोथरी तो नहीं हो गयी। जब वह किसान चातुर्मास में मेंड़ बनाता है फावड़ा कुंद हो जाता है तो फावड़े में धार लगवाता है।

एक लकड़हारा कुल्हाड़ी से लकड़ी काटता है, वह बहुत मेहनत करता है उसने एक दिन में 10 लकड़ी काटी दूसरे दिन खूब मेहनत की और 9 लकड़ी काट पाया, अगले दिन फिर से मेहनत की और 7 ही लकड़ी काट पाया। ऐसा क्यों? जब कि वह मेहनत तो ज्यादा कर रहा है, समय ज्यादा लगा रहा है दरअसल में उसकी कुल्हाड़ी की धार मंद होती चली जा रही है। मेहनत ज्यादा करे धार कमजोर हो तो

लकड़ी ज्यादा नहीं कटेंगी कम कटेंगी। ऐसे ही एक भक्त ने माना कि पहले दिन प्रार्थना की 5 मिनट, दूसरे दिन 10 मिनट, तीसरे दिन 25 मिनट करते-करते एक घंटा तक लगाने लगा किन्तु पहले दिन 5 मि. में जो आनंद आया वह आनंद एक घंटा प्रभु भक्ति में नहीं आया। क्यों ? क्योंकि उसकी प्रार्थना की धार मोथरी हो गयी थी। अन्यथा अन्तर्मुहूर्त की भक्ति भी तीव्र हो तो बड़ा प्रभाव दिखाती है और तीव्र नहीं हो तो 2-4-6 घंटे की भक्ति भी प्रभाव नहीं दिखाती।

जब प्रार्थना में तीव्रता आती है तो बाहर की वीणा बाँसुरी व संगीत की आवश्यकता नहीं पड़ती। मीरा व राधा को अपने प्रभु परमात्मा को रिझाने के लिये बाँसुरी की या वीणा की आवश्यकता पड़ी, अन्य किसी को भी आवश्यकता पड़ी, कोई अपने प्रभु परमात्मा को मनाने के लिए नाच रहा है, झूम रहा है, कोई गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहा है, कोई रो रहा है तो कोई अपने प्रभु परमात्मा को मनाने के लिये सर्वस्व छोड़कर दिगम्बर हो गया। सब कुछ खाना-पीना छोड़ दिया अब तो मैं तेरे पास ही रहूँगा तू अब मेरे पास आयेगा ही आयेगा। किंतु प्रभु परमात्मा को तो अंदर से बुलाओ केवल दिगम्बर होने से प्रभु परमात्मा नहीं मिलते। बाँसुरी-वीणा-सारंगी लेने से प्रभु परमात्मा नहीं मिलते हैं, पीले-नीले कपड़े पहनने मात्र से प्रभु परमात्मा नहीं मिलते हैं। प्रभु परमात्मा तब मिलते हैं जब अंतर आत्मा से प्रार्थना के बोल फूटते हैं वे बोल ही परमात्मा तक जा पाते हैं। अन्य सभी प्रार्थना के स्वर तो वायुमण्डल में ही अटक कर भटक कर रह जाते हैं।

जैसे किसी पर्वत पर बहुत बड़ी-बड़ी चट्टान हैं उनके अंदर से जब पानी का दबाब आता है तब चट्टानें टूटती चली जाती हैं चट-चट की आवाज आती है उन चट्टानों में से पानी का झरना फूट पड़ता है ऐसे ही तुम्हारे हृदय पर अभी क्रोध मान माया लोभ रूपी

84

चट्टानें जमीं पड़ी हैं अभी कहीं मोह लगा है, प्रार्थना तो कर रहे हो किंतु लोभ के कारण कर रहे हो, प्रार्थना माँगकर कर रहे हो, भिखारी बनकर, विकारी बनकर कर रहे हो, नाम ख्याति के लिये कर रहे हो, ये सब प्रार्थनायें प्रभु को पाने में असमर्थ होती हैं। अंतर आत्मा से निकली सच्ची प्रार्थना तो वास्तव में प्रभु परमात्मा तक पहुँचती ही है।

तीन लोक में उसे बीच में कोई रोकने वाला नहीं वह तीर की तरह से सीधी जाती है जैसे जीव ऋजु गति से सीधा चला जाता है। सिद्ध बनने वाला जीव सीधे सिद्धालय में जाता है बीच में उसे कोई रोक नहीं सकता ऐसे ही अंतरआत्मा से निकली प्रार्थना को कोई रोक नहीं सकता वह सीधे परमात्मा तक पहुँचती है और जब प्रार्थना परमात्मा तक पहुँच जाती है, परमात्मा के लिये पूरा समर्पण हो जाता है तब ऐसा लगता है कि आठों याम परमात्मा मेरे साथ है। जब परमात्मा मेरे साथ है तब ऐसा लगता है कि मैं स्वयं भी परमात्मा हो गया। बस वही है-वही है ऐसे बोलते-बोलते अपना विसर्जन कर दिया यह संसारी आत्मा जब विसर्जित हो जाती है तब परमात्मा बन जाती है।

जैसे दीक्षा लेते ही संसारी गृहस्थावस्था का नाम, गाँव सब बदल जाता है उसका दूसरा जन्म हो जाता है दीक्षा लेने वाला व्यक्ति गृहस्थ जीवन के समस्त अस्तित्व को विसर्जित कर देता है तब त्यागी व्रती दीक्षार्थी सन्यासी कहलाता है। यदि अपने अतीत के संबंध को साथ में लेकर के चलता है तब तक वह त्यागी-व्रती नहीं कहलाता। जब गृहस्थ जीवन से पूर्ण मर जाता है तब त्यागी सन्यासी बन पाता है, आधा-आधा मरने से अधमरा रहता है। ऐसे ही प्रभु परमात्मा बनने के लिये हम संसार से पूर्ण मर जायें तो हम पूरे परमात्मा बन सकते हैं। यदि स्वर्ग भी चाहते हैं तब पूरा मरना पड़ता है तभी पूरा स्वर्ग मिलता है अधमरे होकर तो नरक की वेदना ही भोगनी पड़ेगी इसीलिये प्रभु

85

परमात्मा को पाने के लिये पूरा समर्पण चाहिये। बिल्कुल 100% चाहिये, ये कोई बनिया की दुकान नहीं कि इतने प्रतिशत समर्पण किया हो तो इतना प्रतिशत परमात्मा मुझे मिल जाये। यहाँ तो 99.99% भी समर्पण है तो भी प्रभु परमात्मा नहीं मिलेगा यहाँ तो 100 में से 100 नंबर ही चाहिये तभी परमात्मा से साक्षात्कार होगा।

महानुभाव ! प्रार्थना परमात्मा तक पहुँचने का नियामक हेतु है, प्रार्थना के मार्ग को स्वीकार किये बिना आज तक कोई भी व्यक्ति परमात्मा नहीं बना। भक्त भक्ति में लीन होता है तो भगवान स्वयं प्रकट होते हैं। वह भक्त भक्ति में खो जाना चाहिये यदि वह भक्ति में बुद्धि का प्रयोग कर रहा है, युक्ति-ज्ञान का प्रयोग कर रहा है तो समझ लेना चाहिये कि भक्त की भक्ति में समर्पण अभी कम है। भक्त को भक्ति करते समय कोई और दिखाई दे रहा है तो समझो उसे अभी भगवान दिखाई नहीं दे रहा है। किसी कवि ने कहा-

जिस इबादत में सिर उठाने का होश रहे तो फिर वह कैसी इबादत ? जब सिर प्रभु परमात्मा के चरणों में रख दिया फिर तो उठाना ही नहीं। जो अपने परमात्मा के रंग में रंगा है उसे तो बस वही, सिर्फ वही ही दिखाई दे रहा है। उसे सर्वत्र कण-कण में रोम-रोम में परमात्मा, हर रूप में परमात्मा ही दिखाई देता है जब ऐसा पागलपना आ जाता है जैसे मीरा को पागलपन आया जहर का प्याला उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाया, भक्त प्रहलाद को पागलपन आया तो अग्नि भी जला नहीं पायी, सीता की भक्ति को अग्नि भी जला नहीं पायी, सेठ सुदर्शन की भक्ति सूली का सिंहासन बन गया हमारा प्रभु परमात्मा सदैव हमारे साथ रहता है, उसकी हमसे कोई दूरी नहीं है बस दूरी इतनी है कि हमने उसको दूर मान लिया है। हम हमेशा पास में रहें तो वह पास में रहे।

एक भक्त था रामदास वह भगवान की बहुत भक्ति करता था, भक्ति करते-करते उसे लगा कि उसे भगवान दिखाई दे रहे हैं। उसने

सबसे कहा मुझे भगवान दिखाई देते हैं नगर वालों को सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, नगर वाले सभी पहुँचे और कहने लगे दिखाओ तुम्हारे भगवान कहाँ है। उसने भक्ति की किंतु भगवान् नहीं आये बहुत देर हो गयी तो सभी लोग वहाँ से चले गये, रामदास अकेला रह गया और रोने लगा। थोड़ी देर बाद भगवान का रूप दिखाई दिया तो वह शिकायत करने लगा-कहने लगा भगवान ! यदि तुमने मुझे दर्शन देने ही थे तो सब नगर वालों के सामने क्यों नहीं आये अब क्यों आये? मैं 3 घंटे से खड़ा था आपकी भक्ति में। तभी उसे उनकी वाणी सुनाई दी-रामदास ! तू आज मेरे लिये तीन घंटे खड़ा हो गया और मैं नहीं आया तो तूने मुझसे शिकायत कर दी। मैंने तो कभी तुझसे शिकायत नहीं की। जबकि मैं तो सदा तेरी परछाई बनकर तेरे साथ खड़ा रहता हूँ। तू 24 घंटे में मुझे कितनी बार देख पाता है ? तू कभी मुझे देखता है क्या? तू मुझे नहीं देखता तो मैंने आज तक तुझसे शिकायत नहीं की, और मैं तुझे 3 घंटे नहीं दिखाई दिया तो शिकायत करने लगा। ये प्रार्थना तो तेरी थोथी प्रार्थना है। भक्त कभी शिकायत नहीं करता और शिकायत करने वाला कभी भक्त नहीं होता। सच्ची भक्ति और शिकायत एक दूसरे के दुश्मन है।

महानुभाव ! चाहे क्षण भर भी करो पर सच्ची प्रार्थना करो, झूठी प्रार्थना से कुछ भी नहीं होने वाला। झूठी प्रार्थनायें प्रभु से नहीं मिलाती जैसे नकली नोटों से व्यापार नहीं होता। असली नोट कम भी हो तब भी व्यापार चल सकता है। नकली नोट, नकली प्रार्थनायें स्वप्न की तरह से हैं ये केवल मन को बहला सकती हैं मंजिल तक नहीं पहुँच सकती। आप सभी सत्य प्रार्थना को करें तथा परमात्म स्वरूप को प्राप्त कर सकें मैं आपके प्रति ऐसी भावना भाता हूँ और इसी भावना के साथ शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

१०. जीवंत दुश्मन चिंता

संसार में कुछ जीव स्वस्थ दिखाई देते हैं, प्रसन्नचित्त दिखाई देते हैं, सुखी दिखाई देते हैं, मुदित और प्रमुदित दिखाई देते हैं किन्तु इसके विपरीत संसार के अधिकांश प्राणी दु:खी, व्याकुल, चिंतातुर एवं संक्लेशित, आर्त्त-रौद्र ध्यान में संलिप्त दिखाई देते हैं। जो व्यक्ति सुखी हैं वे भी उसी प्रकार के है जैसे दु:खी व्यक्ति हैं। मानवाकृति से दोनों एक जैसे लगते हैं दोनों का शरीर संस्थान भी एक जैसा लगता है व रहन-सहन भी एक जैसा लगता है, दोनों का खान-पान भी एक जैसा दिखाई देता है, दोनों का भाषा व्यवहार भी लगभग एक जैसा है किंतु फिर भी अंतर दिखाई देता है। एक व्यक्ति अंतरंग से रोम-रोम से पुलकित है दूसरा व्यक्ति संक्लेशित व दु:खी हो रहा है। एक व्यक्ति सूखी रोटी खाकर भी मस्त है-

''रूखा सूखा खाय के ठंडा पानी पी। देख परायी चुपड़ी मत ललचाये जी।''

वहीं दूसरा व्यक्ति कह रहा है कि हे भगवान् ! आज तूने मुझे खाने को पूड़ी तो दी किन्तु साथ में मात्र चार सब्जी। बस दु:खी हो गया कि उसकी थाली में तो खीर भी है मेरे पास हलवा भी नहीं। तो दु:ख प्राप्त करने का कारण कोई और नहीं है हमारा मन ही दु:खों को प्रकट करता है। नदी का पानी मल का प्रक्षालन करता है किंतु वह नदी का पानी कीचड़ को भी पैदा करता है। नदी में जब पानी कम रह जाता है तब वह नदी कहीं कच्ची भूमि से गुजर कर जा रही हो तो वहाँ दलदल बहुत ज्यादा हो जाता है। पर्वत से गिरती हुयी नदी में दलदल नहीं होता क्योंकि पाषाण से रगड़ कर पानी आता है वहाँ दलदल हो नहीं सकता जहाँ मिट्टी होती है वहाँ पानी कम हो जाये तो दलदल रहता है।

88

तो महापुरुषों के मन में कितने ही विचारों की बाढ़ भी आ जाये या चाहे विचार कम भी हो जायें फिर भी उनके मन में दलदल रूपी चिंता नहीं होती। किंतु सामान्य पुरुषों के मन में विचारों की बाढ़ अर्थात् जब अच्छे सुविचार आते हैं, तब विकार रुपी गंदा जल बह जाता है और पानी निर्मल हो जाता है। और जब विचारों का आवेग, निर्वेग, संवेग नहीं होता, समधारा बहती है तब बड़ी शांति मिलती है किंतु जब चक्रवाती विचार आते हैं तो पुनः वह पानी गंदा हो जाता है, जब विचारों की शीतलता कम होती है, विचार कम होते जाते हैं, जब व्यक्ति का चित्त अंदर से अशांत होता है तो अंदर से अग्नि की उष्णता बढ़ती है, बाहर से संताप बढ़ता है और वह जल नदी में जैसे ही कम हो जाता है तो कीचड़ होने लगती है। ऐसे ही जघन्य पुरुष के मन में जब और ज्यादा की चाह होती है तो उसके मन में विकृति पैदा होती है। विकृति किसी भी रूप में आ सकती है। चाहे चिंता के रूप में आ जाये, चाहे आसक्ति के रूप में आ जाये, चाहे उन्माद के रूप में आ जाये, प्रमाद के रूप में, चाहे वासना के रूप में, चाहे मोह के रूप में, लोभ, क्रोध, मान, मायाचारी किसी भी रूप में आ जाये विकृति विकृति है।

विकृति हमारी प्रकृति नहीं है ? भारतीय संस्कृति में विकृति को निन्द्य माना है त्याज्य व हेय माना है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति का सर्वोपरि, सर्वोत्कृष्ट उच्च स्थान रहा है, प्रकृति सदैव वन्दनीय, पूज्यनीय एवं श्रेष्ठ मानी जाती है। प्रकृति प्राकृतिक रूप है जो जो प्रकृति के साथ जीता है वह प्रकृति की तरह से आनंदित होता है।

चित्त में विकृति पैदा क्यों होती है? चित्त में विकृति पैदा तब होती है जब व्यक्ति प्रकृति का उल्लंघन करता है। जब-जब यह चित्त अपने हिस्से से ज्यादा माँगता है तब चित्त कुचित्त/विकृत हो जाता है अतः चित्त को सुचित्त बनाओ। जिनका चित्त चित्त में है वे ही

नि:संदेह अनंत काल के लिये अपने चित्त में लीन हो सकते हैं। जो चिंतवन में लीन हैं वे भी अपने चित्त को प्राप्त कर लेंगे और वे भी सिद्धालय तक पहुँच जायेंगे किन्तु जिनका चित्त अचित्त में लीन हो गया है, जिनका चित्त अपने हिस्से से ज्यादा चाहता है, दूसरों के अधिकारों पर अपना अधिकार जमाना चाहता है जिनका चित्त दूसरों के हिस्सों को छीनना चाहता है, समय से ज्यादा चाहता है, जिसके चित्त में जब बेईमानी घर जमा लेती है तब चिंता रूपी अर्धांगिनी उसके साथ में आ जाती है।

विकृत चित्त कभी अकेला नहीं आता चिन्ता, तृष्णा, वैमनस्यता, विक्षोभ साथ में लाता है। जैसे बरसात में नाना प्रकार के कीड़े मकौड़े पैदा हो जाते हैं, नाना प्रकार की घास पैदा हो जाती है ऐसे ही चित्त में जब-जब विकृति पैदा होती है तब विकृत भाव-विभाव परिणाम भी आने लगते हैं।

चिन्ता किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। और ध्यान रखो तुम्हारे चित्त में जो चिंता का वृक्ष पैदा हो गया है उस वृक्ष के एक-एक पत्ते को तोड़ने की अपेक्षा से तो अच्छा है उस चिन्ता के वृक्ष को समूल उखाड़ कर फेंक दो। तब निश्चिंत होकर चैन की नींद सो सकोगे। यदि तुम चिन्ता के वृक्ष को उखाड़ फेंकने में समर्थ नहीं हो तो तुम्हें कौन निश्चिंत बना सकता है? वह वृक्ष तुम्हारे ही चित्त पर तो खड़ा है और वह तुम्हारे ही विचारों से पुष्पित, पल्लवित, फलित हो रहा है। उसे बाहर से आकर कौन उखाड़े? बाहर से तो सिर्फ आवाज लगायी जा सकती है कि इसे उखाड़ दो ये करील का, बेशर्म का पेड़ है या विष वृक्ष है। कोई दूसरा आकर नहीं उखाड़ेगा वह बाहर से सिर्फ सलाह दे सकता है, उखाड़ने की विधि बता सकता है किंतु उखाड़ना तो तुम्हें ही पड़ेगा क्योंकि वह तुम्हारी सीमा रेखा में प्रवेश नहीं कर सकता है। तुमने अपने आजू-बाजू में,

90

आगे-पीछे सब जगह बहुत बड़ी-बड़ी दीवारें चिन लीं है तो तुम्हारे अधिकार क्षेत्र में कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिये अपने उस वृक्ष को तुम्हीं उखाड़ कर फेंको क्योंकि पैदा ही तुमने किया था तो उखाड़ भी तुम ही सकते हो।

देखो-यह चिन्ता रूपी वृक्ष दिन, पक्ष, मास, दो मास, छः मास, वर्षभर में आपने इतना बड़ा किया है चाहो तो एक समीचीन चिंतन रूपी आरी से चिंता रूपी वृक्ष को धराशाही किया जा सकता है। तत्वचिंतन की आरी एक ही अन्तर्मुहूर्त में उस वृक्ष को धराशाही कर सकती है अथवा सम्यक्तप व वैराग्य की अग्नि चिंता रूपी वृक्ष के बागों को जला सकती है तो एक बात ध्यान रखो अपने जीवन में तुम्हें तुम्हारे भाग्य का मिलेगा दूसरे के भाग्य का तुम्हें कभी नहीं मिलेगा। तुम्हारा भाग्य तुम्हारे ही द्वारा निर्मित हुआ था, निर्मित हो रहा है, निर्मित होगा। अपने भाग्य के निर्माता तुम ही थे, हो और तुम ही रहोगे। फिर दूसरों को दोष क्यों देते हो? जब तुम्हारे भाग्य का कोई छीन नहीं सकता तो फिर तुम दूसरों के भाग्य का क्यों छीनना चाहते हो। जो वस्तु मिलनी है मिल जायेगी तुम्हारा भाग्य तुम्हारे पुरुषार्थ से बन जायेगा फिर तुम्हें चिंता किस बात की करनी।

जब पैदा हुये तब नग्न ही पैदा हुये थे कहीं मकान, दुकान, फैक्ट्री आदि सब साथ में लेकर के आये थे क्या? अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र, आभूषण आदि सब साथ में लेकर के आये थे क्या? अरे ! हमारा क्या किसी ने छीन लिया? कोई हमारा कुछ छीन नहीं सकता, ये प्रकृति सदैव न्यायप्रिय रही है। प्रकृति के अनुसार चलकर स्वतंत्र आनंद ले सकते हैं, प्रकृति के विरुद्ध रहेंगे तो निःसंदेह विकृति में फँसकर के हम दुःखी हो जायेंगे। जब कोई हमारा एक परमाणु भी नहीं छीन सकता हम किसी का एक परमाणु मात्र भी छीन नहीं सकते, तो फिर चिंता किस बात की?

91

आप कहेंगे-आप तो महाराज (साधु) जी बन गये आपको तो चिंता कुछ है नहीं, हम तो गृहस्थ हैं गृहस्थों को बहुत चिन्ता होती है। तो अरे भाई-आप को यदि नष्ट हुये की चिंता है तो जो नष्ट हो ही चुका है, कोई मर ही चुका है, तो उसकी चिंता क्यों करते हो। जो काम निकल ही चुका था उसके विषय में चिंता करने से लाभ ही क्या? यदि चिंता करने से कार्य सिद्ध हो जाये तो ठीक है मैं भी तुम्हारे साथ बैठ जाता हूँ चिन्ता करने के लिये। यदि तुम्हारा मरा हुआ बेटा चिंता करने से जीवित हो जाये तो ठीक है। जिन्दा होगा क्या? जब नहीं होगा तो फिर चिंता क्यों? आपकी बंद दुकान चिंता करने से चालू हो जायेगी क्या? तुम्हारे यहाँ चोरी हुयी या लुट गये, पिट गये, आग लगी, कुछ भी हुआ उससे क्या होने वाला है जो अतीत बीत गया उसकी चिंता करना तुम्हीं बताओ बुद्धिमानी है या मूर्खता ? तो उस मूर्खता के काम तुम क्यों करते हो।

दूसरी बात-ठीक है महाराज जी हम अतीत की चिंता नहीं करेंगे, अब बेटी बड़ी हो रही है उसकी शादी करनी है, बेटे की पढ़ाई कराना है व्यवसाय कराना है, मकान बनाना है ये सब चिंता तो हमें हो सकती हैं न ?

हम पूछते हैं-आप यह सब भविष्य में करेंगे? यदि तुम्हारी आज शाम को ही आँख बंद हो गयी तो। फिर तुम क्या करोगे? भविष्य जब आया नहीं फिर उसकी चिंता क्यों कर रहे हो। आज से तुमने कल नहीं देखा। जब न कल का भरोसा है और न पल का भरोसा है तो पल भर बाद की चिन्ता क्यों? कल, परसों महीनों भर की चिन्ता क्यों? अरे चिन्ता करके तुम अपने परिणामों को विकृत क्यों बना रहे हो, अपना रौद्र ध्यान क्यों बना रहे हो, अपने पुण्य को क्षीण क्यों कर रहे हो, पाप का संचय क्यों कर रहे हो। चिंता रूपी डायन से बचो। ये तो मोहनी विद्या है जो तुम्हें मोह लेती है और मोहकर के लूट लेती

है, तुम्हारी गुणरूपी सम्पत्ति को तुम्हारे शरीर रूपी सखी को तुम्हारे ध र्म व धैर्य, साहस, आत्मविश्वास सबको लूट लेती है।

ये चिन्ता चिता की विश्वस्त सहेली है ये चिंता चिता का काम करने वाली है। ये कहती है-तू तैयार रह मैं व्यक्ति को तेरे पास पहुँचा दूँगी। कैसे पहुचाऊँगी? उसको मैं मृत तुल्य कर दूँगी और फिर वह जल्दी मर जायेगा तो तेरे पास (चिता) पहुँच जायेगा। चिता ऐसे नहीं जलती उसके पास पहुँचाने वाली चिंता ही होती है इसलिये चिंता से मुक्ति पाओ। वे ही व्यक्ति महान होते हैं जो चिंताओं से दूर होते हैं। ये चिंता पूरे संसार को बाँधने वाली है। आचार्यों ने लिखा है-

चिंता बन्ध्यौ सयल जगत चिन्ता किणहु न बद्ध।
जे नर चिंता बस करइ, ते माणव नहि सिद्ध॥

चिन्ता ने पूरे संसार को बांध लिया है चिन्ता किसी ने भी नहीं बाँध पायी और जिन महापुरुष ने चिंता को वश में कर लिया है वे मानव नहीं वे सिद्ध बन गये।

चिन्ता कब पैदा होती है ?

चिन्ता से पहले पैदा होती है इच्छा, कामना, अभिलाषा। जब वह पूर्ति नहीं होती तो चिन्ता बढ़ जाती है। चाह अंकुर है, अभिलाषा पौधा है, कामना की तीव्रता वह पेड़ है, चिंता उसका पुष्प व फल है। पहले चाह ही पैदा मत होने दो, चिंता का बीज है चाह उसे ही पहले मारने का प्रयास करो और सोचो जो मिल रहा है वह बहुत अच्छा है उसी में संतुष्ट रहो और पुरुषार्थ करो।

अपने यहाँ निष्काम, निष्कांक्ष भक्ति कही है पुरुषार्थ करो किन्तु कामना मत करो, फल की इच्छा मत करो। फल तो तुम्हें स्वतः मिलेगा ही मिलेगा उसे कौन रोक सकता है। यदि कोई व्यक्ति पानी में नमक घोल दे तो पानी तो खारा होगा ही होगा और नमक डालकर

93

भगवान से प्रार्थना करो कि हे भगवान् ! मेरा पानी खारा हो जाये तो ये कहना मूर्खता है। वृक्ष की छाया में पहुँचकर कौन बुद्धिमान् उस वृक्ष से कहेगा कि मुझे छाया दे दे, छाया तो स्वतः मिलेगी ही मिलेगी। ऐसे ही जब सहजता में ही तुम्हें सब कुछ मिल रहा है फिर व्यथित व चिंतित क्यों होते हो। चिंता करने से ज्यादा नहीं मिल जायेगा अपितु चिंता करने से तो घट जायेगा, तुम्हारा भाग्य मिट जायेगा, पुण्य मिट जायेगा अतः चिंता नहीं करना चाहिए।

''चिंता चिता समान, बिंदुमात्र अंतर लखो,
चिता दहत निर्जीव को चिंता जीव समेत।''

चिता तो निर्जीव (शरीर) को जलाती है किन्तु चिंता चिता से बड़ी है चिंता में एक अनुस्वार और होता है चिता में अनुस्वार भी नहीं है चिंता में एक अनुस्वार ज्यादा होने से जीवंत मनुष्य के सिर में वह बिंदु कील की तरह गड़ गयी है जो जीवन भर तड़पाती रहती है। और चिता क्या होती है-जब व्यक्ति मर जाता है तब अग्नि लगायी जाती है मुखाग्नि दी जाती है। मुखाग्नि तो मुर्दों को दी जाती है किंतु चिंता तो कील ठोंक देती है चिंतित व्यक्ति सदैव दुःखी रहते हैं और जो निश्चिंत रहते हैं वे ही प्रभु परमात्मा की सच्ची भक्ति कर सकते हैं, संयम, व्रत, आचरण कर सकते हैं। चिंता में लीन व्यक्ति रोगों को आमन्त्रण देता है, धर्म ध्यान को धुतकार करके अपने चित्त में से निकाल देता है। वह अपने नीतिमार्ग से भटक जाता है व असामाजिक बन जाता है। वह चिंतालीन व्यक्ति पशु से बदतर जिंदगी जीता है, वह दुर्गति का पात्र बन जाता है इसलिये इन चिंताओं को छोड़ो।

चिन्ता तुम्हें संसार में भटकाती है। चिन्तवन करोगे तो भटके हुये राही को भी सही रास्ता बताने में समर्थ हो जाओगे। इसलिये चिंता करके स्वयं न भटको न दूसरों को भटकाओ। तत्त्व का सम्यक चिंतन करके सही मंजिल पर पहुँचो और दूसरों को सही रास्ता दिखाओ।

94

एक पुरुष बहुत ही परेशान सोच रहा था क्या करूँ उसके पास बहुत धन था किन्तु वह धन प्राप्त करके भी सुखी नहीं था अशांत चित्त था। सब जगह गया किंतु उसके चित्त को समाधान नहीं मिला। वह किसी महात्मा के पास गया-उन्होंने कहा तूने जब अपने चित्त में चिंता की होली जलायी है तो शांति कैसे मिलेगी उस होली में तुम्हारा शांति रूपी चंदन जलता चला जा रहा है चिंता रूपी अग्नि बढ़ती चली जा रही है वह अग्नि जब शांत होगी तभी शांति का चंदन तेरे आत्म प्रदेशों में महक उठेगा।

वह बोला-महात्मन् मैं अस्वस्थ भी हूँ। महात्मा जी ने उससे दो-चार बातें और कहीं और महात्मा जी समझ गये ये सेठ आलसी है, लोभी-लालची है, कुछ काम नहीं करना चाहता। महात्मन् ने कहा-मेरे पास एक भस्म रखी है वह बहुत कीमती है। किंतु उस औषधि की एक शर्त है। तीन गोली दिन में तीन-तीन बार खानी हैं ऐसे 9 गोली खानी हैं, विधिपूर्वक खानी है उस दवाई का दुरुपयोग नहीं करना। सेठ ने कहा-आप जैसा कहोगे वैसा ही करूँगा। महात्मा ने 27 पुड़ियाँ उसे दी और कहा 3 दिन में तुम स्वस्थ हो जाओगे। महात्मा ने कहा विधि बहुत कठिन है-सेठ ने कहा अगर स्वर्ग से अमृत भी मँगाना पड़ा तो मँगा लूँगा आप चिंता न करो। महात्मन् बोले-उसकी आवश्यकता नहीं है इन तीन पुडिया की तीन गोली बनेगी ये भस्म रत्नों की है। इसकी गोली पानी से नहीं बना सकते, अमृत से भी नहीं बना सकते इसकी जो गोली बनानी है वह अपने माथे के पसीने की बूँदे जो आयें, उस पसीने से तीन गोली बनाकर 3 गोली सुबह, 3 दोपहर व 3 शाम को खाना है।

सेठ जी ने कहा ये तो बहुत मुश्किल है। महात्मा जी बोले तभी तो मैं कह रहा हूँ यदि स्वस्थ होना चाहते हैं तो ऐसा ही करना। वह सेठ महात्मा जी से औषधि लेकर गया, कहता है पसीना कैसे लाऊँ।

रुपये तो खर्च कर सकता हूँ पर पसीना कहाँ से लाऊँ। वह प्रात:काल से जगा खूब दण्ड बैठक, कसरत आदि करने लगा यहाँ-वहाँ दौड़ता और दौड़ते-दौड़ते हाँफी तो आ गयी किंतु पसीना फिर भी नहीं आया। पुन: खूब मेहनत की और एक बूंद पसीना आया तो उसे बहुत संभाल कर रखा। पीपल के पत्ते पर वह बूंद रखी उसमें भस्म मिलायी पसीना कम पड़ गया तो फिर कसरत करने लगा, ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने लगा पसीना आया पुन: गोली बनायी और तीन गोली खायी। दोपहर तक इतना थक गया कि सो गया। शाम को जगा फिर मेहनत की, बड़ी मुश्किल से पसीना निकाला और प्रात:काल जगते ही महात्मा जी के पास पहुँचा बोला आपकी दवाई तो मैं एक समय ही खा पाया किंतु मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। महात्मा जी ने कहा-दवाई थी ही ऐसी स्वस्थ करने वाली। सेठ ने कहा वास्तव में रामबाण औषधि थी मैं आपकी बची दवाई वापस करने आया हूँ।

तो महानुभाव ! वह सेठ किससे स्वस्थ हुआ? औषधि से नहीं। जब उसने शारीरिक कार्य किया। शारीरिक कार्य करने वाला व्यक्ति तनाव से मुक्त हो जाता है। तनाव में डूबा व्यक्ति शारीरिक कार्य नहीं कर सकता, वह तनाव में डूबा व्यक्ति हँसता-मुस्कुराता नहीं, सूम सा बैठा रहता है, इसलिये खूब हँसो क्योंकि हँसने-मुस्कुराने वाले व्यक्ति के पास चिंता नहीं आती, चिंता तो शोकाकुल बना देती है।

क्या लेकर आये थे, क्या लेकर जाना है सब यही छोड़कर जाना है इसलिये प्रसन्नचित्त रहो। पाप कर्म से पाप मिलेगा, पुण्य कर्म से पुण्य मिलेगा इस सिद्धान्त को ध्यान में रखो तुम्हारा कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। तुम्हारे साथ कोई अन्याय कर नहीं सकता, तुम्हें तुम्हारे भाग्य का पूरा मिलेगा अत: क्यों चिंता करते हो, निश्चिंत रहो, प्रसन्नचित्त रहो ये निश्चिंतता व प्रसन्नचित्तता ही धर्मध्यान का मूल

मंत्र है, आत्मकल्याण का मार्ग है यही सुखी जीवन की सही औषधि है। स्वस्थ रहो, व्यस्त रहो, मस्त रहो। आप सबका हित हो, मंगल हो, शुभ हो इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

खीयदे जा सरीरं, तण-धण-जणाण भणेदि चिंता सा।
रोयाइ दुह किलेसा, दुग्गइ-पावस्स हेऊ सा॥

अर्थः-देह, धन व जनों की चिंता जो शरीर को क्षीण करती है वह चिंता कहलाती है। यह चिंता रोगादि दुःख, क्लेश, दुर्गति व पाप का कारण मानी जाती है।

-विज्जावसु-सावयारो
(आचार्य श्री वसुनंदी मुनि)

११. सबसे बड़ा आतंकवादी

आज वर्तमान में व्यक्ति बहुत दु:खी दिखाई दे रहे हैं, सुखी व्यक्तियों का अनुपात बहुत कम है। दु:खी एक देखते हैं तो चार दिखाई देते हैं, चार देखते हैं तो हजार दिखाई देते हैं। सुखी एक है तो दु:खी चार हैं सुखी चार हैं तो दु:खी हजार हैं, सुखी यदि हजार हैं तो उसके अनुपात में दु:खी बेशुमार हैं। दु:ख का कारण क्या है? कोई व्यक्ति धन नहीं है इसलिये दु:खी है, कोई व्यक्ति अपना तन रोगी होने के कारण दु:खी है, कोई मानसिक वेदना है इसलिये दु:खी है, कोई अन्य प्रकार से दु:खी है, अन्य प्रकार से आशय स्वयं अपने आप से या दूसरों से दु:खी है। दूसरों के बढ़ते वैभव को देखकर कोई दु:खी है तो कोई अपने कार्य में सफलता न मिलने से दु:खी है। दूसरों की सफलता से संतुष्ट व खुश होने वालों का अनुपात इस समय कुछ कम दिखाई दे रहा है।

किंतु सुख का मूलकारण हमारे अंतरंग की संतुष्टि, तुष्टि पर निर्भर करता है। सुख भी हमारे अंदर है, दु:ख भी हमारे अंदर है। हम दु:ख में दूसरों को निमित्त बना लेते हैं किंतु हम अपने सुख में उनको अपना निमित्त बनाना नहीं चाहते। दु:ख हो या सुख बाँटने पर बढ़ता चला जाता है, बटोरने पर वह सूखता चला जाता है। हम बाँटने का कार्य करें। हमारे पास कोई खुशी है तो हम अपनी खुशी को दूसरों को ऐसे बतायें जिससे उसकी खुशी बढ़ जाये। हम अपनी खुशी को बताते तो हैं किन्तु अहंकार में आकर के बताते हैं, दूसरे का तिरस्कार करते हुये बताते हैं उसको यह दिखाते हैं जो मेरे पास है वो तेरे पास नहीं तू तो तुच्छ है, निम्न है। अरे ! अपनी खुशी को ऐसे जाहिर करें कि भाई-भगवान की कृपा से व आप सभी के सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हुआ है, हम चाहते हैं आपका साथ ऐसे ही मिलता रहे।

तो सहयोगी बनो किंतु व्यक्ति दूसरों की सफलता को देखकर दु:खित हो जाता है। जिसका मुख्य कारण यह है कि व्यक्ति के पास अपनी शक्ति को, अपने वैभव को, अपने स्वभाव को जानने का ज्ञान व दृष्टि नहीं है वह केवल बाह्य उपाय में पड़ा हुआ है। जो व्यक्ति मोह के जाल में पड़ा हुआ है, मोही व्यक्ति ही सबसे ज्यादा पाप करता है निर्मोही व्यक्ति कभी पाप नहीं करते। मोह के आवेश में आकर के वह दूसरों को अपना शत्रु समझता है किसी एक को अपना मित्र समझता है। जिसको शत्रु समझता है उसको अपने सामने रहने देना नहीं चाहता, जिसे मित्र समझता है उसे अपना सब कुछ मान लेता है, किंतु बाद में वह मित्रता भी निभा नहीं पाता, उससे भी शत्रुता हो जाती है दोनों में बैर बढ़ता चला जाता है। मित्रता निभाने वाले बहुत कम व्यक्ति होते हैं।

आप देख लेना आज तुम्हारे मित्र कितने हैं ज्यादा से ज्यादा 2, 4 या 10, पर दुश्मन कितने हैं? कम से कम मित्रों की अपेक्षा दुगुने तो होंगे। एक बात और भी है-तुम सिर्फ चार लोगों की प्रशंसा सुन सकते हो और उन चार की प्रशंसा भी हमेशा नहीं सुन सकते। जो तुम्हारे सच्चे, खास, पक्के मित्र हैं उनकी प्रशंसा तुम अन्य व्यक्ति के सामने तो सुन सकते हो किंतु अपने परिवार के सामने, अपने रिश्तेदार के सामने, सगे सम्बन्धियों के सामने कोई तुम्हारी निंदा करे, तुम्हारे मित्र की प्रशंसा करे तो तुम उस पर भी गुस्सा होंगे।

कहने का आशय यह है तुम अपने मित्रों की भी प्रशंसा सुन नहीं सकते। तुम्हारी सहनशक्ति कितनी कमजोर हो गयी है, तुम्हारा दृष्टिकोण कितना बदल गया है, तुम कौन से मोह के अंधकार में भटक रहे हो, जो तुम अपने आप से बेखबर हो। बाहर के व्यक्तियों के प्रति तुम्हारे मन में कोई संवेदनशीलता नहीं, कोई उदारता का, करुणा का, दया का भाव ही नहीं है। ये मोह एक ऐसा कर्म है जो

बुद्धि को मोहित कर देता है जिसकी बुद्धि एक बार मोहित हो जाती है तो उस बुद्धि को ठीक करवाना बड़ा कठिन है। आपने सुना होगा कोई लड़का किसी लड़की पर मोहित हो गया, या लड़की लड़के पर मोहित हो गयी, उनके माता-पिता, घरवाले उन्हें बहुत समझाते हैं पर 100 में से 10 व्यक्ति समझ पाते हैं 90 व्यक्ति तो उसके पीछे या तो प्राण ही दे देते हैं नहीं तो उसी को अपना जीवन साथी बनायेंगे।

महानुभाव! विडम्बना तो इस बात की है आज सरकार भी इस प्रकार के केसों को वैलिड मानने लगी है किन्तु ये अनुचित है। भारतीय संस्कृति के अनुरूप पहले जो सामाजिक कार्यक्रम होते थे वे उचित ही होते थे। किंतु आज व्यक्ति अपने आप को भूल कर पर में लीन होने लगा है उसे मोह का नशा ऐसा चढ़ जाता है कि फिर उसे न तो धर्म की याद आती है, न कर्म की याद आती है, न माता-पिता की याद आती है, वह इतना मोह में मोहित हो जाता है कि सिर्फ वही-वही नजर आता है।

जिस प्रकार एक शराब पीने वाला शराबी व्यक्ति, शराब के नशे में होश खो बैठता है वह योग्य अयोग्य सभी बातों को कहने का विचार नहीं रख पाता। जब वह नशा उतर जाता है तब उसे अपना होश आता है इससे पूर्व उसे स्वयं का, स्वयं के माँ-बाप का पता नहीं रहता। क्योंकि नशा होने पर बेहोशी आ जाये तब तो ठीक है किंतु नशा होने पर उत्तेजना आती है, मादकता आती है, उसका शरीर चंचल हो जाता है, उसकी इन्द्रियाँ उत्तेजना से युक्त हो जाती हैं इससे उसके शब्द स्खलित होते हैं, उसका शरीर उसके काबू में नहीं रहता वह नाना प्रकार के अपराध कर लेता है।

मोह के नशे में कैसा होता है-एक व्यक्ति शराब पीकर जा रहा था, जब मार्ग में जा रहा था तो झूमता-झूमता पैर लड़खड़ाते हुये चल रहा था, तभी सामने एक वृक्ष आया, वह शराबी उस वृक्ष से कहता

है हट मेरे सामने से और उस वृक्ष के तने को उसका कान समझकर घुमाता है, पेड़ नहीं हटा। बोला हट नहीं तो अभी दो तमाचे लगाता हूँ, उसने दो बार थप्पड़ सा मारा पेड़ तो हिल ही नहीं रहा। शराबी का क्रोध चढ़ता है और कहता है-तू ऐसे नहीं मानेगा और दो-चार लातें उसमें मारता है जैसे ही कस कर लात मारी तो स्वयं मुँह के बल नीचे गिरा। जब खड़ा हुआ तो पीठ पेड़ की तरफ हो गयी। सामने पेड़ नहीं दिखा, तो वहाँ के आस-पास के लोगों से कहने लगा, देखो दुनियाँ ऐसी है आज बातों का जमाना नहीं है लातों का जमाना है-देखो मेरी चार लात खाकर ये पेड़ कैसे मेरे पीछे खड़ा हो गया, इतनी देर से मैं प्यार से इससे कह रहा था मेरा रास्ता छोड़ दे, मेरे सामने से हट जा पर ये था कि मान ही नहीं रहा था। देखो अब लात खाकर चुपचाप पीछे खड़ा हो गया।

तो मोही व्यक्ति की दशा ये ही होती है। वृक्ष तो जड़ है, मूर्ख है मूर्ख कभी रास्ता नहीं छोड़ता रास्ता हमें उसके लिये छोड़ना पड़ता है। सामने से सांड आ रहा हो तुम जा रहे हो तो क्या तुम सांड से कहोगे कि रास्ता छोड़ दे, बल्कि तुम ही स्वयं रास्ता छोड़कर चले जाओगे। ऐसे ही जो जड़ बुद्धिवाले होते हैं, मूर्ख होते हैं, दुष्ट व्यक्ति होते हैं उनसे यह उम्मीद मत करो कि वे तुम्हारे लिये रास्ता छोड़ देंगे सज्जन स्वयं रास्ता छोड़कर चलते हैं उनके लिये। वे तो अपने रास्ते पर चलते हैं, वे दुर्जन वाले रास्ते पर जाते ही नहीं। वे दुर्जनों को रास्ते से उठाकर अलग नहीं फेंकते हैं, उस दुर्जन वाले रास्ते को सज्जन नहीं बनाते हैं वे कहते हैं हम सज्जन वाला रास्ता इतना अच्छा बना लेंगे जिससे लोग उस रास्ते को छोड़ कर इस रास्ते पर चलने लगें।

एक बार कुछ लोग खेत पर काम करने गये, वहाँ एक पहाड़ था। सर्दी का समय था, धूप नहीं आ रही थी पहाड़ की वजह से, वे बड़े परेशान थे, तो वे 10-20 लोग खेत का काम छोड़कर पहाड़

को धक्का देने लगे। आने-जाने वाले व्यक्ति कहते हैं क्या कर रहे हो? वे बोले इस पहाड़ ने हमारी आने वाली धूप को रोक रखा है इसलिये उसको साईड में कर रहे हैं। वे बोले पागल हो गये हो क्या? और कहकर चले गये। उन लोगों को धक्का देते-देते दोपहर हो गयी। सूर्य दोपहर में ऊपर आ गया, तो कहने लगे चलो कुछ तो साता मिली हमें। और खेत का काम छोड़कर शाम तक लगे रहे कहने लगे-देखो हमने पहाड़ को ढेल दिया। जो सूर्य पहाड़ के पीछे था वो अब पहाड़ के सामने आ गया। शाम को घर चले गये। दूसरे दिन पुनः खेत पर काम करने आये, पहाड़ वहीं था सूर्य का उदय हुआ धूप नहीं आयी। तो वे कहने लगे रात में जब हम घर जाते हैं तो ये पहाड़ यहाँ आ जाता है। दिन में ढेल-ढेल कर इसे हम पीछे करते हैं।

महानुभाव ! व्यक्ति जो जड़ बुद्धि होते हैं उन्हें कौन समझाये? लोग समझाने भी लगें कि भैया पहाड़ तो वहीं के वहीं है सूर्य चला गया है। अरे कैसी बात करते हो सूर्य कहाँ चलता है वो तो आकाश में ही रहता है यदि सूर्य आ जाये तो बुला ले यहाँ पर। सूर्य नहीं चलता तुमने देखा नहीं हमने पहाड़ ढेल दिया ऐसी ही उल्टी बातें और उल्टी चेष्टा मोही प्राणी करता है। सीधी चेष्टा उससे होती नहीं है।

वह श्वान की तरह से होता है, जैसे श्वान को सूखी हड्डी मिल जाये तो वह उसे बड़े आनंद से चबाता है, चूसता है और अनुभव करता है कि हड्डी में से रक्त निकल रहा है, जब हड्डी टुकड़े-टुकड़े हो जाती है मुँह में चुबती है मुँह पूरा घायल हो जाता है लहू-लुहान हो जाता है तब उन हड्डी के टुकड़ों को जमीन पर डालता है तब उसे अहसास होता है कि रक्त हड्डी में से नहीं उसके मुँह में से निकल रहा था। ऐसे ही मोही प्राणी संसारी वस्तुओं का भोग उपभोग करके ऐसा मान लेता है कि मुझे सुख इस पदार्थ में से मिल रहा है।

102

देखो सुख पंचेन्द्रिय के विषयों में नहीं है क्यों? यदि सुख अच्छे शरीर में है तो जिनके शरीर बड़े सुंदर हैं कामदेव जैसे लगते हैं, उनसे पूछो क्या तुम सुखी हो?-वह कहेगा-काहे का सुखी शरीर सुंदर है तो क्या हुआ मेरा पेट को गड़बड़ रहता है, मैं तो अस्वस्थ रहता हूँ मुझे भोजन नहीं पचता। दूसरे व्यक्ति से पूछा-तुम्हारा तो स्वास्थ्य भी ठीक है तुम तो सुखी होंगे-वह बोला अरे मेरा रंग इतना साँवला है कि हर वक्त मेरे मन में हीन भावना रहती है। तीसरे से पूछा-तू तो स्वस्थ भी है, गोरा सुंदर भी है तुम तो सुखी होंगे-वह बोला-गरीब हूँ पेट भरने के लिये पैसा नहीं है मेरे पास, मैं धन के लिये दु:खी हूँ। अगले से पूछा-तेरे पास तो धन पर्याप्त है तुम तो सुखी होगे-बोला काहे का सुखी-मेरी अभी तक शादी नहीं हुयी। जिसके पास पत्नी है उससे कहा-वह सुखी हो-तो वह बोला काहे का सुख जब ये नहीं थी तब सुखी था जब से आयी है तब से बहुत ज्यादा दु:खी हो गया।

महानुभाव! दु:खी सब हैं जो धनी हैं, करोड़पति हैं, वे भी दु:खी हैं? वे कहते हैं रोगी हैं डायबिटीज है डॉ. ने कहा मीठा नहीं खाना, नमक नहीं खाना बी.पी. हाई रहता है, घी-दूध नहीं खाना कोलेस्ट्रोल बढ़ा रहता है, गद्दे पर नहीं सोना कमर में तकलीफ हो गयी है। बताओ मैं क्या करूँ करोड़ों की धन सम्पत्ति होने के बाद भी उसे भोग नहीं पा रहा। मैंने मेहनत की दिन रात पसीना बहाया और कमाया आज मेरे नौकर मजा ले रहे हैं। पत्नी बच्चे सब खा रहे हैं मैं उनका मुँह देख रहा हूँ मेरे पास वही सूखी रोटी और दाल का पानी है। काहे का सुख ये कोई सुख कहलाता है क्या?

महानुभाव ! वास्तव में सुख इन सब पदार्थों में नहीं है अपने अन्तर्ज्ञान को जाग्रत करो, जब तक वह ज्ञान जाग्रत नहीं होगा तब तक सुख के मार्ग को तुम प्राप्त नहीं कर सकोगे। अन्तर्ज्ञान कैसे जाग्रत होगा? मोहनीय कर्म के परदे को हटाओ। आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी जी कहते हैं-

103

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान्यदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः॥

जैसे-कोंदों का भात, कोदों में मादकता ज्यादा होती है उसका भात बनाकर खाने से व्यक्ति को मादकता आ जाती है और वह अपने आपको भूल जाता है ऐसे ही जो व्यक्ति मोह में लीन रहता है वह व्यक्ति भूल जाता है मैं कौन हूँ। वह शरीर को ही अपनी आत्मा मानने लगता है आँखों से दिखने वाले संसार को ही सत्य मानने लगता है। किन्तु ये बाहर में दिखाई देने वाला सत्य नहीं है ये तो माया है अपनी ब्रह्म स्वरूपी आत्मा को जानो। ये माया तुम्हें मोहित कर तुम्हें तुम्हारे स्वरूप से भटका देती है। ब्रह्म जिसके ज्ञान में आ गया, यदि तत्त्व ज्ञान हो गया तो ऐसे व्यक्ति को संसार की माया भटका नहीं सकती।

छोटे-छोटे बालक गुड्डा-गुड़िया का खेल खेलते हैं अन्य बातों में आ जाते हैं किन्तु बड़े व्यक्तियों को बड़े-बड़े खिलौनों में मोहित कर दिया जाता है। कहने का आशय है वे मोहित तो हो रहे हैं उनका अज्ञान अभी दूर नहीं हुआ। छोटे बालक छोटे-छोटे घरोंदे बनाते थे, बड़े व्यक्ति बड़े-बड़े मकान, कोठी बनाते हैं। छोटे बच्चे काँच के पत्थर, टुकड़ों से खेलते थे नकली कागज से नोट बनाकर खेलते थे बड़े बालकों ने कहीं कागजों के नोट बनाकर गवर्नर की मोहर ठोंक दी वह भी कागज है। सच्चा धन नहीं है। बच्चे खेल खेलने के बाद, कहते हैं-'खेल मिटर गयो बनिया मर गयो' ऐसी कहावत है। यदि मर गया तो जीवन का खेल मिट गया और खेल मिट गया तो बस मृत्यु हो गयी। तो खेल में तो जिंदगी होती है घंटे दो घंटे की और ये भी जिन्दगी का खेल है इसे घंटे दो घंटे न खेल करके पचासों साल भी खेल सकते हैं। जब तक खिलौने में चाबी भरी है तब तक खिलौना चल रहा है श्वांस रूपी चाबी बंद हो गयी तो खिलौना चलना भी बंद हो जायेगा।

तो मोही व्यक्ति अपने स्वरूप को जान नहीं पाता, पर को ही अपना मान लेता है, मोह का परदा जब तक नहीं हटेगा तब तक उसे आत्मा का बोध नहीं हो सकता। जब तक आत्मबोध नहीं होगा तब तक मोह का परदा नहीं हटेगा। एक व्यक्ति परियों, अप्सराओं के पीछे दौड़ रहा है, अप्सरा को पकड़ने का दु:साहस कर रहा है, उसे समझाया भाई ये पकड़ में नहीं आती, तो जो जान जाता है वह पकड़ना छोड़ देता है किन्तु जो नहीं जानता वह व्यर्थ ही हर प्रयास करता रहता है। अरे-माया और छाया भी ऐसी ही है।

छाया माया एक सी विरला जाने कोय
भगता के पीछे फिरे, सन्मुख भागे खोय

यह छाया और माया पकड़ने में नहीं आती हैं। मोही व्यक्ति माया को छाया की तरह पकड़ना चाहता है और निर्मोही, ब्रह्मज्ञानी व्यक्ति पकड़ना नहीं चाहता है। मोह सबसे बड़ा आतंकवादी है। हमारी आत्मनिधि को लूटने वाला सबसे बड़ा आतंकी है इसीलिये महावीराष्टक स्तोत्र में भागचन्द कवि ने लिखा-

महामोहातंक प्रशमनपराकस्मिक भिषक्,
निरापेक्षो बन्धुर्विदित महिमा मंगलकर:।
शरण्य: साधूनां भवभयभृतामुत्तम गुणो,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥

हे प्रभु ! आपने उस मोह को जीत लिया। आपने उस आतंकवादी को दबा दिया, आप ही उस मोह के आतंक को दबाने की औषधि हैं। आपका सान्निध्य प्राप्त कर ही व्यक्ति अपना मोह दबा सकता है ऐसे महावीर स्वामी मेरी आँखों में रहें। वे महावीर भगवन् ! जिन्होंने उस मोह को जिसका वेग अनिवार होता है बाल्यअवस्था में ही जीत लिया।

तो उस मोह, काम, वासना को जीतना है। ये जब तक रहती है तब तक व्यक्ति की समझ में नहीं आता। एक युवा बालक मार्ग में खड़ा था, वहीं से राजा हाथी पर बैठकर जा रहा था, राजा से वह बालक कहता है-क्यों भाई हाथी बेचोगे क्या? महल बेचोगे क्या? सैनिकों ने उसे बंदी बना लिया, राजा अपने महल में पहुँचा। उस बालक को बुलाया कहा-तुमने मेरा अपमान किया। वह हाथ जोड़कर कहता है महाराज मैं आपका अपमान कैसे कर सकता हूँ। मैं तो आपकी प्रजा हूँ आपके राज्य में रहने वाला आपका सेवक हूँ। सैनिकों ने कहा-तूने महाराज का अपमान किया है इसलिये तुझे मृत्युदण्ड मिलेगा।

वह क्षमायाचना करता है मैं तो स्वप्न में भी आपका अपमान नहीं कर सकता। मैं सच कह रहा हूँ अपनी पत्नी-व बच्चों की सौगंध खाकर कहता हूँ। सबने कहा-नहीं तुमने कल राजा का अपमान किया था। वह बोला हो सकता है आपको लगा हो, सैनिकों को लगा हो किंतु वह मैं नहीं बोल रहा था उस समय वह शराब बोल रही थी। मंत्रियों ने कहा-महाराज ये तो आपका किंकर है, इसे फाँसी पर चढ़ाकर क्या मिलेगा, इसका दण्ड यही है कि यह नियम ले ले कि जीवन में कभी शराब न पीये। इस शराब ने ही इसे अपराधी बना दिया। कल ये नहीं बोला इसकी शराब बोली थी।

ऐसे ही हम संसारी प्राणी हैं हम अपराध नहीं करते हमारा अपराध हमसे मोह कराता है, राग के आवेश में अपराध कर देते हैं। जिसके मोह का नशा उतर जाता है वह फिर संसार शरीर भोगों से विरक्त हो जाता है, सन्यास को स्वीकार कर कल्याण के मार्ग पर बढ़ जाता है। तो आचार्य पूज्यापाद स्वामी जी ने कहा उस मोह को नष्ट करने का प्रयास करना है वही सबसे बड़ा आतंकवादी है इससे जिसने पीछा छुड़ा लिया फिर बाहर के आतंकवादी उसका कुछ भी बिगाड़

नहीं सकते हैं। आप सभी तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास करो, अपने कर्त्तव्यों के पालन के प्रति सदैव जाग्रत रहो, विनम्रता का हमेशा भाव रखो, अहंकार का भाव न रखो यही सब बातें आपके कल्याण में बहुत आवश्यक हैं। आप के लिये यही शुभ भावना कि उस मोह को जीतने की सामर्थ्य आप सभी को प्राप्त हो आप अपने निज वैभव को प्राप्त कर सकें। इसी के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

१२. जीवन के दोहरे मापदण्ड

वर्तमान काल में जहाँ भी दृष्टिपात करते हैं उधर सुख-शांति अमन-चैन कम दिखाई पड़ता है। दु:ख-अशांति, कलह, वैमनस्यता आदि विकारी भाव अधिक दिखाई पड़ते हैं। इसमें भी कोई आश्चर्य की बात नहीं यह सोचकर मन संतुष्ट हो जाता है कि भाई कलिकाल है, पंचमकाल है। इस दु:खमा काल में दु:ख बढ़ता चला जा रहा है, प्राणी का सुख नष्ट होता चला जा रहा है। जैसे कपूर की डली बाहर रखी हुयी हो तो शनै:-शनै: वह गलती चली जाती है ऐसे ही सुख नष्ट हो रहा है, जैसे ओस की बूँद सूर्य का उदय होते ही गलती चली जाती है उसका अस्तित्व अपने आप में ही बोना होता चला जाता है ऐसे ही इस हुण्डावसर्पिणी पंचमकाल में काल का चक्र ज्यों-ज्यों बढ़ रहा है, त्यों-त्यों दु:ख बढ़ रहा है।

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थकाल बहुत बड़े-बड़े होते थे। 4 कोड़ा-कोड़ी सागर, 3 कोड़ा कोड़ी सागर, 2 कोड़ा कोड़ी सागर, एक कोड़ा कोड़ी सागर में 42 हजार वर्ष कम ये चार काल बड़े-बड़े हो गये। पंचमकाल मात्र 21 हजार वर्ष का है। षष्ठ्म काल 21 हजार वर्ष का है। एक सागर मान कर चलो-जैसे कोई बहुत बड़ा समुद्र है उसमें जितनी पानी की बूँदें हैं उतने हजार या लाख वर्ष का एक सागर होता है। ये पंचम व षष्टम् काल तो 21 पानी की बूँदों के समान भी नहीं है। इनमें दु:ख वृद्धि को प्राप्त होगा पंचम काल से ज्यादा षष्टम काल में होगा। इसलिये दु:ख दिखाई दे रहा है तो इतना विकल्प नहीं आता, विकल्प तो इसलिये आता है व्यक्ति जो आज सुखी दिखाई दे रहा है वह उन दु:खी प्राणियों से भी ज्यादा दु:खी है। वह ऊपर से मुस्कुराता दिखाई देता है किन्तु उसके अन्तरंग में हाहाकार मचा हुआ है। जिसका चेहरा ऊपर से जितना ज्यादा चिकना दिखाई देता है संभव है वह अंदर से उतना ही ज्यादा खुरदरा हो अर्थात् जो ऊपर से जितनी

ज्यादा मीठी बातें करता है संभव है अंदर से उतना ही गरल भरा हो और दुर्भावनायें भरी हों।

जिसके जीवन में दो तरह के मापदण्ड होते हैं उसका जीवन बेईमानी से युक्त होता है। आप समझते हैं कि कोई भी दुकानदार यदि दो तरह के बाँट रखता है एक किलो के दो बाँट, दो किलो के दो बाँट, आधा किलो के दो बाँट, 100 ग्रा. 250 ग्रा. के भी दो बाँट हैं। क्यों हैं? इसलिये नहीं है कि उस दुकान पर भीड़ ज्यादा होती है तराजू दो हैं तो तोलने के काम आते हों। नहीं, तराजू तो एक ही है बात ये है कि उनमें एक बाँट कुछ बढ़ती है दूसरा कुछ हल्का है। पीछे एक बाँट में सील ठोंकी जाती है, तो एक बाँट में से सील थोड़ी निकाल दी गयी है। 1 या 2% कम कर दी, दूसरे में 2-3% सील बढ़ा दी है। किंतु दो प्रकार के बाँट जहाँ रखते हैं इससे सिद्ध होता है कि उस व्यक्ति की नीयत में कहीं न कहीं खोट है।

किसी की दुकान दूध की है, दूध आता भी है, जाता भी है। जब वह दूधिया लोगों से दूध लेता है तो लेने वाले लीटर अलग हैं और जब वह गृहस्थों को बेचता है तो देने वाले लीटर अलग हैं, इससे सिद्ध होता है कि लेन-देन के लीटर में फर्क है। जिसके मन में बेईमानी है उसकी कहीं कोई ईमानदारी नहीं है न तो अपनी आत्मा की साक्षी में, न प्रभु परमात्मा की साक्षी में। दुनिया की साक्षी में तब तक भले ही वह ईमानदार बना रहे जब तक उसकी पोल नहीं खुली किन्तु यह बात तय है कि इस तरह बेईमानी से व्यापार करने वाला व्यक्ति कितना भी धन कमा ले, किंतु उसे सुख शांति नहीं मिलती है।

बेईमानी से कमाने वालों को उनका ही पाप एकांत में उनको काटने लगता है। वह इस प्रकार से बेईमानी करता है जैसे कोई व्यक्ति अपने ऊपर के वस्त्र तो चमकदार इत्र आदि की महक से रंगे हुये

पहना हो और अंदर के वस्त्र ऐसे जो कई माह से धुले न हों, जिनमें बदबू आ रही हो, कीड़े पड़ गये हों वे कीड़े उसका शरीर काट रहे हों उसका न चूस रहे हों। ऐसे ही जो ऊपर से ईमानदारी का पर्दा डाल लेता है अंदर में बेईमानी करता रहता है, उसकी बेईमानी उन कीड़ों की तरह उसे काटती रहती है। जैसे कोई चूहा किसी वृक्ष की जड़ में पहुँच जाये तो उसकी जड़ को काटता रहता है और कोई माली उस वृक्ष में ऊपर से जल सिंचन करके, खाद देकर के उस वृक्ष का संवध र्न करना चाहता है तो वह माली कितना ही संवर्धन करे किंतु अंदर के छेद में घुसा चूहा पेड़ को काटता रहेगा आखिरी में वह वृक्ष ध राशाही हो जायेगा, सूख जायेगा।

ऐसे ही जो व्यक्ति अपने जीवन में दोहरा काम करते हैं, बाहर से तो ये दिखाना चाहते हैं कि हम से बढ़कर ईमानदार कौन होगा और अंदर में उनकी आत्मा जानती है कि उनसे बढ़कर बेईमान इस संसार में और कोई नहीं है। तो बाहर की ईमानदारी चित्त को शांति नहीं दे सकती। चित्त को शांति मिलती है चित्त की ईमानदारी से। यदि मन में ईमानदारी का भाव है और फिर कभी गलती हो भी जाये तो गलती होने के बावजूद भी उसके चित्त में शांति रहेगी। कोई उसे बाह्य में दण्ड भी दे तो भी उसे उतना दु:ख नहीं होता। चित्त में गर अशांति है दुर्भावना है, बेईमानी है तो लोग उसकी जय-जयकार भी कर रहे हों, वह महल में सो रहा है, पर सो कहाँ रहा है वह तो करवटें बदल रहा है, उसे नींद नहीं आ रही, उसे लग रहा है उसके ही पाप उसे खाने के लिये दौड़ रहे हैं। मन इतना अशांत है कि किससे कहे अपने चित्त की व्याकुलता के बारे में। बाहर का धन अंदर की अशांति को नष्ट नहीं कर सकता, बाहर की प्रतिष्ठा अंतरंग में शांति नहीं दे सकती, बाह्य यश अंतरंग में शांति नहीं दे सकता। ईमानदारी निष्ठा आदि निजीगुण हमारी आत्मा में शांति देते हैं।

110

दूसरी बात ये भी है-लोग कहते हैं कौवा और बगुले में कौवा अच्छा है बगुला अच्छा नहीं है। क्यों? लोगों का कहना है-कौवा ऊपर से भी काला है वर्ण की अपेक्षा से, और यदि उसके अंदर के परिणाम भी काले हैं काँव-काँव करता है, कटु वाणी बोलता है, माँस भक्षण करता है तो कहते है भईया वह कौवा ऊपर से भी काला है तो अंदर से भी काला हो तो कोई बात नहीं कोई धोका तो नहीं खायेगा। यदि वह ऊपर से काला और अंदर से धवल परिणाम वाला हो जाये तो बहुत अच्छी बात है। तो बाहर के कालेपन से कौवे का अकल्याण नहीं हो जायेगा। बगुला जो ऊपर से तो हंस जैसे वर्ण को धारण करने वाला है, ये कहलवाता है दूसरों से कि हम तो हंस के वंशज हैं, हंस के अंशज हैं। अरे हंस के अंशज और वंशज ऐसे नहीं बनते हैं मात्र हंस का वर्ण लेकर कोई हंस नहीं बन जाता। बगुला बाहर से भले ही सफेद दिखायी देता है हंस जैसे पंख भले ही धारण कर ले किंतु हंस जैसे पंख से नहीं हंस जैसे पंथ से चलोगे तब तो हंस जैसे स्वभाव को प्राप्त कर सकोगे।

वह हंस तो मानसरोवर में रहता है, मोती चुगता है, मोती न मिले तो वही बैठा रहता है, नीर और क्षीर में से क्षीर को ग्रहण करता है किंतु बगुला भले ही धवल है हंस का लघु नंदन कहलाना चाहता है पर काम हंस जैसे नहीं कंस जैसे करता है। वह क्रंदन का काम करता है चंदन और वंदन का नहीं निंदन का काम करता है। वह मछली पकड़ता है, चलो मछली खाने वाले और भी जानवर हो सकते हैं किन्तु वे ऐसे धोके से नहीं खाते किंतु बगुला तो इतना बेईमान है तालाब में एक पैर से आँख बंद करके ऐसे खड़ा है जैसे बड़े ध्यान में लीन हो गया हो, दिखावा करेगा जैसे कितना भद्र परिणामी है, सरल, सहज है किंतु होता क्या है जैसे ही उसके समीप कोई मछली आती है वह बगुला एक क्षण की भी देर नहीं लगाता तुरंत अपनी

लंबी चोंच उस मछली के शरीर में घुसा देता है, वह मछली फिर उसकी पकड़ से जा नहीं पाती। तो ऐसे बगुले जैसा काम करने वाला प्राणी, कोई भी हो वह सुख-शांति को कैसे प्राप्त करेगा।

मानव जब भी अपने जीवन में दोहरे मापदण्डों के साथ जीता है तो वह भी सुखशांति को प्राप्त नहीं कर पाता। भैया ! इन दुहरे मापदण्डों से जीकर के तुम किसी का क्या बिगाड़ लोगे? बेईमानी से किसी दूसरे का अहित होने वाला नहीं है उसे उसका पूरा हिस्सा ब्याज सहित आज नहीं तो कल अवश्य मिलेगा। किंतु हाँ ये बात अवश्य है कि बेईमानी के परिणामों से तुम जरूर पाप का आश्रव करोगे, तुम नियम से दु:खी अवश्य होंगे। तुम्हें बेईमानी से कमाये हुये धन का सदुपयोग करने का सौभाग्य नहीं मिलेगा, उस बेईमानी से तो पाप का फल ही भोगना पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि कोई व्यक्ति बेईमानी से ज्यादा धन कमा ले तो ज्यादा सुख पा लेगा। वह धन कमाता हुआ दिखाई दे सकता है किन्तु सुख भोगता हुआ दिखाई जीवन में नहीं दे सकता।

जो कोई भी प्राणी अपने जीवन में दोहरे मापदण्ड चलता है, मापदण्ड से आशय-हमारा व्यवहार। हमें दूसरे की बात तो जरा भी सहन नहीं होती, छोटी सी बात पर गुस्सा हो जाते हैं, दूसरों को दण्डित करने को तैयार हो जाते हैं किंतु हम उससे भी बड़ी-बड़ी गलती करते चले जाते हैं तब हम अपेक्षा रखते हैं कि हमारी गलती तो छोटी सी है। अपनी गलती मानते भी नहीं और दूसरे की गलती न भी हो फिर भी निकालने की कोशिश करते हैं। तो कहने का आशय है कि दूसरे के तो छोटे-छोटे दोष भी देख लेता है सूक्ष्मदर्शी यंत्र के द्वारा और अपने बड़े-बड़े दोष भी नहीं देखता। दूसरे के चेहरे का तिल भी दाग सा दिख रहा है और स्वयं का पूरा चेहरा ही काला पड़ा है वह दिखाई नहीं दे रहा। बुन्देल खण्ड में एक कहावत है-

112

वाणी अपने टेंट को न निहारें,
दूसरों की फुली को परि-परि देखे

वाणी एक पक्षी होता है, उसकी लम्बी चोंच होती है, उसके कण्ठ में एक टेंट निकलता रहता है, उसे अपनी लंबी चोंच के कारण अपना टेंट दिखाई नहीं देता किन्तु वह दूसरे पक्षी की आँखों में थोड़ी सी फुली भी हो आँखों में थोड़ा जाला सा पड़ जाये तो पर-पर के अर्थात् घूर-घूर कर देखता है। अरे तेरी आँख में फुली पड़ गयी है। उसे अपने गले में इतना बड़ा टेंट है वो दिखाई नहीं देता। ऐसे ही व्यक्ति जब दूसरे के बारीक दोष को भी, सरसों के दाने के बराबर दोषों को भी पर्वत के समान बड़ा चढ़ा कर कह रहा है किन्तु अपने मेरु जैसे दोष को भी सरसों सा मान रहा है, ऐसा व्यक्ति जो अन्याय के धरातल पर खड़ा है, वह समझो बेहोश है उसके जीवन में गुणों का कोश नहीं मात्र दोष ही दोष है।

महानुभाव ! जीवन में ईमानदार बनो। अपने लेन-देन के बाँट एक जैसे रखो। यदि सामने वाला गलती करता है तो तुम्हें उस पर गुस्सा आ जाता है छोटी-छोटी बात पर भी और तुमसे जो बड़े हैं तो तुम जब गलती करते हो तो तैयार रहो वे भी तुम पर गुस्सा हो सकते हैं। यदि तुम अपने से छोटों के दोषों को क्षमा कर सकते हो, तो तुम भी बड़ों से अपने दोषों को क्षमा कराने के अधिकारी हो। तुम्हें कहना नहीं पड़ेगा, तुमने अपने छोटों को क्षमा किया है उन्हें प्रेम और वात्सल्य दिया है उनकी सहायता करने की भावना रखी है तो तुम्हारे साथ भी तुम्हारे बड़े ऐसा ही भाव रखेंगे। जब तुम अपने से छोटे की गलतियों को क्षमा नहीं कर सकते तो तुम प्रभु परमात्मा के सामने कौन सा मुँह लेकर जाओगे स्वयं क्षमा माँगने के लिये। यदि उन्होंने तुमसे पलट कर पूछ लिया कि तुमने अपने जीवन में अपने से छोटों की कितनी गलतियाँ क्षमा की हैं तो तुम क्या उत्तर दोगे? नहीं दे पाओगे और अपना सिर भी न उठा पाओगे। देखो-

113

व्यक्ति जैसा करता है वैसा भरता है, जैसा बोता है वैसा काटता है। दोहरा मापदण्ड जीवन के साथ मत लगाओ कि अपनी एक बात को, एक उपकार को 100 बार कहो और दूसरों के 100 उपकार को एक बार एहसास भी न करो। एक बार एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति से पूछा-भाई तुम्हारे बेटे के रिजल्ट का क्या हुआ? उसने कहा फेल हो गया, बोले क्यों? तो कहने लगा-अरे स्कूल में पढ़ाई तो होती नहीं है, अध्यापक संघ ऐसे ही हैं। भैया तो क्या उसकी क्लास के सब विद्यार्थी फेल हो गये, बोला-नहीं। तो वे कैसे पास हो गये-अरे तुम नहीं जानते जमाना बदल गया है रिश्वत देकर पास हो गये होंगे, और दी ही होगी ऐसा तो हो ही नहीं सकता, मेरे बेटे ने रिश्वत नहीं दी। वही व्यक्ति जब अगली साल बेटा पास हो गया तो कहने लगा-मेरे बेटे ने खूब मेहनत की थी, अरे तो उसका साथी क्यों फेल हो गया-उसने मेहनत नहीं की होगी। जब तुम्हारा बेटा पास होता है तो मेहनत से पास होता है दूसरे के रिश्वत से और जब तुम्हारा बेटा फेल होता है तो स्कूल को दोष दे देते हो, ये दोहरे मापदण्ड लेकर चलते हो।

जब व्यक्ति दूसरे के दोषों की समीक्षा व कथन करता है तो तुम उस पर मोहर ठोक देते हो हाँ वह ऐसा ही बुरा व्यक्ति है और पुष्टि कर देते हो, और जब उसकी गुण प्रशंसा की जाती है तो अपना सिर खुजाते हुये निकल जाते हो, हाँ, क्या पता होगा या नहीं कह नहीं सकते। ये दोहरा मापदण्ड है।

महानुभाव ! जीवन को यदि दोहरे मापदण्ड से माप कर चलोगे तो तुम घबरा जाओगे। एक बार दो किसान अपने खलियान में ढेर लगाकर उसकी रखवाली कह रहे थे। सामने से कोई देव निकला। किसान ने हाथ जोड़े और पूछा-ये हमारे खेत में अनाज का ढेर लगा है यह कितना ढेर है। उन्होंने कहा ये तुम्हारा ढेर 100 मन का है, दूसरे

114

ने पूछा हमारा ढेर कितना है तो कहा तुम्हारा भी 100 मन का है और आशीर्वाद देकर चले गये। प्रातः काल उन दोनों ने अपने-अपने ढेर को तोला तो ढेर 100-100 मन के ही निकले। रात्रि में पहले वाला किसान जब सो गया तो दूसरा किसान रात में ही उसके ढेर में से तसला-भर-भर के धान अपने ढेर में डालने लगा। यह सोचकर कि लो देवता 100 मन अनाज मेरा भी बता कर गये हैं यदि मैं इसके ढेर से निकाल कर अपने ढेर में डाल लूँगा तो 10-20 मन धान मेरे ढेर में बढ़ जायेगा। मेरा हो जायेगा 120 मन। इसका रह जायेगा 80 मन।

किंतु प्रातः काल जब तौला तो ढेर दोनों के 100-100 मन ही निकले। दूसरे किसान के मन में चिंता हुयी 100 कैसे रहा 120 क्यों नहीं हुआ। वे देव 100 मन कहकर ही गये थे और रात भर में मैंने 20 मन तो डाल ही दिया होगा। चिंता में बैठा ही था, तब तक वे देवता वहाँ से पुनः निकल कर आये। उसने पूछा-देवता जी क्या आप झूठ भी बोलते हो, बोले नहीं। आप कल कहकर गये थे कि हमारा अनाज का ढेर 100 मन का है। तो देवता बोले क्यों क्या 100 मन से कम निकला है, बोले नहीं 100 मन तो आपने नाप बताया था, देवता बोले फिर इसमें झूठ कहाँ रहा। बोला बात ये है कि रात्रि में मैंने इसके ढेर में से कम से कम 20 मन अनाज अपने ढेर में डाल लिया था तब भी सुबह 100 मन ही रहा। देवता बोले-तूने रात में इधर से अपने ढेर में डाला था और मैंने तेरे ढेर में से उसके ढेर में डाला था। बात बराबर रही। जो काम रात में तूने किया वही मैंने किया।

तो महानुभाव ! दोहरे मापदण्ड से काम नहीं चलता, जो तुम्हारे भाग्य का हो वही होता है और वही मिलता है।

एक महिला कह रही थी ज्यादा नहीं बोलना चाहिये, मौन रहने के बहुत फायदे हैं और खूब मौन रहना चाहिये, मैं भी खूब कोशिश करती हूँ। वह मौन पर इतना उपदेश दे रही थी कि सुनने वाले बोर

हो रहे थे। तभी एक व्यक्ति उठा-कहा बहिन जी आप क्या कह रही हैं-बोली मैं मौन के फायदे बता रही हूँ, वह बोला-बहिन जी उस मौन के फायदे कभी-कभी आप भी ले लिया करो हम आपको इतनी देर से सुन रहे हैं सुनते-सुनते परेशान हो गये। उस मौन का लाभ हमने तो ले लिया थोड़ा आप भी ले लो। लोग स्वयं बोल कर दूसरों को मौन का लाभ देना चाहते हैं। कुछ लोग स्वयं एक भी उपवास नहीं करेंगे पर दूसरों को उपवास के फायदे गिनाते रहेंगे। तो जिस काम को स्वयं नहीं कर रहा, खुद तो उससे विपरीत चल रहा है पर दूसरों को सलाह दे रहा है तो यह हमारे जीवन का दोहरा मापदण्ड है कि हम पाप करके पुण्य के फल को पाना चाहते हैं, बेईमानी से ईमानदारी का फल पाना चाहते हैं, अधर्म करके धर्म का फल चाहते हैं, ऐसी जिंदगी से सुख शांति नहीं मिलती।

अपने जीवन में सुख शांति प्राप्त करने के लिये सम्यक् मार्ग पर चलो तभी सम्यक् मंजिल की प्राप्ति होगी। मिथ्या साधनों से सम्यक् साध्य की प्राप्ति आज तक न किसी को हुयी है न होगी। आप सभी सम्यक् मार्ग के पथिक बनें और समीचीन मंजिल को प्राप्त करने में समर्थ हों ऐसी मैं आपके प्रति मंगल भावना भाता हूँ। इन्हीं भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

१३. निःस्वार्थ सेवा

संसार में जितने भी पंथ आम्नाय सम्प्रदायें हैं उनकी धारणायें ध र्म के संबंध में अलग-अलग हैं। कोई तपस्या को धर्म मानता है, कोई पूजा भक्ति इबादत को धर्म मानता है, कोई शील या उपवास को धर्म मानता है किन्तु एक बात मुख्य रूप से सभी पंथ व आम्नायों में देखने को मिल जाती है, जहाँ धर्म होता है वहाँ पर नियम से सेवा का भाव होता है, पर उपकार का भाव होता है। चाहे धर्म की परिभाषा करते हुये गोस्वामी जी के शब्दों में यह कहें-

परहित सरस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अगवाई

दूसरों का हित करने के समान कोई धर्म नहीं है। चाहे ये कहें-

''दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाड़िये जब तक घट में प्राण॥''

आ. कुंद-कुंद स्वामी जी ने दया को धर्म का मूल कह दिया-**धम्मो दया विसुद्धो**। कोई कहता है 'रहमदिली' ही धर्म है। जैन शासन में भी सेवा को नाना प्रकार से रूपांतरित किया है। प्ररूपण करने की अलग-अलग विधा हैं। वैयावृत्ति के नाम से सेवा कही जाती है, चाहे वैयावृत्ति सोलह कारण की भावना हो, चाहे वैयावृत्ति तप हो, चाहे सेवा भावना हो यह सब निःसंदेह धर्म की श्रेणी में आते हैं। और किसी की सेवा करना तभी संभव है जब अपनी कषायें शांत हो रही हों। सेवा करने का भाव तभी आता है जब अन्तरंग में अहिंसा भाव प्रादुर्भूत हो रहा हो। अंतरंग में दया, करुणा रहम का परिणाम हुये बिना कोई भी व्यक्ति निःस्वार्थ भावना से सेवा नहीं कर सकता।

स्वार्थ भावना से की गयी सेवा तो व्यवसाय का रूप हो सकता है किंतु निःस्वार्थ भाव से की गयी सेवा वास्तव में धर्म कहलाता है धर्म का मूल कहलाता है। सेवा भाव यदि धर्म में से निकाल दिया

जाये तो धर्म कुछ बचेगा ही नहीं। जैसे दूध में से घी को निकाल दिया जाये तो दूध का अस्तित्व ही नहीं बचा, अब दूध की मूल शक्ति ही नष्ट हो गयी, तो वह घी से रहित दूध व्यर्थ है। यदि नेत्रों में देखने की क्षमता नहीं तो वे नेत्र व्यर्थ हैं। जिस प्रकार जिस पुष्प में गंध नहीं वे पुष्प व्यर्थ हैं, यदि शरीर में प्राण नहीं है तो वह शरीर व्यर्थ है इसी प्रकार यदि धर्म में सेवा का भाव नहीं है तो वह धर्म व्यर्थ है।

महानुभाव ! सेवा करना जिसका जुनून है वह ही वास्तव में मेवा प्राप्त करने का अधिकारी है। सेवा धर्म का प्रारंभिक सोपान है तथा सेवा ही धर्म का अंतिम सोपान है। इस बीच जो भी रूप हो सकते हैं वे सेवा के अन्य-अन्य पर्यायवाची, सेवा के सहभागी गुण-धर्म हो सकते हैं। तो आप कहेंगे ऐसा कैसे संभव है जो व्यक्ति अनपढ़ है, गाँव का किसान है, ग्वाल है वह धर्म के संबंध में कुछ भी नहीं जानता, वह भी किसी पशु-पक्षी को घायल देखता है उसके मन में भी भाव आता है मैं इसकी सेवा करूँ यदि वह प्राणी भूखा है तो भोजन देकर, प्यासा है तो पानी देकर या घाव है तो उस पर औषधि लगाकर उसे ठीक करने का प्रयास करता है।

किसान अपने पालतू-जानवरों की सेवा करता है वह मंदिर में जाकर के पूजा पाठ नहीं करता, घंटा नहीं बजाता उन जानवरों की सेवा ऐसे करता है जैसे वह अपना ही बेटा हो, जो सेवा करते समय जाति-पाति, वर्ण-सम्प्रदाय, ऊँच-नीच आदि किसी का भेदभाव नहीं करता सेवा करते समय उसे सामने वाले शरीर में आत्मा दिखाई देती है, इस आत्मा में भी परमात्मा बनने की शक्ति दिखाई देती है वह इस भावना से सेवा करता है और उसे कोई स्वार्थ नहीं है ऐसा व्यक्ति भविष्य का भगवान भी हो सकता है। जो दीर्घ काल तक संसार में परिभ्रमण करने वाला है शैतान है वह कभी नि:स्वार्थ सेवा नहीं कर सकता इसलिए सेवा करो।

118

सेवा से मेवा मिलती है यह कहावत तो लौकिक है, मेवा मिष्ठान्न तो नाम है किन्तु जो समझदार है, जो व्यक्ति धर्म के क्षेत्र में उतर चुके हैं उन्हें सेवा करने पर जो आनंद आता है वह आनंद अच्छा भोजन करने पर भी नहीं आता। यदि मेरी अपेक्षा से पूछा जाये तो सेवा करना सबसे बड़ी तपस्या है, सबसे बड़ी पूजा है, सबसे बड़ा स्वाध्याय है, सेवा करना ही ज्ञान का फल है, वैराग्य, संयम है। सेवा करने वाला व्यक्ति तपस्वी से बढ़कर तपस्वी है। क्योंकि सेवा वही व्यक्ति कर सकता है जिसके पास अच्छाईयाँ हों अज्ञानी व्यक्ति सेवा नहीं कर सकता। सेवा करने वाला ज्ञान के फल को प्राप्त करता है।

सेवा करना तपस्या क्यों है? क्योंकि वह अपनी इच्छाओं का निरोध करके सेवा कर रहा है। उसकी इच्छा हो रही है कि मैं घूमने जाऊँ, स्वयं की इच्छा हो रही है मैं खूब खाऊँ-पीऊँ मस्ती करुँ, रास्ते में देखा कोई जानवर बीमार/घायल पड़ा है। उसे देखकर सेवा भाव जाग्रत हुआ ओर उसकी सेवा में लग गये, ये सबसे बड़ी तपस्या है।

जैसे जीवन्धर कुमार पूजा के वस्त्र पहन कर हाथ में स्वर्ण पूजन थाल व सामग्री लेकर के भगवान के दर्शन हेतु जिनालय जा रहे थे, मार्ग में एक जगह भण्डारा हो रहा था वहाँ एक (कुत्ता) श्वान घुस गया और भोजन सामग्री झूठी कर गया, वहाँ के मठाधीशों ने उसको डंडे से मारा वह कुत्ता सड़क पर घायल पड़ा हुआ है उसका प्राणान्त होने वाला है, कुमार जीवन्धर ने पूजा की थाली एक तरफ रखी उस कुत्ते को उठाया अपनी जंघा पर रखा, सहलाया पुनः अपनी थाली से जल का कलश उठाया जिससे अभिषेक करने जा रहे थे, और उसके मुँह में जल डाला जिससे वह बच जाये, किंतु उसका प्राणान्त होने वाला था। मरणासन्न अवस्था में उस श्वान को उन्होंने णमोकार मंत्र सुनाया जिससे इसका कल्याण हो जाये, उसे संबोधन किया हे भव्य जीव ! तू संसार में क्यों भटक रहा है, जिसने तुझे मारा है उसके प्रति बैर मत रख, बुरे भाव मत रख, तू अपने परिणामों को सुधार ले और

इस अंत समय में प्रभु परमात्मा का नाम ले, तू भी कभी भगवान बन सकता है ऐसा संबोधन पाकर वह कुत्ता अपने प्राणों का परित्याग करता है और स्वर्ग में जाकर देव हो जाता है। वह स्वर्ग में अपने अवधि ज्ञान से जानता है और जीवन्धर स्वामी की सेवा करने के लिये आता है।

महानुभाव ! ऐसे ही पद्मरुचि सेठ तीर्थयात्रा के लिये जा रहे थे, मार्ग में मरणासन्न बैल दिखायी दिया वे रथ से उतरकर आये, उन्होंने तीर्थयात्रा को रोका और बैल को णमोकार मंत्र सुनाने लगे, उसके घावों को साफ करने लगे और उसे संबोधन देते-देते उस बैल के प्राण छूट गये। पद्मरुचि सेठ ने बैल की सेवा करने से इतना पुण्य का संचय कर लिया कि वे आगे चलकर अष्टम बलभद्र श्री रामचन्द्र जी होते हैं। बैल का जीव उस समाधि को प्राप्त करके सुग्रीव नाम का विद्याधरों का राजा होता है, वह भी अपने पूर्वभव के वृत्तान्त को जानता है फिर रामचन्द्र जी की सेवा करने का संकल्प ले लेता है।

हनुमान जी ने भी रामचन्द्र जी की सेवा की इसलिये आज भगवान राम के भक्त भले ही कम मिलेंगे हनुमान के भक्त ज्यादा मिलेंगे। सेवा करने से भक्त हनुमान भगवान बन गये। सेवा करने वाला व्यक्ति कभी सामान्य नहीं होता वह महान् होता है। सेवा करने वाला व्यक्ति इन्द्रियों पर नियन्त्रण करता है क्योंकि बिना इन्द्रियों पर नियन्त्रण किये सेवा नहीं हो सकती। इच्छाओं को रोके बिना, ग्लानि को जीते बिना, प्रेम और वात्सल्य के बिना सेवा हो नहीं सकती। जहाँ निष्कांक्ष भाव से नि:स्वार्थ भाव से सेवा करी जा रही है नि:संदेह वह बहुत बड़ा तपस्वी है। इसलिये लिखा है-

सेवानाम् परम धर्मो योगीनामपि अगम्यो-

सेवा धर्म परम गहन है, महान है, गूढ़ है, सेवाधर्म रहस्य पूर्ण धर्म है, जिसे योगी भी अच्छे से नहीं जान सकते। जो योगी अपनी

आत्मा में लीन होने में समर्थ हैं वे भी सेवा धर्म के बारे में पूरी व्याख्या नहीं कर सकते कि सेवा धर्म पालन करने का फल क्या है।

देखो-जैनागम में एक सुभग नाम के ग्वाले का कथन आता है, वह ग्वाला जब गाय चराकर लौट कर आ रहा था तो मार्ग में देखता है कि कड़कती सर्दी में एक दिगम्बर साधु पहाड़ की चोटी पर तपस्या करने बैठे हैं। उसे लगा कि ये कहीं सर्दी में ठिठुर न जायें तो वह जल्दी से अपनी गायों को सेठ के यहाँ बाँधकर आया और रातभर अग्नि जलाकर उन्हें तपाता रहता है उनकी सेवा करता रहता है। वह ग्वाला अनपढ़ था किंतु सेवाभाव से अपने हाथ गर्म कर करके उनके शरीर से लगाता है ताकि उनकी सर्दी दूर हो जाये। वह ग्वाला प्रात:काल देखता है कि वे मुनिराज अपने ध्यान को पूरा करके आकाश मार्ग से जा रहे हैं, वह कहने लगा-हे वन के देवता ! मुझे कुछ तो वरदान दे दो आप तो देवता हो, भगवान जैसे हो मेरा कल्याण कैसे होगा? मुनिराज ने कुछ दिया नहीं अपनी जंघा पर हाथ रखकर णमो अरिहंताणं कहा और आकाश मार्ग से चले गये। णमो अरिहंताणं पद को सुनकर वह ग्वाला दिन रात उसी का उच्चारण करता रहता। उसे उस मंत्र पर अटूट श्रद्धा हो गयी।

एक दिन अचानक नदी में बाढ़ आने से उसकी गायें उसमें बह गयी, उन्हें बचाने के लिये वह भी नदी में कूदा और नदी में बहता हुआ एक ठूठ आकर उसके पेट में चुभ गया जिससे वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। जब वह कूदा तो उसके मुख से बस 'णमो अरिहंताणं' निकला जिससे वह आगे चलकर सेठ सुदर्शन हुआ। पुन: उसी भव में दीक्षा लेकर तप किया व पटना से मोक्ष को प्राप्त किया, उसका कल्याण हो गया।

वह ग्वाला अगले भव से ही मोक्ष चला गया किसके फल से? सेवा के फल से और अन्य प्रकार से तपस्या करने वाले तीर्थंकर जो

पिछले 10-10 भवों तक तपस्या करते रहे फिर भी इतनी जल्दी मोक्ष नहीं गये किन्तु सुभग नाम का ग्वाला उसने न तो वेदों को याद किया न पुराणों को पढ़ा, न मालायें फेरी, न देव दर्शन किया ये सब कुछ नहीं किया। सेवा करने से अगले भव से मोक्ष पधार गये। ऐसे कितने उदाहरण हैं–आप भगवान् बाहुबली की पूजा अभिषेक करने श्रवणबेलगोला जाते हो, वे बाहुबली भगवान भी सुंदर कामदेव कैसे बनें ? उन्होंने भी पूर्वभव में सेवा की। जितने भी तीर्थंकर होते हैं भगवान् होते हैं उन्होंने पूर्वभव में सबकी सेवा की थी इसलिये पूरा जगत् उनका सेवक बन जाता है। जो दूसरों की सेवा नहीं करता तो आज नहीं तो कल उसे सेवा करनी पड़ती है।

वर्तमान में ही उदाहरण देखना चाहो तो 'मदर टेरिसा'। वह विदेशी महिला जिसे कोलकाता में पूरी सभा ने परेशान किया, उसे वहाँ से भगाने का प्रयास किया किंतु उसने कहा मुझे तो सेवा करनी है। वह दु:खी, रोगी, शोकी जो भी दिखाई देते उन सभी की, ग्लानि को जीतकर के उनके घावों को धोती, उनकी सेवा करती। सर्दी हो या गर्मी सबकी सेवा करती, उसके सेवा भाव से शासन-प्रशासन सब प्रभावित हो गया, उसके साथ सेवा करने वाले सब जुड़ते चले गये और वह मदर टेरिसा पूरे भारत वर्ष में सम्मान को प्राप्त हुयी। उसने मानव सेवा की। एक व्यक्ति होता है गौसेवा करने वाला। गाय की सेवा तो अष्टम नारायण श्री कृष्ण ने भी की जिस सेवा कार्य से आज लोग उन्हें भगवान् की तरह पूजते हैं। जैन दर्शन में कहा जाता है उन्होंने मुनि सेवा कर औषधि के लड्डू बनवाये थे जिस पुण्प के कारण वे श्रीकृष्ण नारायण तीर्थंकर बनेंगे, उनके पंचकल्याणक होंगे।

सेवा चाहे कुलीन पुरुषों ने की हो या सामान्य पुरुषों ने सभी को फल की प्राप्ति होती है। कुछ मजदूरियाँ खेत पर काम कर रही थी, खेत की फसल काट रही थी। वहाँ एक स्यालिनी ने बच्चे दिये वह

स्यालिनी जन्म देकर मृत्यु को प्राप्त हो गयी। उन महिलाओं ने वहाँ जाकर देखा, उन बच्चों को उठाया और स्वयं का स्तनपान कराया। उन बच्चों को पाल पोस कर बड़ा किया, वे बच्चे ऐसे वफादार हो गये कि उन्हें अपने पुत्रों से ज्यादा उनके प्रति स्नेह था।

इस उदाहरण से बढ़कर एक और कथन आता है, एक जंगल में सियारिनी के बच्चे थे, सियारिनी मर गयी थी, वे बच्चे अकेले पड़े थे, वहाँ से एक सूअरिया अपने बच्चों को साथ में लेकर के निकल रही थी, उस सूअरिया ने उन बच्चों को देखा तो उसके मन में करुणा का भाव आया और उन सियारिनी के बच्चों को अपना स्तनपान कराया। कई बार देखा है जन्मजात बैरी कुत्ता-बिल्ली में भी आपस में प्रेम भाव हो जाता है, यह सब पूर्वजन्म के सेवा के संस्कार ही रहे होंगे। जंगली जानवर भी एक दूसरे की सेवा करते हैं बंदर तक को देखा है यदि कोई जंगली जानवर घायल हो जाये तो पेड़ से पत्तियाँ/औषधि तोड़कर लाता है उनसे सेवा करता है। तो ऐसे कई जानवर देखे जिनमें सेवा का भाव पाया जाता है। जिन्होंने जीवन में सेवा की है वे ही सेवा के सम्पूर्ण महत्व को समझ सकते हैं जिन्होंने जीवन में सेवा नहीं की वे सेवा के महत्व को क्या समझ पायेंगे।

इसीलिये आचार्यों ने लिखा-**'सेवानां परम धर्मः'** सेवा परमधर्म है। हम सेवा के भेद भी कर सकते हैं। जो देश की सेवा में लगा सीमा पर खड़ा सैनिक है वह देश सेवा के लिये 24 घंटे तैयार है, चाहे उसे देश रक्षा में प्राण ही क्यों न गँवाना पड़े। वह सेवा करते हुये देश से सम्मान प्राप्त करता है। वह देश के लिये कुर्बान होता है तो लोग सम्मान के साथ उसका अंतिम संस्कार करते हैं उस सैनिक को भी स्वयं पर गौरव होता है। जिसने भी जन्म लिया है मृत्यु तो उसको प्राप्त होती ही होती है जो सेवा करते-करते जाता है वह दिव्य पुरुष कहलाता है। सेवा कराते-कराते मृत्यु को प्राप्त होना अच्छा नहीं है अपितु सेवा करते-करते मृत्यु को पाना अच्छा है।

123

अपने माता-पिता की सेवा में रत वह श्रवण कुमार कहने को सामान्य ही युवा था, किंतु उसके मन में भाव आया कि मैं अपने वृद्ध माता पिता की सेवा करूँ, एक काँवर बनाकर उसमें उन्हें बिठाकर तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करायी। आज इस बात को सैकड़ों हजारों वर्ष हो गये, लोग किसी को भी याद करें या ना करें किंतु श्रवणकुमार को कौन याद नहीं करता है। आज भी सबकी जुबान पर मातृ-पितृ सेवा के लिये उन्हीं का नाम लिया जाता है। सेवा करने वाले आज भी कई पुरुष हैं जिन्होंने अनेक प्रतिकूलताओं को सहन किया परंतु सेवा करने से कभी पीछे नहीं हटे।

एक युवा ने अपनी माँ को अपनी पीठ पर बिठाकर शिखर जी की यात्रा करायी, उससे पूछा-तुम गरीब हो क्या? तुमने अपनी माँ को डोली से यात्रा क्यों नहीं करायी। वह बोला मैं ऐसी एक नहीं बीसों डोली मँगवाकर यात्रा करा सकता हूँ किंतु मैं समझता हूँ मैंने अपनी पीठ पर अपनी माँ को बिठाकर एक यात्रा करायी है, इस एक यात्रा से मुझे हजारों यात्राओं का फल मिल गया। जो सेवा मैंने तन से की है वह सेवा मुझे धन से प्राप्त नहीं होती। गरीब की सेवा धन देकर भी की जा सकती है, अच्छे वचनों से भी की जा सकती है। सेवा के अनेक रूप हैं जहाँ जिस समय जिस वस्तु/व्यक्ति की आवश्यकता है वहाँ अपना वैसा सहयोग प्रदान करना सेवा है। जिसकी तुम सेवा कर रहे हो वह तुम्हारी सेवा से इतना समर्थ हो जाये कि उसे आगे किसी की सेवा लेने की आवश्यकता न पड़े। वह भी दूसरों की सेवा करने में समर्थ बन जाये। महानुभाव ! निःस्वार्थ भाव से की गयी सेवा ही धर्म की कोटी में आती है।

एक व्यक्ति ने डूबते हुये बालक को बचाया। वह बालक बच गया। जब भी वह व्यक्ति वहाँ से गुजरता था, वह बालक दिखाई देता था तो वह व्यक्ति उस बालक को बार-बार कहता था कि देख उस

दिन मैंने तुझे बचा लिया था नहीं तो डूब कर वहीं मर जाता। वह बालक हाथ जोड़कर कहता है-हाँ अंकल जी आपने मुझे प्राणदान दिया, मुझे बचा लिया मैं आपका उपकार जीवन भर नहीं भूलूँगा। अब वह व्यक्ति जब बालक मिल जाये तभी बार-बार टोके। कभी भी किसी के सामने अपना अहसान सा दिखाता रहता। एक दिन वह बालक आया और बोला-अंकल जी अब एक काम करो मेरा गला दबा दो, क्योंकि वैसे तो मैं एक ही बार मरता किंतु अब तो आप दिन भर में दसों बार टोकते हैं। तो ऐसी सेवा नहीं जो एक बार कर दी और दिन में 100-100 बार टोको। सेवा करना है तो-

'नेकी कर दरिया में डाल'

तुम भूल जाओ कि तुमने किसी की सेवा की। सेवा करके भूल जाओगे तो जिसकी तुमने सेवा की है वह तुम्हें कभी नहीं भूलेगा, सेवा करके सबसे कहते फिरोगे तो तुम्हारा सारा पुण्य क्षीण हो जायेगा। इसीलिये अपनी शक्ति को न छिपाते हुये प्रसन्न भाव से सेवा करो।

चार बालकों ने गुरुजी से सुना कि सेवा करनी चाहिये-तो एक बुढ़िया को रास्ता पार कराने चारों आये। दूसरे दिन गुरु जी ने पूछा-कल किसी ने सेवा की थी क्या? तो चारों ने अपने हाथ उठाये कहा-हमने कल एक बुढ़िया को रास्ता पार कराया, दूसरे बालक से पूछा तुमने क्या सेवा की-वह बोला हमने भी बुढ़िया को रास्ता पार कराया, तीसरा बोला मैंने भी, चौथा भी बोला गुरुजी मैंने भी बुढ़िया को रास्ता पार कराया। पूछा बुढ़िया कितनी थी, बोले एक ही थी। क्या वह रास्ता पार करना चाहती थी ? वे बोले नहीं पर हमने तो जबर्दस्ती उसे रास्ता पार करा दिया। तो महानुभाव! ऐसी सेवा नहीं करनी है, जिसको सेवा की आवश्यकता है उसकी सेवा करो, ताकि उसका कष्ट दूर हो, बढ़े नहीं।

महानुभाव ! आप और हम अपने मन में सेवा का भाव रखें इसी में आत्मकल्याण निहित है। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

सेवा परमो धम्मो, परमाणंदस्स कारणं भणिदं।
आसण्ण-भव्वो करदि, धम्मप्पं पडि दया सेवा॥

अर्थ:-सेवा परम धर्म है, जो परमानंद का कारण कहा जाता है। आसन्न भव्य धर्मात्माओं के प्रति क्षमा, दया, सेवाभाव रखता है।

-विज्जावसु-सावयारो
(आचार्य श्री वसुनंदी मुनि)

१४. ज्ञान का अजीर्ण

जीवन में ज्ञान का बहुत बड़ा महत्व है, ज्ञान जीवन का संचालन करने के लिये इस प्रकार महत्वपूर्ण है जिस प्रकार विद्युत उपकरणों को संचालन करने में विद्युत महत्वपूर्ण होती है। अथवा वाहन का संचालन करने के लिये डीजल-पेट्रोल महत्वपूर्ण होता है, उसी प्रकार एक ज्ञानी और विवेकी व्यक्ति के जीवन में ज्ञान का महत्व होता है। किंतु पहले हम यह समझ लें ज्ञान है क्या चीज? ज्ञान है 'आत्मा का स्वभाव', ज्ञान है-'आत्मा का लक्षण', ज्ञान है-'आत्मा का गुण', ज्ञान है 'आत्मा की एक विशेषता' जिसके माध्यम से कोई भी आत्मा अपने समस्त गुणों को जान सकती है, अनुभव में ला सकती है, उन्हें प्रकट कर सकती है। उस अल्प सम्यग्ज्ञान से उत्कृष्ट ज्ञान अर्थात् उच्चज्ञान, केवलज्ञान तक पहुँच सकती है, सिद्ध भगवान् तक बन सकती है।

जो स्वभाव है उसका कभी अभाव नहीं हो सकता। स्वभाव शाश्वत होता है जैसे-अग्नि का स्वभाव ऊष्णता है वह कभी नष्ट नहीं होता जब तक अग्नि है तब तक ऊष्णता उसमें रहेगी। ऐसे ही प्रत्येक जीवात्मा का स्वभाव ज्ञान है किंतु वह ज्ञान किंचित रूप में उद्घाटित है अधिकांश भाग उसका आवरणित है हमारा पूर्ण स्वभाविक ज्ञान प्रकट नहीं हो पा रहा। जैसे दिवस में ही आकाश में सघन बादल छा जाते हैं, सूर्य का उदय प्रात:काल हो चुका हमने देखा किंतु अब दिन में ऐसा अंधकार हो रहा है जैसे रात्रि हो गयी हो। क्योंकि सघन बादल हैं वह सूर्य ढका हुआ है, यद्यपि मालूम है कि दिन है फिर भी सूर्य कहीं दिखाई नहीं दे रहा और उसका अस्तित्व भी लुप्त प्राय: जैसा हो गया। संसारी प्राणियों के जीवन में भी वह ज्ञान इसी प्रकार से है यह तो अहसास होता है कि ज्ञान है किंतु वह ज्ञान ढका हुआ

है। उस ज्ञान को प्रकट करना है, उस ज्ञान को प्रकट करने के लिये साधना की आवश्यकता होती है। संयम के माध्यम से, चारित्र के माध्यम से, तपस्या के माध्यम से उस ज्ञानावरणी कर्म का क्षय होता है और ज्ञान प्रकट हो जाता है।

दूसरा शब्द व्यवहार में आता है 'जानकारी' वह शब्दज्ञान के लिये दिया जाता है। 'शब्द ज्ञान' ज्ञान नहीं जानकारी है। अधिकांश व्यक्ति जानकारियों का पुलिंदा अपने मस्तिष्क में रखकर अपने आपको ज्ञानी मानने लगते हैं। जानकारियों का ढेर अपने दिमाग में रखना एक अलग बात है और वास्तव में ज्ञानी बन जाना एक अलग बात है। जानकारी व्यक्ति जब भी प्राप्त करता है तो वह अपनी जानकारियों को दूसरों को देने का दु:साहस अवश्य करता है। पण्डित वह होता है जो शब्दों का संग्रह करता जाता है और दूसरों को जाकर उढेल देता है किंतु उनका उपयोग वह अपने लिये नहीं करता। जैसे धोबी कपड़े धोता है किन्तु वह दूसरों के कपड़े धोता है, नाई दूसरों के बाल बनाता है, सेवक-दूसरों की सेवा करता है ऐसे ही पण्डित शब्दों का संग्रह दूसरों के लिये करता है। अपने लिये शब्दों का संग्रह कर अपनी आत्मा का कल्याण करे तब तो वह ज्ञानी बन सकता है किंतु अपने कल्याण के लिये वह किंचित् भी तत्पर नहीं रहता है तो समझना चाहिये वह पुरुष जानकारियाँ प्राप्त कर रहा है ज्ञान से अभी वंचित है।

शब्दों का संग्रह करके ज्ञानी पैदा नहीं होते अपितु शब्द पाण्डित्य आ जाता है। उस शब्द पाण्डित्य का अहंकार बड़ा खतरनाक होता है। यह अंतरंग के अंधकार को दूर नहीं करता अपितु शब्द पाण्डित्य अंदर के अंधकार को और अधिक सघन बना देता है। शब्द पाण्डित्य के साथ अहंकार बहुत जल्दी आ जाता है। जिस प्रकार राजा की सघन पदचाप को सुनकर मंत्री, सैनिक, कोतवाल सभी पीछे से आ जाते हैं,

जैसे माँ अपने सोते हुये बेटे को छोड़कर घर से बाहर जा रही हो तो वे बच्चे सोते से जाग जायेंगे उन्हें अहसास हो जाता है और वे चुपचाप पीछे से आ जाते हैं। ऐसे ही शब्द पाण्डित्य जहाँ पर आता है वहाँ पर अहंकार आ जाता है कितने ही धीमे से चलो शब्द पाण्डित्य का संग्रह ही अहंकार को बुलाता है। यदि अहंकार से बचना है तो एक ही उपाय है शब्द पाण्डित्य को आत्मा के कल्याण में लगा दो। आत्म कल्याण में लगते ही वह शब्द पाण्डित्य अपने आप में शिथिल होने लगता है फिर अहंकार नहीं आता।

किसी व्यक्ति के पास अच्छी शारीरिक शक्ति है वह उस सामर्थ्य का दुरुपयोग करता है, दूसरों को सताता है यदि उस व्यक्ति को काम दे दिया जाये कि तुम्हें खेत पर इतने घंटे जाना है, पुनः बाजार से सामान लाना है, पुनः और भी अन्य काम दे दिये जायें तो दिनभर में वह इतना थक जायेगा कि अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं कर पायेगा। जैसे खाली दिमाग शैतान का घर बन जाता है। उस दिमाग को कुछ अच्छा काम करने को दे दिया जाये तो वह शैतानी नहीं करता ऐसे ही शब्द पाण्डित्य के साथ यह एक अनिवार्य शर्त है कि उसे कोई काम दे दें। शब्द पाण्डित्य कार्यकारी तब बनता है जब उसके साथ वैराग्य हो, संयम या चारित्र हो। वह शब्द ज्ञान जब आचरण में आ जाता है तब वह ज्ञान संज्ञा को प्राप्त करता है और आचरण में नहीं आता है तो ज्ञान संज्ञा को प्राप्त नहीं करता।

महानुभाव ! जिस प्रकार निरंकुश हाथी हानिकारक होता है उसी प्रकार क्रिया से रहित शब्दज्ञान हानिकारक होता है। घोड़ा यदि बहुत तेज दौड़ने वाला भी हो किन्तु यदि बिना लगाम का है तो कभी भी पटक देगा, ऐसे ही शब्द ज्ञान बिना लगाम के घोड़े की तरह से है। आपको लगेगा कि मैं बहुत बड़ा ज्ञानी बन गया किन्तु उस ज्ञानी बनने से आपका पतन हो जायेगा कल्याण नहीं होगा। नीतिकार शब्द ज्ञान के संबंध में कहते हैं

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा, यस्तु क्रियावान् स पुरुषः विद्वान्।
सुचिंतितं-चौषधमातुराणां, न नाम मात्रेण करोति रोगं॥

शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख पैदा होते हैं। जरूरी नहीं है कि शास्त्रों को पढ़कर सदैव विद्वान् ही पैदा होते हों। तलवारों का संग्रह करने वाले वीर पुरुष ही होते हों ऐसा जरूरी नहीं है तलवारों का संग्रह कायर पुरुष भी करते हैं। ऐसे ही जो व्यक्ति कम पढ़ने वाला होता है वह अपने सामने शास्त्रों का ढेर लगा लेता है। व्यक्ति चाहे मस्तिष्क में शब्दों का ढेर लगाये रखे किंतु ज्ञानी बनने का ये लक्षण नहीं है। ज्ञानी बनने का लक्षण तो ये है कि ज्ञान जीवन में ज्यों-ज्यों आता चला जायेगा त्यों-त्यों जीवन में क्षमा गुण, विनम्रता, सरलता, सहजता, चित्त की पवित्रता, निर्लोभवृत्ति, संयम, तप, शील आदि भाव आयेगा और वह धर्म ध्यान में लग जायेगा। जैसे वृक्ष पर फल आ रहे हैं तो वृक्ष झुक जायेगा, यदि वृक्ष झुक रहा है फलों के भार से तो समझो वृक्ष है यदि वृक्ष झुका ही नहीं है ठूंठ जैसा खड़ा है फिर कोई व्यक्ति कहे वृक्ष पर फल लगे तो हैं पर वे फल नहीं लगे वो तो तुमने फल का गुच्छा टाँग दिया है जब वृक्ष पर स्वतः फल लगेंगे तो वह वृक्ष झुकेगा ही झुकेगा। ठूंठ पर लोहे की कील ठोंक कर फल टांगने से वृक्ष फलवान् नहीं हो जाता है ऐसे ही शास्त्रों को मन में रखकर, शब्दों का संग्रह कर कोई ज्ञानी पुरुष नहीं बन जाता।

''लाद पुस्तकें गधा पीठ पर क्या ज्ञानी कहलायेगा''

जैसे गधे की पीठ पर पुस्तकों का ढेर रखने पर गधा ज्ञानी नहीं हो जाता उसी प्रकार जो व्यक्ति ज्ञान की बातें तो लम्बी-चौड़ी करता है किंतु विषय भोग की चर्बी जैसी चरता रहता है उसे कौन ज्ञानी कहे? ज्ञानी तो वही होता है जो अपनी आत्मा में लीन रहने को उत्सुक होता है। तराजू के जिस पलड़े पर वजन ज्यादा होता है वही पलड़ा झुक जाता है ऐसे ही जिस व्यक्ति के जीवन में ज्यों-ज्यों ज्ञान

आता है त्यों-त्यों उस व्यक्ति की वृत्ति नम्र होती चली जाती है, त्यों-त्यों वह संसार शरीर भोगों से विरक्त हो जाता है, आत्मा के निकट पहुँचता चला जाता है। ज्ञानी पुरुष को कभी दूसरों से शिकायत नहीं होती संसार में सभी को दु:खी किया जा सकता है किन्तु ज्ञानी को कभी कोई दु:खी नहीं कर सकता। ज्ञानी न तो इस भव में दु:खी होता है न पर भव में दु:खी होता है। ज्ञानी होकर दु:खी हो यह असंभव है जैसे अग्नि शीतल हो जाये असंभव है। ज्ञानी तो तत्त्वज्ञानी होता है, सुख में निमग्न रहता है। ज्ञानी की परिभाषा देते हुए कहा-

जो विषयों से विरक्त है, जो आत्मा में लीन है, जो संयमी है, जो इन्द्रियों का दमन करने वाला है, जिसने कषायों का शमन कर दिया है, जो प्रभु परमात्मा की भक्ति में लीन है तथा जो दूसरों के लिये अपना सर्वस्व लुटाना जानता है वह ज्ञानी कहलाता है। जहाँ ज्ञानी दूसरों के लिये संसार के वैभव को छोड़ देता है वहीं अज्ञानी संसार के वैभव को अपने लिये ओढ़ लेता है। इसीलिये नीतिकार कहते हैं-कि शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख पैदा हो जाते हैं, जो वास्तव में क्रियावान् है वही पुरुष वास्तव में विद्वान् है। जो क्रियावान्/आचरणवान् नहीं है तो वह विद्वान् नहीं है। विद्वान् की पहचान शब्दों के संग्रह से नहीं क्रिया से की जाती है। क्रिया गर ठीक-ठाक है तो समझो वह ज्ञानी पुरुष है क्रिया विवेक से रहित है तो अज्ञानी है।

कोई व्यक्ति कहे मुझे इस बात का ज्ञान है कि अग्नि जलाती है और मुझे अग्नि से दूर रहना चाहिये यदि यह कहता हुआ भी वह अपना हाथ अग्नि में डालता जाये तो फिर उसे तुम ज्ञानी कहोगे क्या? वह ज्ञान ज्ञान नहीं मात्र शब्दों का संग्रह है। ऐसे ही आचार्य माणिक्यनंदी स्वामी जी ने परीक्षा मुख सूत्र ग्रंथ में लिखा है-**''हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेवतत्''** जो ज्ञान हित की प्राप्ति कराने में, अहित का परिहार कराने में समर्थ है वही वास्तव

में प्रमाण है, वही ज्ञान है। जिसके माध्यम से व्यक्ति हित के मार्ग को ग्रहण कर नहीं पाये अहित के मार्ग से बच नहीं पाये उसे जैन शास्त्रों में ज्ञान नहीं कहा।

दूसरी बात ज्ञान ऐसे समझो-प्रकाश किसे कहते हैं? जिसके आलम्बन लेने से व्यक्ति गड्ढे में गिरने से बच जाये और सही मार्ग पर चले तो वह प्रकाश है अन्यथा अंधकार में हाथ में दीपक या टार्च लेकर चलने पर भी पैर में चोट लग जाये तो उस प्रकाश की क्या महत्ता। अंधेरे में भी पैर में चोट लग सकती थी इसलिये तो टार्च लेकर चला था किंतु वह टार्च उसे न बचा पायी उसका फल ही उसे फलित नहीं हो रहा तो वह प्रकाश प्रकाश नहीं है। ऐसे ही ज्ञान का अविनाभावी संबंध है क्रिया से। ज्ञान यदि है तो क्रिया होगी। दीपक ज्ञान है तो प्रकाश उसकी क्रिया है। ज्ञान यदि पुष्प है तो सुगंध उसकी क्रिया। ज्ञान की परछाई है क्रिया। ऐसा नहीं हो सकता कि बिम्ब खड़ा हो किंतु प्रतिबिम्ब दिखाई न दे। जिस दर्पण में चेहरा दिख ही नहीं रहा उसे दर्पण कैसे कहोगे। दर्पण तो वह है जिसमें तुम्हें अपना चेहरा दिखाई दे जाये, ज्ञान तो वह है जिससे तुम स्व-पर की आत्मा का कल्याण कर सको, जिससे दूसरे के कल्याण में निमित्त बन सको, अपनी आत्मा का कल्याण हो वही ज्ञान ज्ञान है।

यदि कोई व्यक्ति धान से रहित छिलकों को कूट रहा है तो कूटने से धान नहीं निकलेगा उन्हें कूटना वह क्रिया बेकार है। कोई व्यक्ति बालू को पेल रहा है तो तेल नहीं निकलेगा वह क्रिया बेकार है। मंथन करने से यदि नवनीत नहीं निकले तो वह मंथन व्यर्थ है ऐसे ही जिस स्वाध्याय के करने से आत्मा का हित नहीं होता है, कषायें शमित नहीं होती, इन्द्रिय विषयों से विरक्ति नहीं होती तो वह ज्ञान बेकार है अर्थात् वह ज्ञान नहीं कोरी जानकारी है। कोरी जानकारी प्राप्त करने वाले व्यक्ति संसार में बहुत होते हैं ज्ञानी पुरुष तो विरले होते हैं

132

कहीं-कहीं मिलते हैं। ज्ञानी पुरुष कभी अपने मुख से नहीं कहते कि मैं ज्ञानी हूँ, ज्ञानी की पहचान तो उसकी क्रिया से होती है उसके आचरण से होती है।

महानुभाव ! ज्ञान आत्म कल्याण का मूल आधार है, ज्ञान सुख का जनक है, ज्ञान आत्महित का प्रकाश है। वह ज्ञान जो चित्त के अंधकार को बढ़ाता चला जाये ऐसा ज्ञान ठीक नहीं। जिस ज्ञान से चित्त में विशुद्धी हो वही ज्ञान ज्ञान है। ज्ञान के साथ आनंद तो आना ही चाहिये जैसे बालक जब पानी में डूबता है तो वह आनंद लेता है और यदि खाली टब में डुबकी लगाये तो कैसे आनंद आयेगा? ऐसे ही अपने ज्ञान के सरोवर में डुबकी लगाने से आनंद आये तो तुम्हारा सरोवर ज्ञान का सरोवर है यदि आनंद नहीं आ रहा तो वह सरोवर नहीं है। तुम्हारे अंदर ज्ञान का नीर नहीं है।

शब्द ज्ञान से अजीर्ण कैसे होता है-वह व्यक्ति दूसरों की मानने को तैयार नहीं होता। कोई समझाये तो भी वह समझता नहीं है वह स्वयं को ही ज्ञानी मानकर दूसरों को समझाने की चेष्टा करता है। एक बार एक बहुत बड़े विद्वान् थे जिन्हें अनेक शास्त्रों का ज्ञान था यहाँ तक कि टीका, वृत्ति, आत्मख्याति, भाष्य इत्यादि उन्हें कण्ठस्थ थे। प्राकृत, संस्कृत, तर्क-वितर्क, युक्ति आदि ऐसी देते थे कि सामने वाले की बात झट से काट देते थे। उन महानुभाव को अपने मन में यह अहं भाव भी रहता था, चलते भी अकड़ कर थे जैसे पहाड़ ही चला आ रहा हो। किंतु ये लक्षण तो ज्ञानी का नहीं है ज्ञानी की तो नम्रवृत्ति होती है। उन महानुभाव को कहीं जाना था। मार्ग में उनके शिष्य का नगर पड़ा वे उस शिष्य से मिलने चले गये। उस शिष्य ने गुरु को देखा तो तुरंत हाथ जोड़कर चरण स्पर्श किये और उन्हें उच्च स्थान दिया। वह शिष्य बोला-गुरु जी आप शीघ्र ही स्नान कर लें फिर आप और हम मिलकर प्रभु की पूजा भक्ति करेंगे तब तक भोजन भी तैयार हो जायेगा।

133

सर्दी का समय था, गुरु जी ने सोचा कि कौन स्नान करे आलस तो आ रहा है और कहने लगे बेटा-तुम जानते नहीं क्या मुझे, तुम मुझसे स्नान करने की कह रहे हो, मुझसे भक्ति पाठ करने की कह रहे हो, मुझे इन सबकी क्या आवश्यकता, वह बोला क्यों गुरु जी क्या हुआ? आपको आवश्यकता क्यों नहीं? गुरु जी कहने लगे-अरे भाई तुम भूल गये मैं तुम्हारा गुरु हूँ तुम मुझे क्या समझाते हो मेरे अंदर तो ज्ञान की गंगा बह रही है। जब ऐसी अखण्ड गंगा बह रही है तो बताओ मुझे स्नान करने की क्या आवश्यकता है। शिष्य ने कहा-ठीक है गुरु जी ! किन्तु भगवान् की पूजा कैसे करोगे? अरे भाई पूजा भक्ति करने की मुझे क्या आवश्यकता ? मुझे तो भगवान् के सारे उपदेश याद हैं, मुझे भगवान् का पूरा चरित्र याद है अब मुझे उनकी पूजा भक्ति करने की क्या आवश्यकता।

इतनी बातें चल ही रहीं थी कि शिष्य की पत्नी आयी और बोली भोजन तैयार है। किंतु शिष्य ने कहा-अभी थोड़ी देर और लगेगी, इतनी दूर से गुरुजी आये हैं तुमने तो सादा भोजन बनाया होगा, हमें इनका आतिथ्य करना है इसलिये व्यंजन पकवान बनाओ। पत्नी भी कुशल थी उसने भी व्यंजन जल्दी तैयार कर दिये और फिर गुरु जी भोजन करने बैठे, शिष्य भी बैठ गया। गुरु जी ने खूब सारे व्यंजन खा लिये। जब पण्डित जी ने सब खा लिया तो शिष्य ने कहा-अब आप विश्राम कर लीजिये। जब पण्डित जी विश्राम करने कमरे में चले गये तो शिष्य ने उनके कमरे की बाहर से कुण्डी लगा दी। 3 घंटे बाद गुरु जी उठे, चिल्लाये बोले बेटा दरवाजा खोलो मुझे बड़ी तेज प्यास लगी है, एक लोटा पानी दे दे। शिष्य बोला-गुरु जी आपको पानी की क्या आवश्यकता है आपके अंदर तो अखण्ड अथाह ज्ञान की गंगा बह रही है वहाँ से एक लोटा पानी लेकर पीलो। वे बोले नहीं बेटा मेरे प्राण कण्ठ में आ रहे हैं यदि तूने मुझे पानी नहीं दिया तो तुझे

हत्या का पाप लगेगा। वह बोला मुझे पाप क्यों लगेगा? आप अपनी गंगा से एक नहीं, दो लोटा पानी पीलो। बाहर के पानी की क्या आवश्यकता? आप तो परम पवित्र हैं। पण्डित जी खूब रोये-चिल्लाये और अंत में हाथ जोड़कर क्षमा मांगी बेटा मैं कभी अहंकार नहीं करूँगा, नहाऊँगा भी, भगवान् की भक्ति भी करूँगा मुझे तू पानी दे दे। शिष्य ने कुण्डी खोली गुरुजी को बाहर निकाला, पानी पिलाया कहा गुरु जी मुझे क्षमा कर देना, मैंने यह सब इसलिये किया क्योंकि आपको ज्ञान का अजीर्ण हो गया था, अब आपको समझ आ गया कि ज्ञान का अजीर्ण कितना खतरनाक है।

जिस प्रकार युद्ध क्षेत्र में योद्धा के लिये ढाल के बिना तलवार खतरनाक हो जाती है, जैसे दुर्बल सैनिक के हाथ में सबल शस्त्र खतरनाक होता है, शत्रु उसके शस्त्र को छीन कर उस पर ही वार कर सकता है ऐसे ही क्रिया के बिना हमारा ज्ञान हमारे लिये ही घातक सिद्ध हो जाता है। इसलिये जीवन में क्रिया होना जरूरी है वही कल्याण का मार्ग है। **''क्रिया सहितं ज्ञानं''** ज्ञान क्रिया से सहित होना चाहिए यदि वह क्रिया से रहित है तो वह हानिकारक होता है इसलिये आप और हम सभी चाहे थोड़ा ही स्वाध्याय करें किंतु जीवन में धारण करें तभी वह हमारा कल्याण करने वाला होगा। बिना आचरण के कोरा शब्द ज्ञान किसी का कल्याण नहीं करता। हम अपने और आप सभी की कल्याण की भावना भाते हैं तथा इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

१५. संस्कारों का शंखनाद

शंखनाद शब्द आपने कई बार सुना होगा। प्राय:कर ये शंखनाद शब्द मांगलिक शब्द माना जाता है। जब कोई युद्ध में से विजय प्राप्त करके आता है तो शंखनाद करता है। जब कोई व्यक्ति आरती, संध्यावंदन आदि करते हैं तो शंखनाद होते हैं अथवा जब कोई प्रात:काल भगवान् का अभिषेक आदि होता है तो उसमें शंखनाद, तुरई, घंटा आदि वाद्य यंत्रों का वादन किया जाता है। शंखनाद शब्द और शंखनाद का शब्द दोनों ही अंतरंग में एक आनंद को पैदा करने वाले होते हैं। कानों में जब शंखनाद का शब्द सुनाई देता है तो स्वत: ही विचार आ जाता है कि कहीं मंगल कार्य हुआ होगा। मन उतने समय के लिये मंगलमय हो जाता है। शंखनाद किससे किया जाता है? हाथ में शंख लेकर बजाना शंखनाद है। जैसे ॐकार का नाद ॐ का उच्चारण करके किया जाता है। मेघ की गर्जन को मेघनाद, समुद्र के गर्जन को समुद्रघोष कहा जाता है ऐसे ही शंखनाद किसका? संस्कारों का।

संस्कारों को यदि हाथ में लेकर के उससे नाद किया जाये तो उसका क्या प्रभाव पड़ता है। क्योंकि शंख के नाद की ध्वनि मंगलमय होती है अत: संस्कारों का शंखनाद जब जीवन में हो तो उसके माध्यम से जीवन पवित्र बन जाता है तथा आत्मा परमात्मा की अवस्था को प्राप्त हो सकती है। यद्यपि ये बात सत्य है संस्कार दो प्रकार के होते हैं। एक सुसंस्कार एक कुसंस्कार।

कुसंस्कार प्राणी को पतन की ओर ले जाते हैं और सुसंस्कार उत्थान की ओर ले जाते हैं। कुसंस्कारों के नाद को शंखनाद नहीं कहते। कुसंस्कारों की तो भीषण गर्जना होती है, वह तो विद्युतपात् की तरह प्राणलेवा व दु:ख देवा होते हैं। किंतु संस्कारों के शंखनाद

से आशय है हम सुसंस्कार की बात करने वाले हैं। कुसंस्कारों की बात करनी भी नहीं है क्योंकि बुराई का उदाहरण प्रस्तुत करके बुराई को नहीं छुड़ाना है बस इतना कहना है कि बुराईयों से बचना है। और बचना है तो कैसे बचेंगे? सबसे अच्छा उपाय है बुराई से बचने का कि उसे अच्छाई के मार्ग में लगा दो। क्योंकि एक साथ व्यक्ति दो रास्तों पर चल नहीं सकता। जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं आ सकती, जैसे एक सुई दो तरफ से सिलाई नहीं कर सकती, ऐसे ही एक राही एक बार में एक ही रास्ते पर चल सकता है दो पर नहीं।

संस्कार यदि व्यक्ति ग्रहण कर रहा है तो उसके जीवन में कुसंस्कारों का अभाव अपने आप होता चला जायेगा। जो व्यक्ति अपने कक्ष में प्रकाश को बढ़ाता चला जा रहा है तो अंधकार अपने आप लुप्त होता चला जायेगा। एक क्रिया करने से दो कार्य अपने आप होते हैं। कोई व्यक्ति यूँ कहे कि घर से स्कूल की ओर जा रहा हूँ और घर से दूरी बढ़ाना चाहता हूँ। तो उसे ये दो काम नहीं करने पड़ेंगे कि घर से दूरी बढ़ाऊँ और स्कूल के समीप पहुँच जाऊँ एक ही बार में दोनों कार्य हो जायेंगे। वह चलेगा तो घर की दूरी बढ़ेगी व स्कूल की समीपता आ जायेगी। एक मोमबत्ती जलाने से अंधकार नष्ट होता है प्रकाश हो जाता है। ऐसे ही सुसंस्कारों की सुराह पकड़ में आ जाये तो व्यक्ति के भटकने की आशा कम होती है।

बात यह है कि सुसंस्कारों की राह पकड़ में कब आये? जब हम जीवन के चौराहे पर खड़े हों जहाँ से कुसंस्कारों का रास्ता भी जाता है, सुसंस्कारों का रास्ता भी जाता है। वहाँ से यदि सुसंस्कारों की राह पकड़ ली जाये तो फिर कुसंस्कार के पथ पर जाने का खतरा कम हो जाता है। यदि हम ये सोचें कि पहले हम कुसंस्कारों के पथ पर चलकर देख तो लें क्योंकि लोग कहते हैं कि उस रास्ते पर काँटे पड़े हैं, कंकड़ पड़े हैं, वह रास्ता ठीक नहीं है तो देख तो आयें कि रास्ता

कैसा है, लौटकर फिर यहीं आ जायेंगे। यदि वहाँ पर चले जाओगे तो लौटकर आना मुश्किल हो जायेगा क्योंकि जो मार्ग काँटों से भरा है उसमें पैर इतने लहु लुहान हो गये कि लौट कर आ ही न पाये।

कुसंस्कारों का मार्ग ऐसा मार्ग है जैसे दल-दल भरा हुआ या कीचड़ से भरा हुआ। उस मार्ग में हाथी शरीर जैसे महापुरुष भी फँस जायें तो निकलना मुश्किल होता है इसलिये कुसंस्कारों वाले दल-दल के मार्ग पर तो चलना ही नहीं चाहिये क्योंकि जो व्यक्ति ये सोचता है कि जहर मारने वाला है तो पहले मैं उसका अनुभव कर लूँ कि जहर वास्तव में मारने वाला है या नहीं। तो जो ऐसे अनुभव करके जहर का त्याग करेगा तो कभी जहर त्याग कर ही नहीं पायेगा। जहर खाकर पहले ही मर जायेगा। ऐसे ही कुसंस्कारों को भोग करके कुसंस्कारों का त्याग नहीं किया जाता, पापों को भोगकर के पापों का त्याग नहीं किया जाता। बुद्धिमान्, विवेकी और वास्तव में चतुर पुरुष वही है जो पाप के फल को भोगे बिना, कुसंस्कारों के मार्ग पर चले बिना ही सुसंस्कारवान् व्यक्ति को देखकर अपने जीवन में संस्कारों को धारण करने का नियम ले लेता है। उन्हें अपना आदर्श मानकर अनुसरण करता है तो उसके जीवन में सुसंस्कारों का सुप्रभात हो जाता है। क्योंकि कुसंस्कार रात्रि के अंधकार की तरह होते हैं रात्रि में रहने वाले व्यक्ति सोचते हैं रात्रि बनी रहे और मैं खूब सोता रहूँ किंतु जब प्रकाश हो जाता है तो उसकी नींद टूट जाती है।

कुसंस्कारों की श्याम निशा में नींद ही नींद आती है और सुसंस्कारों के सुप्रभात में नींद खुल जाती है। कुसंस्कार की निशा में बुराईयाँ पनपती हैं चोरी, डकैती, लूटपाट आदि सभी बुरे व्यसन प्राय:कर अंधकार में होते हैं। प्रभात होने पर प्राय:कर सभी मंगलकार्य होते हैं। सुप्रभात होते ही मंगल गान, मंगलनाद सुनाई देते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी प्रात:काल चहक करके मंगल नाद करते

हैं। आपने कभी प्रात:काल से किसी पशु पक्षी को रोते हुये या चिंघाड़ते हुये नहीं देखा होगा। दोपहर या शाम को भले ही रोते चिंघाड़ते हों। प्रात:काल तो कोयल भी कूकती है, चिड़ियाँ चीं-चीं करती है उन्हें बहुत आनंद आता है। जो व्यक्ति तनाव से युक्त होते हैं प्रात:काल घूमने जाते हैं तब उनका मन भी उन पक्षियों को देखकर आनंदित हो जाता है। तो कहने का आशय यह है कि सुसंस्कारों के सुप्रभात में ही सुपथ की प्राप्ति हो सकती है। कुसंस्कारों की श्याम निशा में किसी ने भी सुपथ की प्राप्ति नहीं की, वह एक बार कुपथ पर गया तो तमाम उम्र तक भटकता ही रहा किंतु मंजिलों को न पा सका। किसी ने कहा है-

शौके राह में उठ गया था मेरा एक कदम गलत।
तमाम उम्र मंजिले मुझे खोजती रहीं॥

शौक-शौक में बीड़ी पीने का शौक लगा, तम्बाकू खाने, शराब पीने का या और कोई गलत कार्य करने का शौक लगा। गलत काम करने में पहली बार तो तुम झिझकोगे किंतु जब एक बार कुसंस्कार आने लगे तो पुन: वे बढ़ते चले जाते हैं। जैसे कुम्भकार मटके बनाकर अपने घर में रखता है। पूरे आँगन में मटके फैले पड़े हैं अब मटके से पूरा आँगन घिरा पड़ा है तो कुंभकार क्या करता है? वह पहले एक मटका उल्टा रखता है फिर अब उल्टे मटके पर 2-3-4 बढ़ाते-बढ़ाते और मटके रखता चला जाता है कई मटके एक लाइन में रखता चला जाता है ऐसे लाइन लगाते-लगाते जो 100-200 मटके पूरे आँगन को घेरे हुये थे वे 3-4 लाइन में पूरे लगकर एक कोने में आ गये। जब उसने मटका रखा तो उल्टे मटके पर उल्टा मटका जल्दी रख गया, उल्टे मटके पर सीधा मटका नहीं रखा जाता सीधे पर सीधे रखे जाते हैं उल्टे नहीं।

जैसे पनिहारिन जो पानी भर के लाती है तो अपने सर पर सीधे मटके रखती है। क्या परिहारिन के सिर पर उन सीधे मटकों के बीच

में कभी उल्टा मटका भी रखा देखा है? नहीं देखा। तो ऐसे ही जब व्यक्ति सुसंस्कार ग्रहण करता है तो सुसंस्कारों की ओर बढ़ता चला जाता है, कुसंस्कार ग्रहण करता है तो कुसंस्कारों की ओर बढ़ता चला जाता है। चाहे वह रावण हो या अंजन चोर जब एक बार कुसंस्कार की राह पकड़ लेता है तो उससे उस राह को छुड़ा पाना बड़ा कठिन होता है और जो सुसंस्कारों की राह पकड़ लेता है उस राह को तजने में उसे लाज आती है वह उसे तज नहीं सकता, वह चाहे लोक लाज वश ही कार्य करे किंतु करता जरूर है।

देखो-जब कोई व्यक्ति सीढ़ी चढ़ता है तो उसकी निगाह कहाँ होती है? चढ़ते समय आगे वाली सीढ़ी पर ऊपर वाली पर और उसे देखकर उस पर चढ़ने का उत्साह भी होता है बढ़ते-बढ़ते छत पर पहुँच जाता है। यदि वह व्यक्ति नीचे उतरना शुरू कर दे तो फिर जब उसका मुख नीचे की तरफ होता है तब उसे ऊपर वाली सीढ़ी दिखाई नहीं देती नीचे वाली दिखाई देती है। कुसंस्कारों में पड़ने वाला व्यक्ति क्रमशः नीचे-नीचे की तरफ गिरता चला जाता है जैसे पहाड़ पर से लुढ़कने वाला पत्थर नीचे चलता चला जाता है। पहाड़ की चोटी पर चढ़ने वाला मुसाफिर, राहगीर, तीर्थयात्री पहाड़ की एक-एक सीढ़ी चढ़ता जाता है, उत्साह के साथ आगे बढ़ता चला जाता है उसे बड़ा आनंद आता है। ऐसे ही सुसंस्कारों का जिसे आनंद आ रहा है वह और भी कई अच्छे-अच्छे सुसंस्कार प्राप्त करना चाहता है।

जैसे किसी व्यक्ति ने एक अच्छा कार्य किया और समाज ने उसे पुरस्कृत किया, तो उसका मन हुआ उसने और भी अच्छे कार्य किये। जैसे एक विद्यार्थी ने किसी विषय में अच्छे अंक प्राप्त किये सभी ने उसका उत्साह बढ़ाया उसने और मेहनत की आगे सभी विषयों में अच्छे अंक आये उसे सबने खूब पुरस्कृत व प्रोत्साहन दिया। वहीं दूसरी ओर एक विद्यार्थी जिसे एक विषय में डाँट दिया तू तो गणित

में बिल्कुल गधा है तू कुछ नहीं कर सकता, तो उसके मन में यह बात बिल्कुल बैठ गयी कि मैं गणित में बहुत गधा हूँ। पुनः दूसरे अध्यापक आये तो लड़कों ने कहा सर ये तो गणित में गधा है, उन्होंने कहा ये तो अंग्रेजी में भी गधा है। तीसरे सर आये तो कहा ये संस्कृत में भी गधा है। वह सोचता है मैं गधा बन गया अब मैं पढ़ नहीं पाऊँगा। मुझे गणित आती नहीं है, संस्कृत, अंग्रेजी आती नहीं है फिर उसकी मानसिकता वैसी ही बनती चली गयी और अंततः पढ़ाई ही छोड़ देता है।

जो एक उत्साह से पढ़ता चला जाता है वह सोचता है मेरा प्रतिशत कभी डाउन नहीं होना चाहिये, अगली साल मेरे नंबर और अच्छे आना चाहिये। फिर वह स्वयं तो प्रयास करता है परिवारी जन व गुरुजन भी उसे प्रोत्साहन देते हैं वह अच्छे नंबर प्राप्त कर लेता है और जो फेल हो जाता है दूसरी बार उसका उत्साह भी फेल हो जाता है यदि लगातार दो साल फेल हो जाये तो उत्साह और भी घट जाता है, तीसरी साल फेल हो जाये तो फिर पढ़ाई ही छोड़ देता है। इसी प्रकार जो कुसंस्कारों की काली छाया में एक बार आ गया तो फिर निकलना मुश्किल हो जाता है इसलिये सुसंस्कारों के दिव्य प्रकाश में आयें उसकी थोड़ी चर्चा करें:-

संस्कारों का शंखनाद हमारे जीवन में कब हो?-एक बालक को जन्म के बाद से ही सुसंस्कार जीवन में ग्रहण करना चाहिये ऐसा बुद्धिमान् मनीषी विद्वान् कहते हैं। जैनाचार्य कहते हैं-सुसंस्कारों का बीजारोपण तब से करना चाहिये जब माता-पिता के मन में अपने वंश की वृद्धि करने का भाव आता है। बालक जब गर्भ में भी नहीं आया उसके पहले से वे सोचें, प्रभु परमात्मा के चरणों में प्रार्थना करें हे प्रभु ! हम वंश की वृद्धि तो करना चाहते हैं हमारे गर्भ से ऐसा पुण्यात्मा पुत्र जन्म ले जिसके माध्यम से हमारे कुल का नाम हो, धर्म का नाम

हो, अच्छे कार्य करे जिससे हमारे देश का नाम हो, पूरे विश्व को नयी राह दिखाये। तो ऐसी प्रार्थना करने से पुण्यात्मा जीव आयेगा।

ये मत सोचो कि ऋषभ देव का पुण्य था जो मरुदेवी-नाभिराय के यहाँ जन्म ले लिया, अरे मरुदेवी ने भी साधना की थी कि ऐसा पुण्यात्मा पुत्र हमें प्राप्त हो। गर्भ के छः महीने पहले से ही नहीं अपितु वर्षों पहले से भावना भायी थी तब वह सर्वार्थसिद्धि का अहमिन्द्र वहाँ से च्युत होकर के माँ मरुदेवी के गर्भ में आया। अन्यथा और किसी माँ के गर्भ में क्यों नहीं चला गया। इसलिये पहले से भावना भाना जरूरी है जो भी अपने वंश की वृद्धि करना चाहते हैं तो पहले दिन से ही यह नियम ले लें कि हम वंशवृद्धि तो करेंगे किंतु हमारी संतान ऐसी हो जिस संतान को देखकर के हमें नाज हो, जिस संतान को देख करके लोग पूछें कि ये किसका बेटा है, जो इतना सुसंस्कारी है।

लोग हमारे पास आते हैं और कहते हैं-महाराज जी हमारे बच्चे हमारी बात नहीं मानते हम कहते हैं-वास्तव में ही तुम्हारें हैं क्या? ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि ये तुम्हारे बच्चे हों। तो उन्हें लगता है कि ऐसा पूछकर तो महाराज जी हमारा अपमान कर रहे हैं। हाँ बात कड़वी जरूर है पर बच्चे सिर्फ जन्म से ही तुम्हारे नहीं हो जाते तुम्हारे बच्चे वास्तव में तब तुम्हारी वसीयत प्राप्त करने के अधिकारी हैं जब तुम उन्हें जन्म देने के साथ-साथ संस्कार भी दो। मात्र जन्म देना ही पर्याप्त नहीं है। हमारे भी शिष्य भक्त हैं हमें उन्हें आदेश, उपदेश, निर्देश नहीं देना पड़ता वे संकेत से चलते हैं। ऐसे ही जिन कुलों में जिन परिवारों में अच्छे संस्कार दिये जाते हैं, माता पिता अपने बच्चों को डाँटते नहीं हैं पीटते नहीं वे स्वतः ही इतने संस्कारवान् होते हैं कि माता-पिता के मनो-अभिप्राय को समझ जाते हैं। जैसे सद्शिष्य अपने गुरु के अभिप्राय को समझ जाते हैं ऐसे ही अच्छे बच्चे अपने माता-पिता के अभिप्राय को समझ जाते हैं।

श्री रामचन्द्र जी के बारे में आपको ज्ञात होगा-दशरथ जी ने बुलाकर राम से ये नहीं कहा कि तुम वन में चले जाओ राम तो स्वयं रानी कैकया के पास गये उनसे पूछा कि पिता जी क्यों उदास हैं तब कैकया ने बताया कि मैंने उनसे वरदान माँग लिया है तब श्री राम ने कहा-बताओ कि क्या वरदान है। वे बोली मैंने भरत के लिये राजगद्दी माँग ली है और वे तुम्हारे बिना रह नहीं सकते तुम्हें वनवास जाना होगा। रामचन्द्र जी ने कहा-ये तो मेरा सौभाग्य है। रामचंद्र जी को इस बात का तो विकल्प था कि मेरे पिता मेरे बिना कैसे रह पायेंगे किन्तु उन्होंने वनवास की बात को भी सकारात्मक रूप में लिया। तो अच्छे बालकों को माता-पिता कभी आदेश नहीं देते। जो बालक खराब होते हैं वे तो अपने माता-पिता तक को आदेश दे देते हैं।

अत: अच्छे संस्कारों को बालक जब गर्भ में हो तभी से देना प्रारंभ करें। 9 माह तक गर्भ में अच्छे संस्कार माँ दे, माँ अच्छे शास्त्रों का स्वाध्याय करे, अच्छी भावना भाये, प्रभु परमात्मा की भक्ति करे, संत महात्माओं को आहारादि दान दे अन्य प्रकार से शुभ कार्यों में अपना मन लगाये, पुण्य की क्रिया करने से बालक पुण्यात्मा होता है। यदि गर्भ में बालक पुण्यात्मा नहीं है तो माँ का मन पुण्यकार्य में नहीं लगता। जैसे किसी व्यक्ति ने नरक की आयु बाँध ली है तो जीवन के अंतिम क्षण में उसका मन धर्मध्यान में नहीं लगता उसके परिणाम खराब हो जाते हैं ऐसे ही माँ के गर्भ में कोई पापी जीव आ गया, जो पाप करेगा नरकादि दुर्गतियों में जायेगा तो माँ के परिणाम भी खराब हो जाते हैं। पुण्यात्मा बालक के निमित्त से माँ के परिणाम भी अच्छे हो जाते है। जैसे तीर्थंकर बालक जब माँ के गर्भ में आते हैं तो माँ की बुद्धि भी निर्मल हो जाती है।

तो कहने का आशय यह है कि निमित्त का प्रभाव पड़ता है पापी जीव परिणाम खराब करता है। किन्तु माँ अपने अच्छे परिणाम

रखे क्योंकि अभी माँ की सामर्थ्य ज्यादा है, गर्भस्थ शिशु की कम है। इसीलिये यदि माँ अपनी शक्ति के साथ अच्छे-अच्छे संस्कार दे तो पापी जीव भी अपने पापों को क्षय करके पुण्य के क्षेत्र में आ सकता है। 9 महीने की माँ की साधना और 9 साल तक पिता अपने बेटे के सामने कोई गंदी हरकत न करे, अच्छे संस्कार दे क्योंकि बेटा जो देखता है वही सीखता है वचनों को बाद में ग्रहण करता है।

एक बालक स्कूल पढ़ने के लिये गया। स्कूल में पहले दिन पढ़ाया, सदा सत्य बोलो झूठ नहीं बोलना चाहिये। वह घर आया तो उसने देखा पिताजी घर में बैठे हैं तभी कोई व्यक्ति तगादा करने आया, पिता ने बालक से कहा-द्वार पर चले जाओ उस आये व्यक्ति से कह दो पिताजी घर में नहीं हैं। बालक ने भी जाकर यही कह दिया। दूसरे दिन वह बालक पुनः स्कूल पढ़ने गया स्कूल में पढ़ाया आपस में लड़ना-झगड़ना नहीं चाहिये। घर आया देखा माता-पिता आपस में लड़ झगड़ रहे हैं। तीसरे दिन पुनः स्कूल गया पाठ सिखाया-बड़ों की विनय करनी चाहिये, घर आकर देखा कि पिताजी तो दादाजी से अपशब्द कह रहे हैं उनकी अवनिय कर रहे हैं। इस प्रकार बालक ने देखा कि घर का माहौल कुछ और है स्कूल का कुछ और है। वह कहने लगा-पिताजी मैं अब स्कूल नहीं जाऊँगा, स्कूल में टीचर उल्टी शिक्षा देते हैं। पूछा क्या पढ़ाते हैं-वह बोला ऐसा-ऐसा पढ़ाते हैं। पिता ने कहा बेटा ठीक तो पढ़ाते हैं। वह बोला जब स्कूल में ठीक पढ़ाते हैं तो घर का माहौल उल्टा क्यों है? मैं नहीं पढूँगा, या तो घर का माहौल सुधारो या घर और स्कूल का माहौल एक सा करो। जिस घर में अच्छे संस्कार दिये जाते हैं किंतु स्कूल में अच्छे संस्कार नहीं दिये जाते वे बालक उस स्कूल में नहीं पढ़ते। जहाँ पर घर के व स्कूल के संस्कार एक जैसे होते हैं वहाँ बच्चों को पढ़ने में बाधा नहीं आती।

महानुभाव ! अच्छे संस्कारों का बीजारोपण करो। बालक सर्वप्रथम संस्कार ग्रहण करता है अपनी माँ से व परिवारी जन से। अच्छी-अच्छी बातें अपने जीवन में अंगीकार करना है पुस्तकों में तो बहुत कुछ लिखा है, दीवारों पर लिखने से व्यक्तित्व नहीं बनता व्यक्तित्व बनता है अपनी जीवन चर्या में धारण करने से। अच्छे संस्कारों का शंखनाद अपनी आत्मा में करना है, चर्या में करना है हमें देखकर लोग स्वयं कहें कि वास्तव में अच्छे कुल का है, विनम्र है, संस्कारवान् है। सूर्य का उदय स्वत: दिखाई दे जाता है सूर्य को उगकर बताना नहीं पड़ता कि सूर्योदय हो रहा है ऐसे ही जिस प्राणी के जीवन में अच्छे संस्कारों का शंखनाद हो रहा है उस प्राणी का जीवन पूरे विश्व को बता देता है कि इसमें अच्छे संस्कार हैं। उसे अपने साथ दफ्ती टाँगकर नहीं चलना पड़ता कि मैं संस्कारवान् हूँ जैसे पुष्प की गंध स्वत: ही फैल जाती है। ऐसे ही संस्कारी व्यक्ति जिस समाज, कुल, परिवार में रहते हैं वहाँ सुख शांति समृद्धि स्वयं आकर के निवास करती है वहाँ सर्वस्व सुख शांति रहती है। कुसंस्कारों के साथ ऐसा नहीं होता इसीलिये आप अपने जीवन में, अपने पारिवारिक सभी सदस्यों के जीवन में सुसंस्कारों का बीजारोपण करने का सम्यक् पुरुषार्थ करें, सुसंस्कार ही धर्म की आधार शिला है, सच्चे सुख का मार्ग है उन्हें आप ग्रहण करें। मैं आपके प्रति ऐसी भावना भाता हूँ इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

१६. भारतीय संस्कृति

हम जिस देश में रह रहे हैं उस देश का नाम भारत है। इतिहास को उठाकर जब देखते हैं तो उसमें उल्लिखित है कि यह भारत नाम किसी पर्वत या नदी के नाम से या वृक्ष आदि से इसका नाम नहीं पड़ा अथवा भारत नाम किसी घटना विशेष से भी नहीं पड़ा। अपितु इसका 'भारत देश' नाम इस युग के प्रथम आदि तीर्थंकर आदि ब्रह्मा ऋषभदेव स्वामी हुये उनके ज्येष्ठ पुत्र जो षट्खण्डाधिपति भरत चक्रवर्ती हुये उनके नाम से इस देश का नाम 'भारत' पड़ा।

भारत यह एक सार्थक संज्ञा है। जो दूसरों के खालीपने को भरता है, जो भगवत्ता और भक्ति का संदेश देता है, जो भगवान में रत होने की प्रेरणा देता है, जो भावनाओं में रत रहता है वह भारत है। भारत केवल एक शब्द नहीं है भारत एक समूचा शास्त्र है। भारत यह एक शोध का विषय है। भारत को मात्र एक जमीन का टुकड़ा मत समझना भारत में विभिन्न भाषा, सभ्यता, संस्कृति, रीति, रिवाज, आम्नाय, पंथ इस प्रकार से शोभा को बढ़ा रही है जैसे किसी पुष्प वाटिका में नाना प्रकार के पुष्प खिलते हुये उसकी महक से पूरे वातावरण को सुशोभित करते हैं।

भारत में विद्यमान विभिन्न जातियाँ ऐसे आनंद को देने वाली हैं जिस प्रकार किसी उद्यान में नाना प्रकार के वृक्षों से लदे हुये फलों को देखकर के व्यक्ति के नयन व नासिका तृप्त हो जाती है व मन आनंद से झूम जाता है। भारत वैसे ही आनंद को देने वाला है जैसे सघन मेघों को देखकर के मयूर नाचने लगते हैं ऐसे भारत की संस्कृति, मर्यादा, रीति-रिवाज और धर्म क्रियाओं को देखकर के भक्त लोगों का मन मयूर नाचने लगता है।

भारत विभिन्नता में एकता का संदेश देने वाला है जैसे-किसी युवती के गले में पड़ा हुआ सोने का हार इतना सुशोभित नहीं होता

या एक ही प्रकार की माला है तो सुशोभित नहीं होती यदि इस माला में नाना प्रकार के रत्न मोती लगाये जाते हैं तो उसकी शोभा बढ़ जाती है। कैसे बढ़ जाती है? जैसे किसी व्यक्ति के सामने बहुत सारा हलवा परोस दिया जाये तो उसे आनंद नहीं आता या अकेला दूध ही दूध रख दिया जाये तब भी पेट नहीं भरेगा, या अकेला घी-घी रख दिया जाये तो उसका पेट नहीं भरेगा किंतु जब नाना प्रकार के व्यंजन से युक्त भोजन थाली सजा कर रखी जाती है तो उसे भोजन में स्वाद आ जाता है। इसीलिये भारतीय लोग पूजा भी करते हैं तो एक द्रव्य से नहीं। यह परम्परा है, संस्कृति है कि जल से भी पूजा करेंगे, चंदन से भी पूजा करेंगे, अक्षत से, पुष्प से, नैवद्य, दीपक, धूप, फलों से करेंगें। भारतीय संस्कृति में सबको समाहित करने की परम्परा है।

भारतीय संस्कृति के विभिन्न मूल सिद्धान्तों की चर्चा आज करते हैं कि भारतीय संस्कृति में क्या विशेषतायें है किन विशेषताओं के कारण हम भारत को अन्य देशों से पृथक् मानते हैं। अन्य देशों की अपेक्षा से भारत को श्रेष्ठ माना जाता है न केवल भारतीय लोगों की दृष्टि में अपितु अन्य देश में रहने वाले लोगों की दृष्टि में भी भारत एक विशेष देश माना जाता है और इतना ही नहीं कुछ लोग भारत को सोने की चिड़िया कहते हैं तो कुछ लोग भारत को विश्वगुरु कहते हैं, कुछ लोग कहते हैं भारत तो एक मन्दिर है, कुछ कहते हैं भारत तो आदर्श है व न्याय नीति पर चलने वाला है, ऐसे सभी की मान्यतायें अलग-अलग हैं।

कुछ लोग भारत को आध्यात्मिक विद्या का आदि केन्द्र कहते हैं, कुछ लोग भारत को महापुरुषों की जन्मभूमि, खदान व आलय कहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि प्रत्येक धर्म का मूल सूत्रोत्पादन हुआ है तो भारत से ही हुआ है। अन्य किसी भी वस्तुओं का उत्पादन तो विश्व के किसी भी देश में फैक्ट्री डालकर किया जा सकता है किन्तु धर्म

के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रादुर्भाव आदिकाल से लेकर आजतक हुआ है तो वह भारत से ही हुआ है। भारत से ही सभी देश में विद्यायें गयीं, कलायें गयीं। ये सभी भारत की विशेषता रहीं।

भारत की विशेषता है कि भारत दिवस का प्रारंभ अंधकार मध्यरात्रि से नहीं मानता भारतीय परम्परा है कि यह दिवस का प्रारंभ सूर्योदय से मानता है अर्थात् हमारे जीवन में मंगलमय प्रकाश हो गया। इसीलिये मांगलिक कार्य करते समय भारतीय संस्कृति कहती है कि दीप प्रज्ज्वलन कर मांगलिक कार्य प्रारंभ करो। चाहे जन्म दिवस मनाना है, चाहे पूजा पाठ करना है, चाहे अन्य कोई भी कार्य प्रारंभ करना है तो पद्धति दीपक जलाने की है बुझाने की नहीं। भारत में दूसरी बात यह भी है कि वह अंधकार को मंगलमय नहीं मानता। भारत में माह प्रारंभ होने का विधान शुक्ल पक्ष से माना जाता है। कहीं-कहीं उत्तर भारत में कृष्ण पक्ष से भी माह प्रारंभ होना माना जाता है किंतु यह भारत शुक्ल पक्ष के बढ़ते चाँद की तरह शुक्ल संस्कृति का द्योतक है।

महानुभाव ! भारतीय संस्कृति के मूल सूत्रों पर चर्चा करें तो भारतीय संस्कृति में हमेशा यह रहा है कि अपनी थाली का भोजन भी दूसरों को खिला देने का भाव रहता है। भारतीय संस्कृति में कभी किसी से लूट-पाट करके या कभी किसी का छीनने का दु:साहस नहीं किया, कभी किसी से अन्याय अनीति व अत्याचार से लेने का प्रयास नहीं किया। भारत की संस्कृति मूल से ये रही है कि किसी अन्य देश के शासक ने दुष्चेष्टा की, दु:साहस किया, आक्रमण किया तो भारत ने उसके साथ युद्ध तो किया, कायरता नहीं दिखायी किन्तु उसके राज्य को जीतकर के यहाँ लेकर के नहीं आये वहीं छोड़कर के आये। यदि रामचंद्र जी ने लंका को जीता तो वे वहीं छोड़कर आये, चाहे बाहुबली ने अयोध्या को जीता तो उसे छोड़कर दीक्षा ले ली।

चाहे अभी वर्तमान में भारत ने किसी देश के साथ युद्ध किया तो उसकी सम्पत्ति में से एक सिक्का भी लेकर नहीं आये। भारत हमेशा देना जानता है लेना नहीं जानता। भारत ने किसी भिखारी की तरह से हाथ नहीं फैलाये सदैव स्वाभिमान की जिंदगी जीता रहा।

भारत में माता-पिता को भगवान् का दर्जा दिया जाता है। **मातृ देवो भव पितृ देवो भव !** ये भारतीय संस्कृति है। यह संस्कृति सदैव मूल से ही योग प्रधान रही है। भोगों की प्रधानता नहीं है, भोग गौण रूप में है। भारतीय संस्कृति सिर की रक्षा करने वालों की तरह से है। इस संस्कृति में रहने वाला व्यक्ति सदैव अपने सिर को ढांक कर रखता है अपनी आन-बान-शान की सुरक्षा करता है। चाहे नंगे पैर जिंदगी भर रहेगा किन्तु सिर ढांकने का प्रयास करेगा। वह टोपी लगाकर, रूमाल ढांककर ही मंदिर में प्रवेश करता है। किंतु पाश्चात्य संस्कृति में इससे विपरीत कार्य भी हो सकता है। भारतीय संस्कृति में अतिथियों के लिये इतना सम्मान दिया है कि चाहे घर के बालक भूखे बैठे हों और यदि घर में अतिथि आ जाये तो अपने घर का बना भोजन पहले अतिथि को देने का भाव रखा जाता है। उसे सम्मान दिया जाता है उससे माँगा नहीं जाता।

भारतीय संस्कृति में जन्म दिवस मनाने पर काटने की परम्परा नहीं है अपितु वर्ष वृद्धि महोत्सव को ही फिर संयम दिवस के रूप में मनाने का भाव रखते हैं अधिकांश महापुरुषों के जन्म दिवस फिर दीक्षा दिवस के रूप में मनाये गये। क्योंकि भारतीय संस्कृति में बाल्यावस्था से धर्म के संस्कार, फिर अर्थ पुरुषार्थ होता है, फिर काम पुरुषार्थ अंत में मोक्षपुरुषार्थ भी अर्थात् सन्यास को स्वीकार किया जाता है। भारतीय संस्कृति की और भी विशेषताये हैं-

भारतीय संस्कृति में कृषि को अर्थोपार्जन के लिये मुख्य माना गया है और कल्याण के लिये ऋषि परम्परा को मुख्य माना है। यह

संस्कृति भौतिक संसाधनों को उतना ही महत्व देती है जितना आटे में नमक को महत्व दिया जाता है। भारतीय संस्कृति में नमक का उतना महत्व नहीं है जितना मीठे का महत्व है। इसलिये अच्छे शुभ कार्यों में व्यक्ति को मीठा खिलाकर उसका स्वागत किया जाता है। इस संस्कृति में सदैव सम्मान दोनों हाथ आगे फैलाकर किया जाता है। चाहे धर्म कोई भी हो सम्मान हाथ जोड़कर, हाथ उठाकर के किया जाता है क्योंकि ये अभय का प्रतीक है, सामने वाले को कोई भय नहीं रहता। अन्य प्रकार की संस्कृति में हाथ पीछे करके, हाथ बांध कर या अन्य किसी प्रकार से मिला जाता है। भारतीय संस्कृति में स्पष्ट घोषणा करके, युद्ध भी किये तो ललकार कर किये चाहे वीरगति को प्राप्त हो गये किंतु धोके से वार नहीं किया। यदि किसी ने पीछे से वार किया है तो वह भारतीय संस्कृति का नायक नहीं हो सकता है। जैसे पर्वत से गिरती हुयी नदी जो बढ़ती ही चली जाती है और सागर तक पहुँच जाती है ऐसी ही यह हमारी भारतीय संस्कृति है।

पूर्व दिशा में रहने वाला भारत देश सूर्य की तरह से उदीयमान अवस्था को प्राप्त होते-होते बढ़ता चला जाता है किंतु पाश्चात्य संस्कृति इससे विपरीत दशा में व दिशा में पायी जाती है। सूर्य पूर्व में उगता है पश्चिम में ढल जाता है। तो पश्चिम पाश्चात्य संस्कृति है अवमान की संस्कृति है वह लुप्त होने की संस्कृति है। भारतीय संस्कृति सेवा, परहित, उपकार आदि को विशेष महत्व देती है। यहाँ दान का भी महत्व है। उपकार कर अहसान जताने की परम्परा नहीं है। भारतीय संस्कृति में उपकार को न भुलाने की कृतज्ञता की परम्परा भी रही है।

नहि कृतमुपकारं साधवा विस्मरन्ति

साधु पुरुष दूसरों के छोटे से उपकार को यावज्जीवन याद रखते हैं। भारतीय संस्कृति मात्र माता-पिता की वृद्धावस्था तक सेवा करना

ही नहीं सिखाती अपितु उनके दिवंगत होने के उपरांत भी उनका नाम स्मरण करती है। उनके नाम का दीपक चढ़ाते हैं, पूजार्चना भी करते हैं यहाँ तक कि कई जगह तो उनका नाम लेकर पिण्डदान आदि दिया जाता है, दानादि, भोजनादि कराया जाता है।

ये विशेषतायें मैं समझता हूँ भारत देश के अतिरिक्त अन्य देशों में नहीं मिलेंगी। आगे देखें कि भारतीय संस्कृति में जो विवाह पद्धति है उसमें वर के भी 9 गुण देखे जाते हैं, वधू के भी 9 गुण देखे जाते हैं गुण साम्यता देखकर ही संबंध किये जाते हैं। इस संस्कृतिनुसार जो पाणिग्रहण स्वीकार करता है वह वचन बद्ध होता है, वचन को भंग नहीं करता। भारतीय संस्कृति में जीने वाला व्यक्ति स्वयं कष्ट को सहन करके अपने परिवार का निर्वाह करता है। निभता है निभाता है। वह स्वयं कष्ट झेलकर दूसरों को सुख देने का प्रयास करता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा पद्धति भी ऐसी होती थी कि जिसमें केवल आजीविका के ही नहीं अपितु सुख-शांति के सूत्र भी दिये जाते थे। वह शिक्षा शिष्टाचार, सभ्यता पर आधारित है भारतीय संस्कृति में केवल भौतिकता की चकाचौंध नहीं है।

भारतीय संस्कृति में संगीत का भी महत्व है। क्योंकि 72 कलायें होती हैं संगीत भी उसमें अन्तर्निहित है। जब भी संगीत बजता था तो अधिकांश संगीत प्रभु परमात्मा के मंदिर, जिनालय, आलय में होते थे या राजा के दरबार में होते थे। संगीत जब प्रारंभ होता था तो संगीत के साथ-साथ सिर भी हिलने लगता था। मानव के उत्तरीय अंग संचालित ज्यादा होते थे जो कि इस बात का प्रतीक है कि उनका मन आध्यात्मिक जगत में घूम रहा है, वे धर्म के प्रति समर्पित हैं, भक्ति में डूब रहे हैं किंतु हो सकता अन्य किसी देशों में भोग की प्रधानता से अधोअंगों को उत्तेजित करने के लिये या अन्य किसी भौतिक कार्यों के लिये उसका प्रयोग किया जाता हो। भारतीय संस्कृति में

इतनी विद्यायें और कलायें रहीं जिनका प्रयोग उन्होंने स्वयं के लिये कभी नहीं किया।

सदैव उनका प्रयोग दूसरों के उपकार के लिये किया। भारतीय संस्कृति में यह नियम बद्धता व संकल्प रहता है कि जो मंत्रवादी होता है वह उस मंत्र का प्रयोग स्वयं के लिये नहीं करता दूसरों के कष्ट दूर करने के लिये करता है भारतीय संस्कृति में युद्ध भी होते हैं किन्तु उसकी भी एक नीति रीति व संहिता है उसका भी कानून है उसका उल्लंघन नहीं करते। उन नियमों का पालन करते-करते चाहे स्वयं के प्राण देने पड़े तो प्राण देना मंजूर है किन्तु नियमों का उल्लंघन करके विजय प्राप्त करना मंजूर नहीं है।

भारतीय संस्कृति में अबला पर अस्त्र-शस्त्र नहीं उठाये जाते हैं, कायर पुरुष पर वार नहीं किया जाता, निहत्थे पर या जो पीठ देकर खड़ा है उस पर वार नहीं किया जाता, धोखे से वार नहीं किया जाता, जो ललकारने पर सामने आ जाये उससे युद्ध किया जाता है। भारतीय संस्कृति जो युद्ध क्षेत्र में सामने खड़ा हो सिर्फ उसे ही शत्रु मानती है शत्रु मैदान से बाहर आ जाता है तो शत्रुता नहीं रखती।

युद्ध के मैदान में एक सैनिक घायल हो गया। वह सैनिक अपनी आँख खोलकर देखता है कि आस-पास और भी सैनिक घायल पड़े हैं, अधिकांश सैनिक मृत्यु के द्वार तक पहुँच गये किन्तु उसे लगा कि एक सैनिक उससे थोड़ी दूरी पर पड़ा हुआ है जो कि शत्रुपक्ष का है वह घायल है कराह रहा है, पानी-पानी चिल्ला रहा है। वह भारतीय सैनिक जो स्वयं घायल था उसके पेट में भी घाव थे वह अपने हाथ-पैरों से खिसकता-खिसकता चला, जैसे-तैसे करके उठा, कहीं से पानी लाया और खिसकता-खिसकता उस विदेशी शत्रु के पास पहुँचता है, हाथ में पानी का दोना लेकर के कहता है-भाई! हम भारतीय संस्कृति के साथ जीने वाले हैं, हमारी-तुम्हारी शत्रुता तब

तक थी जब हम आमने-सामने युद्ध कर रहे थे अब तुम और हम मित्र-मित्र हैं। तुम प्यासे हो, दर्द से कराह रहे हों मैं तुम्हें पानी पिलाने के लिये आया हूँ पानी पीलो।

वह विदेशी शत्रु जो बेहोशी की हालत में था, दर्द से कराह रहा था वह अपने हाथ पीछे ले गया और अपने वस्त्र में छिपी कटार निकाली और उस भारतीय सैनिक के पेट में भोंक दी। उसने कहा-तुम शत्रु मानो या ना मानो हम तो तुम्हें शत्रु मानते हैं, हमें तुम्हारे हाथ का पानी नहीं पीना है भले ही हम अपने प्राण दे देंगे। वह भारतीय सैनिक वहाँ मूर्च्छित हो गया किंतु अभी भी उसकी श्वासें चल रही थी। तब तक कुछ कार्यसेवी जो युद्ध क्षेत्र की समीक्षा कर रहे थे कि कौन मृत्यु को प्राप्त हुआ है या किसका अंतिम संस्कार करना है, किसे अस्पताल में ले जाना है आदि देख रहे थे। वे युद्ध क्षेत्र की समीक्षा करते-करते वहाँ आये और उन दोनों घायलों को भी अस्पताल में भर्ती किया।

वह भारतीय सैनिक दो दिन तो बेहोश ही रहा ऐसा लग रहा था बचेगा नहीं किन्तु तीसरे दिन उसकी मूर्च्छा टूटी तो वह उठा आँख खोली तो उसे वह दृश्य याद आ जाता है कि मैं युद्ध में तो इतना घायल नहीं हुआ था मैं तो शत्रु पक्ष के सैनिक के लिये जल ले गया था उसने धोखे से मेरे ऊपर वार कर दिया मैं उसके प्रति अपनी भावना पूर्ण न कर सका। संयोग की बात उसी अस्तपाल के उसी कक्ष में दो पलंग छोड़कर के वह शत्रु पक्ष का सैनिक भी वहीं भर्ती था भारतीय सैनिक ने जब आँख खोलकर के इधर-उधर देखा कि मेरे आस-पास कौन है। संयोग वशात् तीसरे पलंग पर उसे वह सैनिक दिखाई दिया उस शत्रु सैनिक की दृष्टि उस भारतीय सैनिक पर अभी नहीं पड़ी थी।

उस भारतीय सैनिक के पास दूध रखा था जो कि उसके पीने के लिये रखा था, उसने दूध का गिलास हाथ में लिया पीने को हुआ तो उसके मन में भाव आया, उस दिन मैं उस सैनिक को पानी नहीं पिला पाया आज इसे दूध पिलाऊँगा। वह अपने पलंग से उतरा और लडखड़ाता हुआ उसके पास पहुँचा। कहता है-भैया युद्ध क्षेत्र में तो मैं अपनी भावना पूर्ण नहीं कर पाया वहाँ मैं तुझे पानी नहीं पिला पाया किंतु अब मैं अपनी भावना जरूर पूरी करूँगा लो तुम पहले मेरे हाथ से दूध पीओ उसके बाद मैं पीऊँगा। उसने कहा-कहीं तुम दूध में जहर तो नहीं मिला लाये? वह बोला हम भारतीय हैं किसी के साथ धोखा नहीं करते, युद्ध क्षेत्र में लड़ते हुये तुम मेरे शत्रु थे किन्तु अब मेरे मित्र हो शत्रु नहीं हो। वह विदेशी शत्रु उसकी इन बातों से इतना पिघल गया कि उसकी आँखों में आंसू आ गये।

ये भारतीय सैनिक कौन सी मिट्टी के बने हैं चट्टान के हैं या पत्थर के बने हैं मैंने इसे धोखे से मारा, अपमान किया फिर भी यह मुझे दूध पिलाने आया। वह अपने पलंग से उठा और उसके पैर पकड़ लिये वह कहता है मैंने जो भारत के बारे में सुना था कि भारत वास्तव में विश्व का गुरु है, वह देश तो महात्माओं का देश है, उन्हीं की जन्मभूमि है। मैंने आज प्रत्यक्ष मैं देख लिया यहाँ वास्तव में तुम जैसे देवता पुरुष रहते हैं। मैं अब कभी भारत छोड़कर नहीं जाऊँगा भले ही मेरे शरीर ने विदेश में जन्म लिया है किन्तु अब मैं यहीं इस देश के लिये अपने प्राण विसर्जित करने में ही अपना सौभाग्य मानूँगा।

महानुभाव ! ये है भारतीय संस्कृति। जहाँ कष्टों के लिये आँख में आँसू नहीं आता, आँसू तब आता है जब उनकी मान मर्यादा छिन्न-भिन्न होती है, आन-बान खण्डित होती है या वह अपने संस्कारों से च्युत हो जाता है तब उसे दु:ख होता है। उसे दु:ख अपनी थोथी विजय पर नहीं अपितु वह तो चाहता है कि अपने आन-बान

शान के लिये लड़े। भारतीय संस्कृति में पूजा इबादत भी की जाती है तो कभी अकेले के लिये नहीं की जाती है। भारतीय संस्कृत में वहाँ के सभी संत महात्मा पुरुष या एक भक्त पूजा करने वाला भी कहता है विश्व के सभी प्राणी को सुख शांति मिले, सभी निरोगावस्था को प्राप्त करें, विश्व का प्रत्येक व्यक्ति यावज्जीवन अपनी पूर्ण आयु जीये। कभी ये नहीं चाहता कि विश्व के व्यक्ति मर जायें और उनका धन हमें मिल जाये वह उनके दु:खी या रोगी होने की कामना भावना नहीं भाता, वह तो-

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामया।
सर्वेभद्राणिपश्यंतु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्॥

वह सबके लिए सुखी जीवन की भावना भाता है क्योंकि वह जानता है कि मैं अपने लिये जैसा सुख चाहता हूँ वैसा ही सुख विश्व के प्रत्येक व्यक्ति, प्राणीमात्र अपने लिये चाहते हैं। महानुभाव ! ये भारतीय संस्कृति की कुछ विशेषतायें जो हमने आपके सामने प्रस्तुत की ऐसी बहुत सारी विशेषतायें हैं उनके बारे में समय आने पर फिर कभी चर्चा करेंगें आज बस इतना ही।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

१७. ये कैसा पैसा

वर्तमान काल में जब हम संसारी प्राणियों की ओर दृष्टि डालते हैं तो अधिकांश प्राणी दु:खी दिखायी देते हैं। चाहे भले ही तिर्यंचों में दु:ख कम हो, देवों में दु:ख न हो, चाहे नारकियों का दु:ख नि:सीम हो, उन तीन गति के जीवों में दु:ख की हीनाधिकता भले ही हो किन्तु मनुष्यों के दु:ख में वृद्धि जरूर हुयी है। ज्यों-ज्यों काल परिवर्तन होता है त्यों-त्यों मानव के विचारों में अन्तर आता है और विचारों में अन्तर आने से उनके पाप और पुण्य कर्म कभी घटते हैं कभी बढ़ते हैं क्योंकि विचार कर्म के आश्रव में मुख्य हेतु हैं। मन:स्थिति कर्मबन्ध के लिये मुख्य उत्तरदायी है। मन:स्थिति से जितनी मात्रा में कर्म आते हैं उतनी मात्रा में कर्म शरीर की प्रवृत्ति व वचनालाप से भी नहीं आते इसलिये मन को संभालना भी बहुत आवश्यक है।

प्राणियों में (मनुष्यों) भेद देखा जाता है। मनुष्यों में इच्छायें, वासनायें, अभिलाषायें, कामनायें, जन्म से रहती हैं और वह ज्यों-ज्यों बढ़ता चला जाता है वह कम नहीं होती प्राय:कर के बढ़ती चली जाती हैं। वह मनुष्य अपनी इच्छाओं को, कामनाओं आदि को पूर्ण करने के लिये कोई न कोई माध्यम ढूँढ़ता है। अधिकांश पुरुषों की ये धारणा है कि धन के माध्यम से प्रत्येक इच्छा, कामना, भावना को पूर्ण किया जा सकता है। जब तक वह इस धारणा को स्वयं नहीं तोड़ेगा तब तक वह टूट नहीं सकती। इसलिये प्राय:कर संसार के सब प्राणी अर्थ की परिधि पर अभिनय करते रहते हैं। अर्थ की परिधि पर किया गया अभिनय दु:ख, अशांति, क्लेश और अनर्थों को जन्म देने वाला होता है। अर्थ की परिधि से थोड़ा हटकर के केन्द्र की ओर यात्रा की जाये तब नि:संदेह उसके जीवन में सुख और शांति के सूत्रों का आविर्भाव हो सके।

महानुभाव ! व्यक्ति की ये धारणा बन गयी है कि जिसके पास जितना ज्यादा धन है वह उतना ज्यादा सुखी है और जिसके पास ध न नहीं है वह उतना दु:खी है। किन्तु हमारे पूर्ववर्ती ऋषि, मुनि, अनुभवी साधक आचार्यों ने लिखा-पुण्य के उदय से व्यक्ति जंगल में पर्णकुटी में पड़ा हुआ भी सुख शांति का अनुभव करता है चाहे भले ही उसके शरीर पर एक धागा तक न हो। पाप के उदय में व्यक्ति रत्नों से निर्मित महल में तड़पता रहता है रोता है, वहाँ उसे सुख शांति नहीं मिलती। जब पाप का उदय होता है तो वह महल भी दु:खद होता है, पाप के उदय में स्वकीय जन भी दु:ख के कारण बन जाते हैं, प्रतिकूलतायें ही प्रतिकूलतायें लगती है।

धन जीवन में सुख दे सकेगा यह मूर्खों जैसी धारणायें हैं। क्योंकि धन के माध्यम से सुख नहीं मिलता, सुख मिलता है तुम्हारे पुण्य के माध्यम से। तुम्हारे पुण्य का उदय है तो, धन है तब भी ठीक, धन नहीं है तो भी ठीक, बिना धन के भी सुख मिलेगा। अल्पधन वाले भी सुखी होते हैं, बहुधन वाले भी सुखी हो सकते हैं और निर्धन भी सुखी हो सकते हैं। इसके विपरीत जो बहुत धनवान् है वह भी दु:खी हो सकता है, अल्पधनी भी दु:खी हो सकता है और निर्धन भी दु:खी हो सकता है। तो इससे सिद्ध ये हुआ कि धन दु:ख और सुख का कोई नियामक हेतु नहीं है। दु:ख-सुख के नियामक हेतु कुछ और हैं।

जिन व्यक्तियों की ये धारणा बनी है कि पैसे के माध्यम से हम सुखी हो जायेंगे तो उन्हें समझ लेना चाहिये कि ये धारणा उचित नहीं है। यह भ्रान्त धारणा है जो कि संसार में भटकाने वाली है। यह धारणा मन को बहलाने-फुसलाने वाली है, जैसे बच्चों को झुंझुना देकर बहला फुसला कर कोई काम कराना हो तो कराया जा सकता है ऐसे ही धन को झुंझुना की तरह व्यक्ति पकड़ कर बैठ गया है जैसे उसमें

आनंद आ रहा हो और अपने चेतना के निर्मल हीरे मोती को फेंक देते हैं। आप हम सभी जानते हैं कि धन के माध्यम से मात्र वस्तुयें खरीदी जाती हैं भाव नहीं खरीदे जाते। धन के माध्यम से हम वाहन खरीद सकते हैं किन्तु यात्रा का आनंद नहीं खरीद सकते हैं, धन के माध्यम से नौकर चाकर बनते हैं आत्मीय सेवक नहीं बनते, धन के माध्यम से चापलूसों की भीड़ लगायी जा सकती है किन्तु सच्चे मित्र नहीं बनाये जा सकते। धन कुछ देता है सब कुछ नहीं देता, किन्तु वह ध न कुछ देकर के सब कुछ लूट लेता है। इसलिये हमें सावधान रहना है कि उस धन के चक्कर में पड़कर सब कुछ लुटाना नहीं हैं।

कोई व्यक्ति आपको एक लॉटरी का टिकट देता है कहता है ये मैं आपको अपनी तरफ से देता हूँ। 5 रु. का टिकट आपको देकर उसने उसे खुलवा दिया 10 रु. मिल गये। फिर कहता है, तुम्हारे पास 10 रु. आ गये मेरे 5 रु. वापस कर दो, ये बचे 5 रु. फ्री के हैं इसका तुम दूसरा टिकट खरीद लो हो सकता है तुम्हारा अच्छा हो जाये, फिर टिकट खरीदवा दिया तो 50 रु. निकलवा दिये। फिर कहा देखो-तुमने दो टिकट खरीदे इससे पहले तुम्हारे पास कुछ नहीं था आज देखो 50 रु. हो गये। अब उस व्यक्ति के मन में लोभ जाग्रत हो गया वह टिकट खरीदता जाता है, सोचता है 100-200 टिकट खरीद लो कोई न कोई टिकट तो निकल ही आयेगा। उसने 50 रु. वह भी लगा दिये 500 रु. घर से भी लगा दिये, अब उसने 550 रु. लगा दिये वे 550 रु. तो चले ही गये, क्या मिलेगा, क्या नहीं मिलेगा हो सकता है कुछ भी न मिले। ऐसे ही धन हमें लोभ देकर के हमारी निजी सम्पत्ति को छीन लेता है। जो व्यक्ति धन के लोभ में आ जाते हैं वे व्यक्ति नि:संदेह अपने धर्म को नष्ट करने लग जाते हैं। क्योंकि नीतिकार कहते हैं 'ध न' शब्द का अर्थ ही यही है जो धर्म को नष्ट करके आत्मा पर हावी हो जाये वह धन कहलाता है। यद्यपि सच्चा धन वह होता है जो कभी

धर्म को नष्ट नहीं होने दे। वह सच्चा धन जैन शास्त्रों में कहा गया है-**''जिन गुण सम्पत्ति होदु मज्झं''** जिनेन्द्र भगवान् की गुण रूपी सम्पत्ति, मेरे आत्मा के गुण, मेरी चेतना का स्वभाव वही मेरा सच्चा धन सम्पत्ति है, बाहर की सम्पत्ति तो विपत्ति है।

किसी के पास यदि 10-20 करोड़ का धन हो गया, गाँव-देहात में रहता है तो भय से भरा रहता है। कहीं चोर बदमाश न आ जायें वे लूट न लें, मार न दें, तो वह रात में भी चैन से सो नहीं सकता। द्वार पर गेट कीपर खड़ा करके सोता है और जब इस पर भी उसे संतोष नहीं होता तो स्वयं भी अस्त्र-शस्त्र ले लेता है। जब पहले उसके पास इतना धन नहीं था तब जंगल में भी चैन की नींद सोता था किंतु आज उसे नींद की गोलियाँ खानी पड़ती हैं तब भी नींद नहीं आती। और आज उसके शरीर में चिंता के कारण अनेक रोगों ने अपना घर बना लिया है।

जो जोड़ता है उसे चिंता रहती है, जिसके पास संग्रह है उसे चिंता रहती है यह संग्रहवृत्ति ही चिंता की जनक है। जो व्यक्ति ध न कमाता जाये और अपने कार्य में व्यय करता जाये तो वह सुखी रहता है। कहता है आज भगवान ने दिया है इसलिये व्यय कर रहा हूँ, कल जब नहीं होगा तब वैसे रहेंगें। जो व्यक्ति यह कहता है कि आज भगवान ने दिया है आज खाऊँगा और बचा-बचा कर कल के लिये रखूँगा। जो कल के लिये बचा कर रखा है उसकी चिंता ज्यादा हो रही है कि कहीं वह चोरी न हो जाये, नष्ट न हो जाये। तुमने सोचा कि जब मेरे पाप कर्म का उदय आयेगा तब मेरा जमा धन मेरे काम आ जायेगा। तो भैया नहीं आ पायेगा क्योंकि पाप कर्म का उदय तुम्हारी आत्मा में हैं और धन का संग्रह तुम्हारी आत्मा से दूर है। तुम्हें सुख-दु:ख का वेदन आत्मा में विद्यमान वस्तु से होता है, पाप कर्म तुम्हारे आत्मा के प्रदेशों में दु:ख का वेदन कराने वाला होगा, बाहर की वस्तु से सुख नहीं मिलेगा।

159

कई बार जिस पदार्थ/व्यक्ति को देखकर मन आनंद से रंजायमान हो जाता है कभी-कभी पाप के उदय में उसी को देखकर इतना दु:ख होता है इतनी खीज आती है कि उसे एक क्षण भी आँखों के आगे देखना भी नहीं चाहते। तो ऐसा क्यों होता है? क्योंकि पाप कर्म का उदय है पहले पुण्य के उदय में उसी से आप सुख मान रहे थे। जो प्राणी आज धन में सुख मान रहे हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, वे बड़े भ्रम में जी रहे हैं। धन के पीछे ऐसे पागल नहीं होना है। जो धन के पीछे पागल हो गये हैं वे वास्तव में पागल हो गये हैं। क्योंकि धन के पीछे पागल होना बुद्धिमानी नहीं है यदि पागल होना है तो अपने चैतन्य धन के पीछे पागल हो जाओ, पागल होना है तो प्रभु परमात्मा की भक्ति में पागल हो जाओ। दुनिया की नजरों में तुम पागल हो जाओ किंतु अपने आत्मा के वैभव को बटोरने लग जाओ।

एक भिखारी था। वह भिखारी भीख माँगता था जब लोग उसे नोट देते थे तो वह नोट फेंक देता था। तो लोगों को बड़ा कौतुक हुआ, खेल जैसा कि वह पैसे (सिक्के) तो लेता है पर नोट नहीं लेता। लोग उसे नोट देते वह फेंक देता फिर लोग उसे सिक्का दे देते उसके साथ ऐसा खेल जैसा बन गया देखो-इसे नोट देकर तो देखो ये कैसे फैंक देता है। लोग समझ रहे हैं कि ये पागल है किंतु भिखारी समझ रहा है इन लोगों को मैं पागल बना रहा हूँ। क्योंकि यदि मैं नोट लेना प्रारंभ कर दूँगा तो एक व्यक्ति ही नोट देगा और कोई देगा ही नहीं अब क्योंकि मैं नोट फेंकता हूँ तो ये मेरा खेल बन गया, लोग मुझे चैक करने आते हैं कि नोट देते हैं तो फेंकता हूँ सिक्का रख लेता हूँ। ऐसा करते-करते मेरे पास हजारों सिक्के इकट्ठे हो गये।

ऐसे ही धन वाला व्यक्ति समझता है कि मैं दुनिया को पागल बना रहा हूँ किन्तु दुनिया समझ रही है कि वास्तव में जो धन में

पागल हो गया वही पागल है। इसीलिये व्यक्ति क्या करें?-वह उस धन से कार्य ले, वह धन जिस कार्य को करने में समर्थ है उस धन से वही कार्य ले। जूतों से काम हो सकता है पैरों की सुरक्षा। जूते कभी भी सिर को ढंकने के काम नहीं आयेंगें। तो कहने का आशय है ध न से वही काम लो जो सही हो, सेवक से सेवक का ही काम लो उस सेवक से स्वामी का काम न कराओ, उसे गद्दी पर मत बिठाओ। ऐसे ही धन को धन ही रहने दो उसे धर्म का चोला मत पहनाओ। ध न हमारी सुरक्षा कर सकता है जैसे बॉडी पर सुरक्षा कवच होता है वह उतना ही कार्य कर सकता है। धन रक्षा करने में बाह्य सुरक्षा कवच तो हो सकता है किन्तु प्राण चले जायें और बाह्य सुरक्षा कवच बना रहे तो बेकार है।

धर्म हमारे जीवन की श्वांस है जिससे जीया जाता है। धन तो सुरक्षा कवच है जो कभी-कभी आवश्यक होता है धन से जीवन नहीं जीया जाता। धन भी प्राप्त करना है तो उतना ही करो जो धन तुम्हें चिंता में न डाले। उतना ही प्राप्त करो जिसे प्राप्त कर मन में पाप न आये और जिससे दूसरों का व अपनों का हित कर सको। कवि-कबीर दास जी ने कहा-

सांई इतना दीजिये जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय॥

प्रभु से इतना धन माँगो कि मैं भी भूखा न रहूँ और मेरे द्वार पर आने वाला अतिथि भी भूखा न रहे। मैं प्रभु परमात्मा की भक्ति प्रार्थना कर सकूँ, मेरे मन में आये परोपकार के भाव पूर्ण हों, मुझे कभी दूसरों का मुँह न तांकना पड़े। भगवान् से प्रार्थना करो कि हे भगवान् ! जब आप मुझे धन दो, तो मुझे धन देने से पहले दान की प्रवृत्ति जरूर दे देना। मुझे ये भाव जरूर दे देना कि मेरे पास धन हो तो मेरे मुंह से कभी दान के लिये ना नहीं निकले, कोई मेरे पास

माँगने आये तो मैं उसे दे दूँ। यदि मैं ऐसा नहीं कर सकूँ तो मुझे ध न नहीं देना अन्यथा वह वरदान नहीं होगा अभिशाप होगा। यदि मुझे उस धन के सदुपयोग की कला ही नहीं तो वह मेरे लिये व्यर्थ होगा। आपने तलवार तो दी किन्तु चलाना नहीं सिखाया तो वह स्वयं का घात करने वाली हो जायेगी। ऐसे ही हे प्रभु ! वह धन भी मेरे लिये घातक हो जायेगा।

महानुभाव ! जिनके पास धन है और वे उसका सदुपयोग भी कर रहे हैं तो दुनिया वाले भी कहते हैं कि अमुक व्यक्ति सदैव सहयोग करने को तत्पर रहते हैं और जिसके पास नहीं है वह भावना भाते हैं कि यदि मेरे पास होता तो मैं तुम्हारी सहायता कर देता तो दुनिया भी उसके लिये भावना भाती है कि उसे धन मिल जाना चाहिये। यदि ध न होकर भी कोई उसका दुरूपयोग करता है तो दुनिया भी उससे जलती है और वह धन उसके स्वयं के लिये भी पाप बंध का कारण, दुर्गति का कारण बन जाता है। वर्तमान में भी वह धन चिंता, दु:ख व संक्लेशता का कारण बनता है साथ ही दूसरों के लिये भी अशुभ का निमित्त बनता है इसलिये भगवान से ऐसा धन मत मांगो।

आग लगे उस धन में उस धन पर बिजली टूट पड़े।
जिस धन के कारण खून बहे भाई-भाई में फूट पड़े॥

अरे ! वह धन नहीं चाहिये-**वा सोने को छोड़िये जासे छीजे कान** अरे ! वह सोना मुझे नहीं चाहिये जिसके पहनने से कान ही कट जाये अर्थात् जो आभूषण हमें नकटा बना दे वह हमें न चाहिये। वह धन हमें नहीं चाहिये जिस वैभव में हमें दुर्गति की प्राप्ति हो।

मूर्ख व्यक्ति, लोभी व्यक्ति ही कह सकता है कि मुझे धन चाहिये वह मदास नाम का व्यक्ति था जो लोभ में आकर कहता है मैं जिस वस्तु को चाहूँ वह सोना बन जाये। उसे महात्मा ने खूब

समझाया कि ऐसा वरदान मत माँग, तू उससे सुखी नहीं हो पायेगा किंतु वह नहीं माना कहने लगा नहीं महात्मा जी मैंने आपकी इतनी सेवा की और अब आप वरदान देने से कतरा रहे हैं। वह बोला-मुझे तो यही वरदान चाहिये। एक बार महात्मा ने पुनः कहा-सोच लो विचार कर लो किंतु वह नहीं माना तो महात्मा जी ने तथास्तु कह दिया। वह वरदान पाकर दौड़ा और जाकर सब लोहे की वस्तुयें छू ली सब स्वर्णमय हो गयीं। मकान छुआ वह भी स्वर्णमय हो गया, सब सोने-सोने का हो गया। इसके बाद भोजन करने बैठा जैसे ही पानी होंठों से लगाया वह भी सोने का हो गया, ग्रास छुआ वह भी सोने का हो गया। अब क्या करे? रोने लगा परेशान होकर दौड़कर पुनः महात्मा जी से क्षमा याचना करने आता है कहता है ये वरदान वापस ले लो, महात्मा जी ये तो अभिशाप है।

ऐसे ही धन को प्राप्त कर जो ठोकर खा लेते हैं तब वे कहते हैं धन माँगना अभिशाप है वरदान नहीं है इसलिये बड़े-बड़े राजा लोग धन का त्याग करके सन्यासी बन गये उन्होंने दरिद्रव्रत (वैदिक परम्परा में आता है) को स्वीकार कर लिया या अन्य भी कई धनवान् व्यक्ति धन को छोड़कर चले गये भगवान् के चरणों में और संलग्न हो गये उनकी भक्ति में। वे कहते हैं धन सम्पत्ति में सुख नहीं सुख तो प्रभु चरणों में है। वे साधारण जीवन जीते हैं उन्हें मालूम चल गया कि इन बाह्य चकाचौंध में सुख नहीं है। इसलिये धन की सार्थकता तो यही है कि सदुपयोग करो, परोपकार में लगा दिया तो ठीक अन्यथा आचार्यों ने कहा है-

'अत्थो अणत्थ मूलो' ये अर्थ अनर्थ का मूल है यदि आपने इसका सम्यक् उपयोग नहीं किया तो, और यदि सम्यक् उपयोग करने की कला आपके पास है तो अर्थ से परमार्थ की प्राप्ति भी हो सकती है। यदि कला नहीं है तो अर्थ तुम्हारे जीवन को व्यर्थ कर देगा तथा

अनर्थों के द्वार पर पहुँचा देगा। इसलिये धन कमाओ पर उतना ही जितना तुम्हारा पेट माँगता है। पेट से ज्यादा खा लोगे तो कब्ज हो जायेगी बीमार पड़ जाओगे अधिक भोजन संचय, मल संचय रोग का कारण है तो धन संचय भोग का कारण है। योगी भी यदि धन संचय कर ले तो उसके मन में भोग की वासना पैदा हो जायेगी। गृहस्थ भी धन संचय ज्यादा करे तो भोग की भावना ज्यादा बढ़ती चली जायेगी।

दूसरी बात वह धन संचय शोक का कारण है, पाप का कारण है जितना संचय करते जाओगे उतनी कषायें उत्तेजित होती चली जायेंगी इसलिए धन संचय हो तो उसे निकालते जाओ। पानी बरसे और बरसता हुआ बहता चला जाये वृक्षों में लग जाये तो वृक्ष हरे भरे रहेंगें और यदि पानी को संग्रह कर लोगे इसका उपयोग नहीं करोगे तो कालान्तर में उस पानी में जीव जन्तु पड़ जायेंगे पानी सड़ने लगेगा। ऐसे ही धन आता है आने दो और उसे सही मार्ग में खर्च भी करो।

पैसा जीवन में कैसा हो ? तो पैसा ऐसा हो जो तुम्हें सुगति में पहुँचा दे, तुम्हारे कल्याण के साथ-साथ अनेकों जीवों का कल्याण कर दे ऐसा पैसा ही अच्छा होता है। अन्य प्रकार का पैसा अच्छा नहीं होता है। दुनिया कहती है-कैसा भी हो बस पैसा हो। पर हम कहते हैं नहीं इसमें से कैसा शब्द निकाल दो। कैसा भी नहीं ऐसा हो जिसमें शुभ का लाभ हो अशुभ वाला लाभ नहीं चाहिये। इसलिये आप से यही कहना चाहते हैं कि आप न्याय मार्ग से पैसे का अर्जन करें जिससे आपका कल्याण हो सके।

आप सभी का कल्याण हो, शुभ हो, मंगल हो यही शुभ भावना रखते हुये अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

१८. अहिंसा परमो धर्मः

संसार के सभी प्राणी सुख और शान्ति के इच्छुक हैं। कोई भी प्राणी ऐसा नहीं जो दु:ख और अशान्ति चाहता हो और इस बात को भी सभी बाल-गोपाल जानते हैं कि जीवन में सुख और शान्ति की प्राप्ति धर्म से होगी। धर्म सुख शान्ति को देने वाला नियामक कारण है। जैसे सूर्य के उदय से प्रकाश होना नियामक है, पुष्प के खिलने से गंध का आना नियामक है, चन्द्रमा के उदय होते ही चाँदनी का फैलना नियामक है ऐसे ही यह एक ध्रुव सिद्धान्त है कि धर्म के बिना जीवन में कभी सुख शांति नहीं मिलती। जितना विश्वास आपको इस बात पर है कि सूर्य का उदय पूर्व दिशा से होता है यह सार्वभौमिक सत्य है उसी प्रकार यह भी सत्य है कि बिना धर्म के कभी भी किसी को, कहीं भी, किसी भी काल में सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

बात यह है कि धर्म है क्या चीज ? धर्म के संबंध में अनेकों विचारक, अनेकों मनीषी साहित्यकार, अनेकों धर्माचार्य, ऋषि, मुनि, संत, भदन्त, अर्हन्त, महन्त आदि अनेक प्रकार से शब्दों में विवेचना करते हैं। यद्यपि उनके शब्द अलग-अलग हैं किंतु शब्दों का भाव सबका एक है। धर्म क्या है इसके संबंध में एक शब्द में जानना चाहें तो इतना जान सकते हैं हमारी आत्मा का शुद्ध स्वभाव धर्म है। धर्म वह है जो रागद्वेष से रहित, कषाय से रहित आत्मा का सहज परिणाम है। किंतु वह सहज परिणाम प्राप्त कैसे हो ? उस सहज परिणाम को प्राप्त करने के लिये धर्म की अनेक व्याख्यायें अनेक शब्दों में, अनेक भाषाओं में, अनेक प्रकार के सूत्रों में करने का आचार्यों ने प्रयास किया, जिससे व्यक्ति उन परिभाषाओं को समझ सके।

जो व्यक्ति जिस भाषा को समझने वाला होता है उसे उसी भाषा में समझाना पड़ता है। जैसे एक लाख रुपया कहना है तो समझदार के

लिये कह दिया 1 लाख रु.। ना समझ जो लाख नहीं जानता उसके लिये कह दिया 100 हजार। अब किसी व्यक्ति को और अधिक समझाना है तो उसने कहा 100-100 के सौ नोट रख लिये तो दस हजार हो गये, ऐसे 100-100 के 100 नोट दस जगह रखो तो एक लाख हो जायेंगे। ऐसे ही जिस व्यक्ति की जितनी पात्रता है उसके अनुसार उसे व्यवहारिक धर्म का उपदेश दिया जाता है।

योगी के लिये स्वभाव को प्राप्त करने के लिये कहा कि आत्मध्यान तुम्हारा धर्म है। उसके पहले वाले साधकों के लिये कहा तपस्या करना तुम्हारा धर्म है, संयमी के लिये कहा संयम का पालन करना तुम्हारा धर्म है। इससे पहले मिथ्याभाषियों के लिये कहा-मिथ्या भाषण का त्यागकर सत्य बोलना ही तुम्हारा धर्म है। चोरी करने वालों के लिये कहा चोरी न करना ही तुम्हारा धर्म है। धर्म वह सब चीज है जिनके माध्यम से हम स्वभाव को प्राप्त कर लें। व्यवहार धर्म तो पगडंडी है। वे पगडंडियाँ नियामक नहीं हैं कभी कोई पगडंडी मिट भी सकती है, कोई नयी पगडंडी कभी बन भी सकती है किन्तु यथार्थता ये है कि हमें उस लक्ष्य तक पहुँचना है, उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये पगडंडी चाहे इधर से जाये या उधर से किन्तु पगडंडियों को पकड़कर बैठने से कभी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती जो व्यवहार धर्म का पालन करते हैं और व्यवहार धर्म में ही डूब कर रहना चाहते हैं वे भी निश्चय तक नहीं पहुँचते। मार्ग में बैठने से कभी मंजिल की प्राप्ति नहीं होती, समीचीन मार्ग में निरन्तर गमन करते रहने से मंजिल की प्राप्ति नियम से होती है।

महानुभाव ! उन्हीं धर्मों के बीच में शब्द और व्यवहार धर्म की भाषा है जिसे कहा:-'अहिंसा परमो धर्म:' यह महाभारत के कर्ता व्यास जी ने भी स्वीकार किया। इसके उपरांत यह अहिंसा शब्द वेदों में मुख्य रूप से प्रयोग हुआ, इसके साथ-साथ जिनशासन के चारों

अनुयोगों में अहिंसा को परमधर्म कहा। अन्य प्रकार से भी अहिंसा को धर्म माना। कोई उस शब्द अहिंसा को ज्यों की त्यों कहते रहे, किन्हीं ने अहिंसा के स्थान पर (जब व्यक्तियों को अहिंसा शब्द समझ नहीं आया) दया शब्द का प्रयोग करना शुरू किया, कहा गया दया धर्म का मूल है। कहीं कहने लगे-''धम्मो दया विसुद्धो'' कोई दया शब्द को और अधिक समझाने के लिये दया के स्थान पर शब्द प्रयोग करने लगे करुणा।

दया आदि शब्द क्रिया परक थे, करुणा भाव परक शब्द है। भावना की अपेक्षा से करुणा शब्द कहा जाने लगा। जब-जब भी दूसरे को दु:खी देखकर के तुम्हारा मन करुणा से भर जाये तो तुम समझो कि तुम धर्मात्मा हो। जिसके मन में करुणा का भाव नहीं आ रहा है तो वह अभी धर्म से दूर है चाहे भले ही अन्य धार्मिक कार्य भी करता है। इनके उपरान्त एक नया शब्द और प्रयोग में आया कि यदि दूसरों को देखकर के तुम्हारे हृदय में कम्पन होता है दु:ख के साथ-साथ हृदय कम्पायमान होता है तो समझो वह अनुकम्पा नामक गुण भी ध र्म है। फिर आया कि यदि तुम दूसरों का हित करने की भावना रखते हो तो वह कहलायी दया दृष्टि। फिर शब्द आया कृपा दृष्टि, फिर जिसके मन में करुणा-दया का भाव रहता है कहा गया 'रहम दिल'। तो ये शब्द अच्छे शब्द हैं धर्म के लिये प्रयोग किये जाने वाले शब्द हैं। फिर वे व्यक्ति जिनके पास इन सब शब्दों की व्याख्या नहीं थी तो उनके लिये सीधे-सीधे कहा कि एक दूसरे का उपकार करो ये ही धर्म है, परहित करना भी धर्म है।

महानुभाव ! संक्षेप में हम धर्म को इस प्रकार भी मान सकते हैं कि जो बात हमें अपने लिये अच्छी नहीं लगती, उसे दूसरों के लिये भी न करो, न सोचो। जो बात हमें अपने लिये अच्छी लगती है उसे दूसरों के लिये भी चाहो।

आत्मानां प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

आत्मा के प्रतिकूल जो चीजें हैं वैसा आचरण दूसरों के लिये भी नहीं करना चाहिये। मैं कटु शब्द सुनना नहीं चाहता तो मुझे कटु शब्द दूसरों के लिये नहीं बोलने चाहिये। मैं अपने शरीर में घात-प्रतिघात नहीं चाहता तो मुझे दूसरे के शरीर के साथ घात-प्रतिघात नहीं करना चाहिये। मैं अपने मन को दु:खी नहीं देखना चाहता तो मुझे किसी के मन को दुखित नहीं करना चाहिये। मैं चाहता हूँ कि लोग मेरे शरीर का भी सम्मान करें यहाँ तक कि मेरे शरीर से प्राण भी निकल जायें तब भी मेरे शरीर का सम्मान किया जाये क्षत-विक्षत न किया जाये तो हमें भी दूसरे के जीवित व मृत शरीर का मान सम्मान करना चाहिये ये भी धर्म है। मैं चाहता हूँ मेरा मन हमेशा प्रसन्नचित्त रहे तो मैं दूसरों के मन को प्रसन्नचित्त बनाये रखने का जो प्रयास रखता हूँ वह भी धर्म है। महानुभाव !

अहिंसा शब्द एक ऐसा व्यापक शब्द है जिसमें ये सभी सद्भाव आ जाते हैं। अहिंसा की सिद्धी के लिये ही सत्यव्रत का पालन किया जाता है, अहिंसा की सिद्धी के लिये अचौर्य व्रतादि का पालन किया जाता है और अहिंसा की सिद्धी के लिये ही अपरिग्रह और ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन किया जाता है। अहिंसा ही मूल धर्म है। ये चार व्रत उसके चार रक्षक हैं। उसकी समृद्धि करने वाले हैं कहीं किसी प्रकार से अहिंसा व्रत खण्डित न हो जाये। अहिंसा शब्द सर्वव्यापी है। क्योंकि अहिंसा की सत्ता वहाँ तक है जहाँ तक जीव की सत्ता है। यदि हमारे आत्मप्रदेशों में उतनी अहिंसा व्याप्त हो जाये तो हमारी आत्मा भी स्वभाव को प्राप्त कर लेगी। क्योंकि हमारी आत्मा में भी उतने ही प्रदेश है जितने प्रदेश लोकाकाश में है। हमारी आत्मा में उतने प्रदेश हैं जितने धर्म द्रव्य के प्रदेश हैं। उतने प्रदेश हैं जितने अधर्म द्रव्य के प्रदेश हैं, उतने ही प्रदेश हैं जितने काल द्रव्य के कालाणु में हैं

इसीलिये आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर अहिंसा का भाव विद्यमान हो। इसे समझाने के लिये कहा-कि हिंसा का अभाव ही अहिंसा है। अनादि काल से हमारे द्वारा हिंसा चल रही है मन से, वचन से, काय से, उस हिंसा का अभाव कर देना अहिंसा है। हिंसा का जितना अभाव होता चला जायेगा उतना-उतना अहिंसा का भाव हमारे अंदर आता चला जायेगा।

अहिंसा का प्रारंभ क्यों करना है ? क्यों प्राप्त करना है अहिंसा को? क्योंकि हिंसा एक पाप है, हिंसा दुष्कृत्य है, हिंसा एक कालिमा है, अभिशाप है, हिंसा दुर्गति का कारण है, हिंसा ही दु:ख है, दुरावस्था है। इन सबसे बचने के लिये इन सबका अभाव करना है। इसलिये एक हिंसा का अभाव कर दो क्योंकि हिंसा का अभाव होते ही अहिंसा आ जाती है। यह कैसे ? तो इसे समझने का प्रयास करें-:-

जैसे किसी फैक्ट्री में 50 मशीनें चल रही हैं। पचासों मशीनों में अलग-अलग काम हो रहा है और तभी मालिक ने कहा सभी काम को रोका जाये जो माल आया है वह खराब है। इसलिये काम को रोकने के लिये जहाँ मेन स्वीच था उसे ऑफ कर दिया गया तो सब मशीनें बंद हो गयी। ऐसे ही यदि हम अपने जीवन की प्रत्येक हिंसा को दूर करना चाहते हैं तो मेन स्वीच ऑफ करें। हमारे जीवन में हिंसा कहाँ-कहाँ हो सकती है। सब प्रकार से हिंसा हो रही है जो कि अनादि काल से चली आ रही है, उस हिंसा का अभाव करना है। हमारी आत्मा पर कर्म मल लगा हुआ है उस कर्म मल का अभाव ही अहिंसा है, हमारे मन में भरे दुर्भावों का अभाव ही अहिंसा है। हमारी जो वचन वर्गणायें अनर्गल, परशु, अनिष्ट, निष्ठुर, निन्द्य असत्य होती हैं उन सभी वचनों का अभाव ही अहिंसा है। अहिंसा मन से भी होती है वचन से भी होती है काय से भी होती है। जब हिंसा तीनों योगों

से होती है तब हिंसा आत्मा के प्रदेश तक पहुँच जाती है, इसलिये मन से भी हिंसा का त्याग करो, वचन से भी हिंसा का त्याग करो, काय से भी हिंसा का त्याग करो।

चार प्रकार की हिंसा मुख्यता से देखने में आती है। 'संकल्पी हिंसा' व्यक्ति निष्प्रयोजन संकल्प लेता है मैं उसे जीवित नहीं छोड़ूँगा। यह शब्द कह दिया तो हिंसा हो गयी, मन में भाव आ गया तो हिंसा हो गयी और शरीर से क्रिया कर रहा है तो हिंसा हो गयी।

यदि इस संकल्पी हिंसा से बच गये तो जीवन में आती है 'आरंभी हिंसा'। कोई गृहस्थ जब अपने दैनिक कार्य करता है तो उन्हें करते समय आरंभ कर रहा है, झाड़ू लगाना, पानी भरना, नहाना-धोना आदि कार्यों में हिंसा होती है। वे कार्य उसे आवश्यक हैं यदि न करे तो काम कैसे चले, तो ये उसके जीवन में आरंभी हिंसा होती है अथवा खेती, व्यापार वाहन आदि में हिंसा होती है किन्तु इस हिंसा में दुर्भावनायें कम हैं। जब संकल्प पूर्वक किसी को मारा जाता है तो उसके कषाय भाव ज्यादा है और भूल से यदि किसी जीव की हिंसा हो रही हो तो उसमें कषाय भाव की तीव्रता नहीं है इसलिये आरंभी हिंसा में पाप कम लगता है। आरंभी हिंसा संकल्प पूर्वक हिंसा के भाव से नहीं की जाती, सभी ने अपना-अपना कार्य किया उसमें यदि किसी जीव का कहीं घात हुआ तो उसमें कषाय का भाव कम होने से पाप का बंध भी कम होगा।

आरंभी हिंसा से बचे तो फिर तीसरी 'विरोधी हिंसा'। विरोधी हिंसा कैसी होती है?-तुम अपना काम कर रहे थे यकायक तुम पर कोई व्यक्ति वार करने आया और तुमने अपना बचाव किया बीच बचाव में उसकी हिंसा हो गयी उसका घात हो गया तो ये विरोधी हिंसा है। अथवा विरोध में अपशब्द बोले, मन में बुरा भाव आया तो ये सब विरोधी हिंसा है। अगली हिंसा होती है 'उद्योगी हिंसा'। जब

कोई उद्योग प्रारंभ करता है या फैक्ट्री लगाता है उसमें भी हिंसा होती है, उस हिंसा से भी बचना चाहिये। संकल्पी, उद्योगी, आरंभी, विरोधी इन चार प्रकार की हिंसा का जो त्याग करता है वह गृहस्थ जीवन में रह नहीं पाता, उसे सन्यास को स्वीकार करना पड़ता है। सन्यास स्वीकार करके भी वह जितना परिग्रह रखेगा हिंसा उतनी ज्यादा होगी किन्तु विरक्त होकर के वह जितना निष्परिग्रही होता चला जाता है और एकांत में बैठकर के ध्यान लगता है फिर किसी के प्रति राग-द्वेष की भावना भी नहीं रखता तो वह और अहिंसा के करीब पहुँचता चला जाता है।

अहिंसा हमारी आत्मा का ऐसा मूल भाव है जिसका कभी अभाव नहीं होता, हम किसी भी अवस्था में पहुँच जायें किन्तु अहिंसा का पूर्णता अभाव नहीं हो सकता, यदि अहिंसा का पूर्णतः अभाव हो जायेगा तो हमारे जीवत्व का ही अभाव हो जायेगा जैसे अग्नि में से कभी उष्णता का अभाव नहीं होता, यदि हो गया तो समझो अग्नि का ही अभाव हो जायेगा।

जल में से शीतलता का अभाव हो जाये तो जल का ही अभाव हो जायेगा। जल चाहे कितना भी उबल जाये किन्तु फिर भी उस उबलते जल में भी अग्नि को बुझाने की सामर्थ्य होती है। अग्नि कितनी भी ठंडी हो जाये किन्तु एक छोटी सी चिंगारी भी कहीं ईंधन में लग जाये तो स्वाहा हो जाये, ऐसे ही चाहे कोई भी संसारी जीव हो प्रत्येक जीव के चित्त में अहिंसा रहती है। जिस व्यक्ति के हजारों शत्रु होते हैं वह भी किसी न किसी पर तो दया-करुणा का भाव रखता है, अपने परिवारी जनों के प्रति, अपने मित्रों के प्रति, अपने शरीर के प्रति, यहाँ तक कि बहुत क्रूर हिंसक जानवर सिंह आदि भी कम से कम अपने बच्चों के प्रति तो अहिंसक होते हैं। तो किसी भी आत्मा में पूर्ण हिंसा कभी भी नहीं होती, उस आत्मा में अहिंसा का

किंचित वास तो रहता है। अहिंसा ज्यों-ज्यों हमारी आत्मा में बढ़ती चली जाती है त्यों-त्यों हम धर्म के निकट पहुँच जाते हैं और जिस प्राणी के चित्त में ज्यों-ज्यों हिंसा बढ़ती जाती है त्यों-त्यों प्राणी अपनी आत्मा से दूर होता चला जाता है, धर्म से दूर हो जाता है। आचार्य भगवन् गुणभद्र स्वामी जी ने आत्मानुशासन ग्रंथ में लिखा है-

धर्मोवसेन्मनसि यावदलं च तावद्,
हंता न हंतुरपि पश्य गतेऽथ तस्मिन्।
दृष्ट्वा परस्पर हति र्जनकात्मजानां,
रक्षा ततोऽस्य जगतः खलु धर्म एव॥

जब तक चित्त में धर्म व अहिंसा का भाव रहता है तब तक वह मारने वाले को भी नहीं मारता। कोई साधु सन्यासी ध्यान में बैठे हुये हैं कोई व्यक्ति उन पर उपसर्ग करे तो वे उनसे मार-पीट नहीं करते क्षमा कर देते हैं जब तक अहिंसा चित्त में रहती है तब तक मारने वाले को भी क्षमा कर दिया जाता है और जब चित्त में से अहिंसा निकल जाती है तो फिर आपस में जनक और आत्मज (पिता-पुत्र) भी एक दूसरे को नष्ट कर देते हैं। अहिंसा खत्म होते ही रक्षक भी भक्षक बन जाता है।

एक हंस पक्षी ने नदी में बहते हुये चूहे को अपने पंखों से उठाकर पार पर डाल दिया क्योंकि उसके मन में अहिंसा का भाव आया किन्तु जैसे ही चूहे को गर्मी मिली तो वह होश में आया और उसने हंस के पंखों को कतर डाला। जैसे ही शिकारी आया हंस ने उड़ना चाहा तो वह उड़ नहीं पाया पंख नीचे टपक गये वह हंस शिकारी का शिकार बन गया। चूहे के चित्त में अहिंसा नहीं थी हंस के चित्त में अहिंसा थी। जो व्यक्ति हमारा उपकार करने आया है यदि हमारे मन में अहिंसा का भाव है तब तो ठीक है यदि नहीं है तो उपकारी के साथ भी लोग अपकार करने से चूकते नहीं हैं।

महानुभाव ! इसलिये अहिंसा के बारे में आ. समन्तभद्र स्वामी जी ने कहा-'अहिंसा जगत जननी है।' जैसे माँ अपने बेटे की रक्षा अपने प्राणों को देकर भी करती है ऐसे ही अहिंसा संसार के प्रत्येक प्राणी के प्राणों की रक्षा करती है।

संसार में अहिंसा ही परम ब्रह्म है, ऐसा प्रत्येक प्राणी को विदित है। जो परम ब्रह्म को पाना चाहते हैं वे अहिंसा के द्वार में से निकल कर जाते हैं। सभी ग्रंथों का सार इतना ही है कि जीवन में अहिंसा हो। अहिंसा किसी व्यक्ति विशेष का धर्म नहीं है, किसी समुदाय, वर्ण, जाति का धर्म नहीं यह कोई ग्राम धर्म नहीं, कोई जिला-प्रान्त धर्म नहीं यह तो समस्त विश्व के प्राणी मात्र का धर्म है, तीनों लोकों में विद्यमान समस्त चराचर जीवों का धर्म है। इसे जो धारण करेगा वही सुख को प्राप्त करेगा जैसे कोई व्यक्ति मीठा खाता है तो मुख मीठा हो जाता है ऐसे ही जो कोई भी अहिंसा धर्म का पालन करेगा उसे नियम से सुख-शांति की प्राप्ति होगी। हिंसा जहर की तरह से है जो कोई इस जहर के प्याले को पीयेगा वह मृत्यु को प्राप्त होगा। हिंसा के साथ सम्पूर्ण दु:ख है अहिंसा के साथ सम्पूर्ण सुख है। आप स्वयं निर्णय करें कि आपको किसके साथ रहना है। अहिंसा के माध्यम से आपके चित्त में भी शांति होगी, विश्व में भी शांति होगी आप सभी अपनी शक्ति के अनुसार अहिंसा धर्म का पालन करें। आज बस इतना ही।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

१९. ''सुखद जीवन''

सुखद जीवन आपका बनें, हमारा बने सबका बने। दु:खद जीवन का इच्छुक कोई भी नहीं। प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है सुखद जीवन का भोग करना। दु:खद जीवन किसी भी आत्मा का स्वभाव नहीं। दु:खद जीवन किसी को स्वीकार भी नहीं है चाहे वह कोई भी हो, किन्तु सुखद जीवन हमारा बने कैसे ?

एक गृहस्थ क्या करे कि जिससे उसके जीवन में सुख और शांति मिले। उसके जीवन का उद्देश्य भी सुख को प्राप्त करना होता है, इसके लिये पुरुषार्थ भी करता है ऐड़ी चोटी तक पसीना भी बहाता है, कभी धन कमाता है, कभी यश कमाता है किन्तु ये सब कार्य करते-करते उसे बहुत कुछ तो मिलता है पर सुख नहीं मिलता है। जैसे कि कोई व्यक्ति कहे कि तुम्हारी गाड़ी कैसी है उसमें हॉर्न तो बजता नहीं वह बोला मेरी गाड़ी बहुत अच्छी है बस हॉर्न को छोड़कर बाकी सब बजता है। ऐसे ही जीवन में जो कुछ भी कार्य किये जाते हैं सुख को प्राप्त करने के लिये किये जाते हैं किन्तु वह सुख ही जीवन में नहीं मिल पाता बाकी सब कुछ मिल जाता है।

सब कुछ से आशय-चिंतायें मिल जाती हैं, अवसाद, तृष्णा, लालच, मायाचारी, मान, क्रोध, रोग, शोक-क्लेश आदि सब मिल जाते हैं। सुखद जीवन के लिये ज्यादा नहीं आज 4 बातों पर चर्चा करते हैं। ये बातें आप भी अपने जीवन में धारण करें वे बातें हैं-

पहली बात गृहस्थ के लिये-''**न्यायोपार्जित धन**''-वह धन का उपार्जन करे किन्तु न्याय पूर्वक करे। वह संकल्प ले ले कि अन्याय, अनीति, अत्याचार आदि के द्वारा अर्जित धन का मैं भोग नहीं करूँगा, उसे मैं ग्रहण नहीं करूँगा। जो व्यक्ति न्यायपूर्वक धन कमाता है उसे स्वयं प्रभु परमात्मा आकर भी दण्ड देना चाहे तो भी दे नहीं सकता।

उसके परिश्रम का एक पैसा भी कोई छीन नहीं सकता। उसका धन कभी डूबता नहीं है। जो न्यायपूर्वक धन कमाता है उसे कभी वकीलों की, पुलिस वालों की शरण नहीं लेनी पड़ती कभी किसी को रिश्वत नहीं देनी पड़ती। अन्यायपूर्वक जितना ज्यादा कमाओगे उतना ज्यादा तुम्हारा व्यर्थ में खर्च होगा। न्यायपूर्वक कमाये गये धन में संतोष, शांति सुख चैन पद-प्रतिष्ठा सब कुछ मिलेगा।

आज सरकार को भी न जाने क्या हो रहा है, इतने घृणित कार्य से धन का संग्रह कर रही है, पशुओं को बेच रही है। अरे ! पहले के शासक तो ऐसे होते थे कि अपने देश से रत्नों के खजाने भेजते थे, सोने चाँदी का व्यापार करते थे ये सब तो समझ में आता था और भी अन्य सामग्री का उत्पादन कर बेचकर धन कमाना तो समझ में आता था किंतु ये कहाँ की बुद्धिमानी है कि अपने देश के पशु पक्षियों को मार-मार कर माँस बेचा जाये वो भी धन कमाने के लिये। आज यदि पशु-पक्षियों को मार-मार कर माँस बेचा जायेगा तो कल कहीं ऐसा न हो जाये कोई भ्रष्ट हो जाये और मनुष्यों को काट-काट कर उनका ही मांस न बेच दिया जाये।

अरे क्या ये धन सुख दे पायेगा। सरकार को सोचना चाहिये उसे ध्यान रखना चाहिये कि ऐसे धन से कभी देश में शांति नहीं होगी। यदि ऐसे धन कमाया गया तो यह धन कभी बाढ़ आने पर या कभी सूखा पड़ने पर, कभी अकाल पड़ जायेगा तब काम में आयेगा, वह धन सुख शांति के लिये काम में नहीं आयेगा। जिनका माँस बेचा है उनकी हाय खाली नहीं जायेगी, इस बात को अच्छी तरह से सोच लो। किसी का गला घोट कर कोई शान्ति से नहीं बैठ सकता। किसी के माँस की बोटी-बोटी खा करके कोई चैन की रोटी नहीं खा सकता। चैन की रोटी खाने के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति दूसरों को भी चैन से जीने दे, दूसरों के चैन में खलल न डाले।

तो सबसे पहली शर्त है सुखद जीवन जीने के लिए-''न्यायपूर्वक धन कमाने का संकल्प लें। चाहे उसकी न्यायपूर्वक एक रु. की आमदनी हो, चाहे 10 की 100 की या 1000 की किंतु न्यायपूर्वक कमाये। तभी वह अपने 1-1 पैसे का उपभोग, भोग, सदुपयोग कर सकता है। जिस धन से भोग उपभोग नहीं कर सकता समझ लेना उसने कहीं न कहीं बेईमानी की है और बेईमानी का धन तो पानी में चला जाता है।

एक ग्वालिन गाँव से दूध लाती थी, दूसरे गाँव में बेचती थी। मार्ग में एक नदी पड़ती थी, वह ग्वालिन उस नदी में से पानी लेकर अपने दूध में मिलाती थी। 10 किलो दूध का 13-16 किलो दूध बना लेती थी और बेचकर आती थी। उसने इस तरह से धन कमा लिया, उसे लग रहा है मैंने दूध के साथ-साथ पानी भी बेच दिया, वह बहुत खुश हो रही थी कि मैंने पानी से पैसा कमा लिया। और उन पैसों को इकट्ठा कर एक सोने की नथ बनवायी। एक दिन उस नथ को पहनकर नदी पार कर रही थी, दूध भी साथ में था, वह नदी में झाँक रही थी तभी एक बंदर पेड़ से उछल कर आया और उसकी नाक पर झपटा मारा जिससे उसकी नथ नदी में गिर गयी और नाक भी कट गयी। तभी जो व्यक्ति उसके साथ नाव में बैठे थे वो कहने लगे अरे तू कहती थी मैंने पानी से पैसा कमाया है। देख **''पानी का धन पानी में, नाक कटी बेईमानी में।''**

जिन्होंने पानी से कमाया तो उसका धन पानी में ही चला गया। जिन्होंने सुनामी लहरों में गंवा दिया, उन्होंने समुद्र से कमाया तो समुद्र में ही गंवा दिया। जो जिसको खाता है वह उसको खा जाता है। कहने का आशय यह है जीवन में सदैव ख्याल रखो न्यायपूर्वक कमाने वाला व्यक्ति सदैव संतुष्ट व सुखी रहता है। जिसने ईमानदारी से पैसा कमाया है, बेईमानी का एक पैसा तो क्या हजारवाँ, लाखवाँ हिस्सा

भी स्वीकार नहीं किया ऐसा व्यक्ति अपने धन को चौराहे पर डाल दे तो भी उसके धन को कोई उठा कर ले जा नहीं सकता। कोई व्यक्ति वहाँ से गुजरेगा तो उसे दिखेगा नहीं आँखों में अंधेरा छा जायेगा या दिख भी जायेगा तो उठायेगा नहीं और उठायेगा भी तो तुम्हारे घर वह धन देने के लिये आयेगा किन्तु वह उसे भोग नहीं सकता। यदि धन अपने घर ले गया तो रात्रि में ही उसे स्वप्न आ जायेगा कि ये धन अमुक व्यक्ति का है प्रातः उसे देकर आना। तो सबसे पहली शर्त है न्यायपूर्वक धनार्जन।

इसलिये कोई शासक हो, सद्गृहस्थ हो, शासन-प्रशासन कोई भी हो इस बात को संकल्पपूर्वक प्रैक्टीकल करके देखे। हाँ यह बात भी सही है कि ईमानदारी से कमाने पर प्रारंभ में कुछ प्रतिकूलताओं का सामना भी करना पड़ सकता है लोग कहते हैं महाराज कहाँ तक हम अपनी ईमानदारी का परिचय दें संसार में बेईमान बहुत भरे पड़े हैं। तुम बेईमान हो इसलियें तुम्हें सब बेईमान दिखाई देते हैं। आज भी दुनियाँ ईमानदारों से खाली नहीं है, तुम्ही स्वयं को ईमानदार बना कर देखो तो बहुत ईमानदार दिखायी देंगे। अभी तुम्हारे मन में बेईमानी भरी है, इसीलिये सब बेईमान दिखाई दे रहे हैं। जब तुम्हारा चित्त निष्पक्ष न्याय करना सीख जायेगा तब तुम ही कहोगे कि दुनियाँ में सर्वत्र न्याय ही न्याय भरा पड़ा है अन्याय तो कहीं है ही नहीं।

न्यायोपार्जन सद्गृहस्थ की सबसे पहली शर्त है। वह भगवान की सेवा पूजा, तीर्थयात्रा बाद में करे सबसे पहले उसका धर्म व कर्त्तव्य बस इतना ही है कि यदि सुख की नींव जीवन में भरना है तो मैं न्यायपूर्वक धन कमाऊँगा ऐसा करने पर उसका खजाना कभी भी खाली नहीं होता। उसे अपने जीवन में कभी भी भीख नहीं माँगनी पड़ेगी क्योंकि न्यायपूर्वक कमाने वाले तो देवता के समान सम्मानीय व पूज्यनीय होते हैं।

दूसरी शर्त है सद्गृहस्थ को सुखद जीवन बनाने के लिये **'मर्यादा पूर्वक भोग'**

वह न्यायपूर्वक कमाये हुये धन का भोग-उपभोग मर्यादा पूर्वक करे। अपने जीवन में कभी मर्यादाओं का उल्लंघन न करे। मर्यादा की रक्षा करते हुये भोग उपभोग करे। ऐसा न हो कि उस धन के माध्यम से किसी को कष्ट देने लग जाये, किसी को नीचा दिखाने लग जाये, किसी को तिरस्कृत करे ये सब उसको उचित नहीं। मर्यादा तो हमेशा हमारी सुरक्षा करने वाली होती है जो मर्यादा के बाहर चला गया उसकी रक्षा कौन करेगा? भगवान् भी उसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं होता अत: अपने आपे में रहो।

योगी भी अपने आपे में रहता है अर्थात् अपनी आत्मा में रहता है, संयमी अपने संयम में रहता है, गाड़ी अपने आपे में (ब्रेक) है तो ठीक अन्यथा एक्सीड़ेंट हो जाता है। घोड़े पर लगाम, हाथी पर अंकुश सब मर्यादा के लिये है, इसलिये जहाँ भी हो वहाँ मर्यादा का पालन करो। बहू बेटियाँ हैं तो अपने घर की मान-मर्यादा है। भोज्य सामग्रियों की भी मर्यादा है। जिसकी जितनी मर्यादा है उसके अंदर रहो तभी तुम सुरक्षित हो।

वैदिक परम्परा में कहा जाता है-सीता जब तक लक्ष्मण रेखा के अंदर थी तब तक सुरक्षित थी, मर्यादा का जैसे ही उल्लंघन किया वैसे ही उसका अपहरण हो गया। मर्यादा का उल्लंघन करने पर जीवन में पग-पग पर दु:ख आते हैं संकट आपत्ति-विपत्ति आती है। मर्यादा है तुम्हारी एक बार भोजन करने की तो एक बार करो, दो बार की है तो दो बार करो किन्तु उस पेट की सीमा है मर्यादा है कि उसे कितना अन्न देना है, कितना जल देना है, कितना स्वास्थ्य के लिये खाली रखना है सबकी मर्यादा है। घर में भी छोटो की मर्यादा अलग है, वृद्धों की मर्यादा अलग है, भक्त और भगवान् की भी एक मर्यादा होती है।

जो मर्यादा का पालन करते हैं उनकी निगाह कभी नीची नहीं होती, जो मर्यादा का उल्लंघन करते हैं वे लज्जा के कारण जमीन में गढ़ जाते हैं।

तीसरी बात है-**''उदारता पूर्वक दान''**

दान तो दो किन्तु दान देने में उदारता का भाव रखो। जब दान देने बैठे हैं तो कंजूसी नहीं, कहीं हृदय नहीं सिकुड़ जाये, यदि हृदय सिकुड़ता है तो हाथ सिकुड़ जाते हैं। यदि हृदय में उदारता नहीं होती तो फिर हाथ देते समय काँपते हैं और यहाँ तक कि दूसरा व्यक्ति यदि अपनी वस्तु तुम्हारे हाथ से दिलवाना चाहता हो तो भी तुम दूसरे की वस्तु अपने हाथ से दे नहीं पाओगे यदि तुम्हारे हृदय में उदारता नहीं है।

जब उदारता का भाव नहीं होता है तब यदि घर में दो सदस्य हों और भोजन 4 का भी बना रखा हो और द्वार पर कोई भिखारी आ जाये तो वह उदारहीन व्यक्ति उस भिखारी को भी यह कहकर भगा देता है कि कुछ नहीं बना रखा और वहीं जिनके चित्त में उदारता है ऐसा व्यक्ति अपनी थाली का भोजन भी सामने वाले को खिलाना चाहता है। उदारता का भाव सदैव देने का भाव रखता है लेने का मन में अभाव रहता है। एक बात ध्यान रखना जिसकी रसोई में उदारता का परिचय दिया जाता है उसकी रसोई में कभी अन्न की कमी नहीं आती और जिसकी रसोई में कंजूसी का भाव रखा जाता है उसके घर में अन्न की कितनी भी पूर्ति की जाये किन्तु उनकी क्षुधा कभी शांत नहीं होती। उसका पेट शुद्ध नहीं रहता उसके पेट में बीमारी और बेईमानी दोनों पैदा होने लगती है इसलिये खान पान को शुद्ध रखो।

शुद्धता के साथ-साथ उदारता का परिचय दो। जिसे भी अपनी रसोई में भोजन करा रहे हो चाहे वह तुम्हारा पुत्र हो, पिता हो, पति

हो, साधु हो, भिक्षु हो कोई भी हो उस समय यह भाव रखो कि ये एक रोटी और ज्यादा खा ले, कभी ये भाव न लाओ कि एक रोटी कम खाये तो बहुत अच्छा। अन्नपूर्णा देवी का मंदिर तभी भरता है जब उदारता पूर्वक सबको खिलाया जाता है। उदारता पूर्वक अन्नदान दो, चाहे ज्ञान दान दो, चाहे औषधिदान दो, चाहे अभयदान दो चाहे और किसी प्रकार का दान दो पर दो उदारता पूर्वक। इतनी सद्हृदयता से दो कि उस दान के साथ तुम्हारी भावनायें भी साथ में जाना चाहिये। किसी मजबूरी में, किसी प्रलोभन में, किसी भय में या किसी दिखावे के लिये दान दे रहे हो तो फिर भावनायें शुद्ध नहीं हो पाती भावनायें दूषित व कुत्सित हो जाती है।

चौथी बात सुखद जीवन बनाने के लिये कही-**बिना विचारे सर्वस्व समर्पण।** जीवन के अंत में कल्याण की भावना हो। आपने अपना गृहस्थ जीवन जीया अब आपने बहुत अनुभव प्राप्त कर लिये। बचपन को भी देखा, जवानी भी देखी, मनमानी भी की, सब अवस्था देखी अब आप वृद्ध हो रहे हैं तो बुद्ध बनने की भी कोशिश करो। बुद्ध बनने की पहली सीढ़ी है कि जो कुछ भी तुमने पाया है वह गंवाना तो तुम्हें है ही छोड़कर तो जाना ही है, जब तुम्हारे प्राण निकलें उसके बाद तुम्हारे शरीर से कपड़े छीने जायें इससे अच्छा है कि तुम उन्हें छोड़ने का भाव पहले ही अपने मन में ले आओ। तुम्हारे प्राण निकलें लोग तुम्हें पलंग से नीचे उतारें, घर के बाहर निकालें उससे अच्छी बात ये है तुम स्वयं ही बुद्धि पूर्वक अपने धन को अच्छे कार्य में लगा दो। धर्म के कार्य में, उपकार में लगा दो सब कुछ छोड़ दो सोचो मत।

अच्छे कार्य में तुम अपने हाथ से नहीं लगा पा रहे हो तुम्हें समय नहीं है तो एक दिन यहीं छोड़कर चले जाओगे इसलिये बिना विचारे छोड़ दो। बाद में विचार नहीं करना कि मैं यह छोड़कर आया कि वह

छोड़कर आया। क्योंकि जो बिना विचारे सर्वस्व त्याग कर देता है वही सन्यास को प्राप्त करने में समर्थ होता है। वही सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान और संयम को प्राप्त करने में समर्थ होता है, वही समाधि को प्राप्त करने में समर्थ होता है। जो बिना विचारे सर्वस्व त्याग करने में समर्थ होता है वही व्यक्ति परमात्मा की सच्ची इबादत कर पाता है वही परमार्थ भक्ति करने का सही आनंद ले पाता है और जब तक वह त्याग नहीं करेगा, सर्वस्व त्याग नही करेगा तब तक उसे सर्वस्व आनंद की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि बाह्य परिग्रह हमारे सर्वानंद में बाधक है। बाह्य परिग्रह जो हमने अर्जित किया है उनके प्रति हमारे मन में राग भी हो सकता है, द्वेष भी हो सकता है, मोह भी हो सकता है।

यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो क्या वे अगले भव में अपनी पिछले भव की सम्पत्ति की याद करते हैं क्या? कहाँ गयी कैसे क्या हुआ? ऐसे ही सन्यास उसी का नाम है जैसे वह जीवन तो अलग हो गया, उस जीवन की तो मृत्यु हो गयी। अब तो मेरा नाम भी बदल गया, मेरा पता ठिकाना भी बदल गया, मैं पूरा बदल गया इसलिये जो छोड़ दिया वो छोड़ दिया उसे पीछे मुड़कर ही नहीं देखना, उसकी चर्चा ही नहीं करना क्या हुआ, क्या नहीं हुआ बस बिना विचारे सब कुछ छोड़कर आ जाओ तो सन्यास को उपलब्ध हो जाओगे, वहीं तुम्हारी समाधि लग जायेगी। यदि थोड़ा-थोड़ा विचार कर कुछ-कुछ छोड़ोगे ऐसे बनिया बुद्धि से त्याग करने वाला व्यक्ति सहज समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता उसकी बुद्धि तर्कों में भटकती रहती है। उसकी बुद्धि गणित के सवाल करती रहती है सहज समाधि के लिये गणित की नहीं सहज समर्पण की आवश्यकता है, सहज त्याग की, सहज वैराग्य की आवश्यकता है। सहज धर्मध्यान, संयम से ही सहज समाधि होती है, वह सहज समाधि ही वास्तव में सही समाधि है।

समाधि का रूप बनाकर बैठने से समाधि नहीं होती जैसे कोई गधा शेर की खाल पहनकर शेर नहीं बन जाता ऐसे ही समाधि की मुद्रा बनाकर पैर पर पैर, हाथ पर हाथ रखकर कोई बैठ जाये तो मात्र इतने से समाधि नहीं। सहजता में जो ढल जाता है समाधि वही कर पाता है। इसलिये जीवन में अंत में यह आत्मा इस शरीर को छोड़े इसके पहले तुम सब कुछ छोड़ कर के बिल्कुल निर्द्वन्द हो जाओ। बाहर से भी सब त्याग, अंदर से भी सब त्याग। तुम सहज समाधि को प्राप्त कर लोगे तभी सहज सुख शांति मिलेगी।

यही चार मुख्य सूत्र हैं सुखद जीवन के। 1. न्यायपूर्वक ध नोपार्जन 2. मर्यादा पूर्वक भोग और उपभोग 3. उदारता पूर्व सत्पात्रों को दिया गया दान 4. बिना विचारे सब कुछ त्याग कर देना और सन्यास को उपलब्ध हो जाना ये सुखद जीवन के चार आयाम हैं। आप सभी लोग उन्हें अपने जीवन में स्वीकार करें और अपना कल्याण करें, अपना जीवन सुखद बनायें इन्हीं सद्भावनाओं के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

२०. समय

समय है क्या चीज ? पहला समय के मायने होता है-'काल', समय के मायने दूसरा होता है-'मत' या शासन। समय के मायने 'ध र्म' भी होता है। समय के मायने आत्मा भी होती है। समय के कई अर्थ हैं। हमें किस प्रकार, किस समय क्या करना चाहिये। पहले हम काल के मायने में समय की व्याख्या करके देखें:-

जो व्यक्ति अपने जीवन में समय का सदुपयोग नहीं कर सकता वह व्यक्ति कभी अपने जीवन को महान नहीं बना सकता। समय ही जीवन है। इस माँस हाड के पिण्ड का नाम जीवन नहीं, ये तो मृत पुद्गल है। किन्तु जो समय है वह जीवन है जैसे किसी ने पूछा उसका जीवन कितना रहा तो ये नहीं कहते कि उसका जीवन 6 फिट या 3 फिट का था, ये नहीं कहते कि उसका जीवन 72 कि. था और ये नहीं कहते उसका जीवन गोरा व सुंदर था उसका जीवन कितना था तो न तो जीवन वजन से देखा जाता है, न लम्बाई चौड़ाई से देखा जाता है, न छवि व सुन्दरता से देखा जाता है न गौर और श्याम वर्ण से देखा जाता है जीवन का यदि माप किया जाता है तो वह सिर्फ और सिर्फ समय के माध्यम से किया जाता है। कि उसका जीवन काल इतने समय से इतने समय तक रहा।

समय ही जीवन है। समय का सही सदुपयोग जीवन का सही सदुपयोग है, समय का दुरुपयोग जीवन का दुरुपयोग है। समय की बर्बादी जीवन की बर्बादी है। समय का जो समुचित ध्यान रखते हैं तो समय भी उनका ध्यान रखता है, जो समय के साथ लापरवाही बरतते हैं समय भी उनके साथ लापरवाही बरतता है। जब समय बाल्यकाल का था, तब बाल्यकाल के समय में वह कार्य कर लेना चाहिये जो कार्य बाल्यकाल में करने योग्य था। यौवन काल के समय में वह कार्य कर लेना चाहिये था जो यौवन काल में करने के योग्य था।

किशोरावस्था में वह कार्य करना जरूरी था जो उस समय के योग्य था, प्रौढ़ावस्था में प्रौढ़ावस्था का कार्य व वृद्ध अवस्था में वृद्धावस्था के योग्य कार्य करना शोभा देता है। जैसे व्यक्ति अपनी दिनचर्या का टाईम टेबल बनाता है-सोने का, उठने का, पूजन का, माता-पिता की सेवा का, व्यवसाय का, दुकान का, पढ़ाई का आदि-आदि दैनिक क्रियाओं का समय नियत करता है। जो अपने दिन का सदुपयोग करता है जिसका जो समय निर्धारित है उस समय वह वही कार्य करता है ऐसे व्यक्ति से अपेक्षा की जा सकती है कि वह अपने जीवन का भी सही सदुपयोग कर सकता है अन्यथा वह जीवन के साथ खिलवाड़ करके जीवन को बर्बाद कर देगा।

समय पर किया गया कार्य नि:संदेह अच्छा फल देने वाला होता है। व्यक्ति नाश्ता प्रात: जल्दी करता है यदि उसी नाश्ते को वह दोपहर तीन बजे करे तो ? आप ही कहेंगे ये कोई नाश्ते का समय है क्या। जो प्रात:काल टहलने जाता है यदि प्रात:काल का समय छोड़ वह दोपहर 12 से 1 का टाईम घूमने का कर ले इस बीच यदि कोई पूछे कहाँ जा रहे हो-वह कहे मार्निंग वॉक के लिये। तो कहा जायेगा कहीं पागल तो नहीं हो गये, भरी दोपहरी में मार्निंग वॉक कहाँ से आ गयी अब तो थोड़ी देर बाद ईवनिंग वॉक की बात कहना। यदि जो समय रात्रि में विश्राम करने का है उस समय कोई व्यक्ति कहे मैं खेलने के लिये जा रहा हूँ तो कहेंगे-ये समय खेलने का नहीं है। तो हर काम के लिये समय अलग-अलग होता है। प्रकृति ने भी जो मानव शरीर दिया है उस मानव शरीर को प्राप्त करके हमें जिस समय जो उचित कार्य है वह करना ही चाहिये नहीं तो हमें उसका फल प्राप्त नहीं होगा।

महानुभाव ! समय का दूसरा अर्थ होता है-जिसे कहते हैं 'मत' स्व समय-पर समय। स्वसमय का आशय होता है अपना मत, पर समय-दूसरों का मत। स्वसमय अर्थात् वह समय जिसके माध्यम से आत्मा का हित हो। पर समय से आशय पुद्गल का समय, पर द्रव्यों

का समय। जो आत्मा का समय है उस आत्मा के समय के माध्यम से हम अपनी आत्मा को पहचानने का कार्य करें। किन्तु ऐसे-कैसे कार्य करेंगे। तो समय का तीसरा अर्थ होता है-'जिनवाणी' धर्मग्रंथों के माध्यम से अध्ययन करके अपनी आत्मा को जाना जा सकता है आत्मा को पहचाना जा सकता है।

जब तक कोई भी व्यक्ति सद् शास्त्रों का अध्ययन नहीं करता है, सम्यग्ज्ञान को अपने चित्त पर आरोपित नहीं करता है तब तक वह अपनी आत्मा को जानने में समर्थ नहीं हो सकता। अपनी आत्मा अर्थात् समय का अंतिम अर्थ-'आत्मा' है उस आत्मा को जानना चाहता है समझना चाहता है, उसे शुद्ध करना चाहता है तो सबसे पहले शास्त्रों का सहारा लेना पड़ता है। दूसरी बात समीचीन रूप से आत्मा का कथन करने वाले उस 'मत' का सहारा लेना पड़ता है। जिस मत में आत्मा का कथन ही नहीं है, आत्मा का मिथ्या कथन है अथवा आत्मा के धर्म गुण स्वभाव का कथन ही नहीं है, कुभावों का कथन है उस मत से आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति नहीं हो सकती। आत्मा को जानने के लिये समीचीन शास्त्र, समीचीन मत का सहारा लेना होता है और पुनः इसके साथ-साथ चाहिये व्यवहार समय (काल)। इन चारों के अनुसार ही आत्मा को शुद्ध बनाने में व्यक्ति समर्थ हो सकता है।

वर्तमान काल में व्यक्ति सबसे अधिक समय का दुरुपयोग करता है, साथ ही सबसे यही कहता है कि मेरे पास समय नहीं। भाई ! किसके लिये समय नहीं है तुम्हारे पास। क्या अभी समय छोटा पड़ गया है? पहले भी दिन-रात में 24 घंटे होते थे आज भी 1 दिन-रात में 24 घंटे होते हैं। कल भी 1 दिन-रात में 24 घंटे होंगे। जब घंटे कम नहीं हुये पहले इन्हीं 24 घंटे में व्यक्ति अपने सभी कार्य कर लेता था, दैनिक कार्य भी करता था, धनोपार्जन भी करता था, धर्म का कार्य भी

करता था, समाज सेवा का कार्य भी करता था और अपने परिवार के प्रति जो कर्त्तव्य थे उनका भी पालन करता था और शरीर को स्वस्थ रखने के लिये व्यायाम, योगा आदि भी करता था सब कुछ कार्य कर लेता था, समय तो 24 घंटे का ही था अब क्या हुआ?

भईया ! जब तुम्हारे पास समय नहीं है तो ये भी बताओ कि तुम्हारे पास काम क्या है। तो कहोगे-क्या बतायें काम तो मेरे पास कुछ भी नहीं है। क्यों तुम्हारी दुकान बहुत ज्यादा चलती है क्या? नहीं दुकान पर ग्राहक बड़ी मुश्किल से आता है। ऑफिस में ज्यादा काम है क्या? नहीं ऐसी भी बात नहीं है। तो क्या घर की जिम्मेदारी ज्यादा आ गयी क्या? नहीं ऐसी भी कोई बात नहीं। फिर तुम्हारे पास समय क्यों नहीं है? क्योंकि तुमने समय को अभी पहचाना नहीं। जो व्यक्ति समय को नहीं पहचानता है उस व्यक्ति को समय भी कभी नहीं पहचानता है। जिस व्यक्ति ने समय की जितनी ज्यादा कीमत की है समय ने उस व्यक्ति को उतना ज्यादा कीमती बना दिया है। अत: समय का दुरुपयोग करना छोड़ो।

आजकल सामान्य बोलचाल की भाषा चल गयी है। किसी से पूछो-क्या कर रहे हो? वे कहते हैं कुछ नहीं समय काट रहे हैं। क्यों भईया तुम्हारे पास ऐसी कोई आरी है क्या जिससे तुम समय को काट दो। समय क्या किसी वृक्ष की शाखा है जो समय को काट दो। क्या कहने जा रहे हो कभी सोचा है क्या? अरे ! तुम समय को क्या काटोगे वह समय रूपी काल का कुल्हाड़ा तुम्हारी आयु रूपी शाखा को निरंतर काट रहा है, तुम्हारी जिंदगी को काट रहा है। तुम समय को नहीं वरन् वह समय तुम्हारे जीवन को काट रहा है। तुम समय को नहीं अपनी जिंदगी को बर्बाद कर रहे हो। तो कट क्या रही है? समय नहीं तुम्हारी जिंदगी।

महानुभाव ! ये जिंदगी काटने के लिये नहीं है, जिंदगी कोई खिलवाड़ की चीज नहीं है जिंदगी तो सम्मान की चीज है वह एक

ऐसा सुअवसर है जिसे प्राप्त कर व्यक्ति अपनी आत्मा को परमात्मा बना सकता है, आदर्श स्थापित कर सकता है। वह युग के लिये एक श्रेष्ठ पुरुष हो सकता है, युग परिवर्तक हो सकता है। अरे समय तुम्हारी ओर निहार रहा है तुम समय की ओर क्यों नहीं निहार रहे हो। समय तुमसे कुछ चाहता है, वह तुम्हें कुछ बनाना चाहता है तुम क्यों समय को नहीं देख रहे। तुम समय को नजर अंदाज कर देते हो और जब समय निकल जाता है तब पश्चाताप करते हो, इससे क्या होने वाला है। समय तुम्हारे पश्चाताप करने से लौटकर आने वाला नहीं है। जो समय निकल गया सो निकल गया। समय तो नदी में बहने वाली नदी की धार है जो एक बार पानी आकर बह गया वह लौटकर नहीं आयेगा, पर्वत से गिरता हुआ झरना नीचे गिर जाता है वह पानी की बूंद जो नीचे गिर गयी वह अब चढ़कर के ऊपर जाने वाली नहीं है।

''सूरज चाँद छिपे निकले ऋतु फिर-फिर कर आवे।
प्यारी आयु ऐसे बीते पता नहीं पावे॥
पर्वत पतित नदी सरिता जल बहकर नहीं हटता।
श्वांस चलत ज्यों घटे काठ त्यों आरे सो कटता॥

जैसे आरे से लकड़ी को काटा जाता है ऐसे ही श्वांस का आरा तुम्हारे जीवन रूपी शाखा को काटने में लगा है।

महानुभाव ! समय आपके हीरे-मोती आदि रत्नों से भी अधिक मूल्यवान् है। कितना मूल्यवान् है उसे हम शब्दों में नहीं कह सकते। क्यों? क्योंकि यदि कोई व्यक्ति करोड़ों अरबों खरबों असंख्यात रत्नों के थाल भर करके भेंट करे और जीवन के अंतिम क्षण में कहे कि मुझे चार क्षण और दे दो तो कोई उसे चार क्षण दे नहीं सकता। आयु रूपी शाखा जब कट जाती है तो चार क्या एक क्षण भी नहीं मिल पाता। जो पत्ता शाख से टूटकर गिर गया उस पत्ते को पुनः पेड़ से जोड़ा नहीं जा सकता। ऐसे ही व्यक्ति का जीवन जब आयु रूपी

शाखा से कट जाता है तो पुनः जोड़ने में कोई समर्थ नहीं है। इसीलिये जब तक नहीं कटा है तब तक उसका सही सदुपयोग किया जा सकता है।

दूसरी बात ये है-कभी-कभी व्यक्ति क्या करता है जब उसका मन अच्छे कार्य में नहीं लगता है तो बुरे कार्यों में लग जाता है। किसी की निंदा-चुगली करना और अनावश्यक चर्चा करना जिनसे सिर्फ पाप का बंध होता है, अनर्थकारी बातें करने से अच्छा तो तुम्हें मौन लेकर बैठ जाना चाहिये। मौन लेकर बैठ जाने से कम से कम तुम्हें पाप का आश्रव तो नहीं होगा। अन्यथा अनावश्यक चर्चा करने से तुम्हारा मन भी भटकेगा, कषायें भी उत्तेजित हो सकती हैं पाप का आश्रव होगा। नीतिकार तो यहाँ तक कहते हैं कि जिस समय को तुम दूसरों की निंदा चुगली करके बिता रहे हो उससे अच्छा तो उस समय को तुम सोकर के बिता दो। किसी की निंदा करके मत बिताओ।

प्रातःकाल एक व्यक्ति तो भगवान की पूजा अभिषेक को जाता है, दूसरा व्यक्ति प्रातःकाल से किसी की निंदा बुराई करता है, तीसरा व्यक्ति उस समय सो रहा है, चौथा व्यक्ति मंदिर तो जा रहा है पर रास्ते में दूसरों की निंदा करते हुये जा रहा है तो इनमें कौन सा व्यक्ति अच्छा है? जो पूजा अभिषेक करने जा रहा है किसी की अपेक्षा किये बिना। जो पूजा अभिषेक करता है खूब धर्म कार्य करता है किंतु आकर कहता है इसे देखो पिताजी जो अभी तक सो रहा है, कैसा पापी है, प्रमादी है पिताजी बोले अच्छा होता गर तू भी सो रहा होता जगकर यूँ किसी की निंदा तो नहीं करता। वह सो रहा है तो किसी की निंदा तो नहीं कर रहा तूने पुण्य कार्य करके भी कलंक लगा लिया जिस पुण्य को कर तू अहंकार की चोटी पर चढ़ रहा है वह पूजाभिषेक तेरी विशुद्धी के लिये नहीं है अपितु तेरे अहंकार को पुष्ट कर रहे हैं। इसका आशय यह है कि तू समय का सदुपयोग नहीं

दुरुपयोग कर रहा है किन्तु ऐसे व्यक्तियों को भ्रम हो जाता है कि हम समय का सदुपयोग कर रहे हैं।

महानुभाव ! व्यक्ति अपने समय को कैसे-कैसे बर्बाद करते हैं देखो तो सही। एक व्यक्ति ट्रेन से यात्रा कर रहा था, वह ट्रेन जब संकीर्ण मार्ग से जा रही थी और सुरंग के द्वारा पर्वतों के बीच से निकल रही थी तो उस ट्रेन में दो व्यक्ति आपस में चर्चा करने लगे। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कहता है भाई आप कहाँ से आये हैं? वह सामने वाला व्यक्ति कहता है-मैं अभी दिल्ली से आया हूँ, उसने प्रति प्रश्न किया कि आप कहाँ से आ रहे हैं। उसने कहा मैं भी दिल्ली से ही आ रहा हूँ। पुनः पहले वाले ने पूछा-आपको कहाँ जाना है-बोला भाई साहब ! मुझे तो मुंबई तक जाना है, और आपको वह बोला मुझे भी मुम्बई जाना है।

अरे ये तो बड़ी अच्छी बात है हमारा तुम्हारा साथ तो मुंबई तक हो गया। अच्छा ये बताओ अभी आप जा तो मुंबई रहे हो पर आपका वास्तविक निवास स्थान कहाँ है? वह बोला-मैं तो मुंबई में ही रहता हूँ। अच्छा ! और आपका निवास स्थान ? रहता तो मैं भी मुंबई में हूँ। अरे ये तो बड़ा अच्छा संयोग है। अच्छा इतना तो बताईये कि आप मुंबई में रहते कहाँ हों ? मैं मुंबई में बोरीबल्ली में रहता हूँ, और आप, मैं भी बोरीबल्ली में रहता हूँ। वाह ! ये तो और भी अच्छी बात है। थोड़ी देर बाद पूछा-भाई बोरीबल्ली तो बहुत बड़ी है आप उसमें कहाँ रहते हैं-बोरीबली में जैन मंदिर के सामने वाली बिल्डिंग में रहता हूँ, और आप-मैं भी बोरीबल्ली में जैन मंदिर के सामने वाली बिल्डिंग में रहता हूँ। वाह! क्या संयोग है बहुत ठीक।

एक बात और बताओ उस बिल्डिंग में 32 माले हैं तुम कौन से नं. के माले पर रहते हो। वह बोला मैं तो 21वें नम्बर के फ्लोर में रहता हूँ और आप-अरे वाह रहता तो मैं भी 21वें नंबर के फ्लोर पर हूँ-अरे भाई क्या संयोग बैठता चला जा रहा है 21वें नंबर के फ्लोर

पर आप भी रहते हो मैं भी रहता हूँ पर 21वें नं. फ्लोर में 270 कमरे हैं आपके कमरे का नंबर कौन सा है? भाई साहब मैं तो 27वें नम्बर के कमरे में रहता हूँ, और आप मैं भी 27वें नंबर के कमरे में रहता हूँ। अब जो साथ में बैठे हुये यात्री थे वे इन दोनों की वार्ताओं को सुन रहे थे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहाँ तक तो कोई बात नहीं कि दोनों दिल्ली से साथ-साथ चले मुम्बई जा रहे हैं, मुंबई के ही निवासी हैं, एक ही जगह रहते हैं संयोग से चलो बिल्डिंग भी एक है फ्लोर भी एक ही हो सकता है आपस में परिचय न हो पाया हो किंतु ये थोड़ी बात अटपटी सी सुनने में लगती है कि दोनों कह रहे हैं कि दोनों 27वें नंबर के कमरे में रहते हैं। दोनों का रूम नं. भी एक ही है।

अब उन यात्रियों से रहा नहीं गया उसने कहा-भाई साहब आपको यदि कुछ हर्ज न हो तो हम आपसे एक छोटी सी बात पूछना चाहते हैं कि 27वें नंबर का कमरा कितना बड़ा है। बोला क्यों? नहीं कृपया बताईये तो सही-वे बोले ये ही कोई होगा 10-12 फीट का। बोले उसमें कितने पलंग पड़े हैं? बोला 2 पलंग पड़े हैं। वह यात्री बोला-जब दो ही पलंग हैं तो एक पर आप सोते होंगे दूसरे पर ये सोता होगा बोले हाँ ठीक कहते हो। ये तो बताओ एक कमरे में रहते हुये भी क्या आप दोनों एक दूसरे को जानते नहीं जो इतनी लंबी चौड़ी चर्चा आप कर रहे हैं। वे दोनों बोले तुम हमारे बीच में न बोलो शांति से बैठो ये ट्रेन सुरंग से निकल रही थी हमें डर लग रहा था हम दोनों अपना टाईम पास कर रहे हैं। हम दोनों तो बाप बेटे हैं।

महानुभाव ! ऐसी कहानी उन दोनों की नहीं अपितु संसार के अधिकांश व्यक्ति अपना यूँ ही टाईम पास करते रहते हैं। कोई ताश खेलके अपना टाईम पास कर रहे हैं, कोई किसी की निंदा करके, कोई किसी पर हंसकर, कोई किसी को रुलाकर, कोई किसी-दूसरे प्रकार से टाईम पास करता है किंतु ये जीवन टाईम पास करने के लिये

नहीं मिला है। इस समय को तुम्हें सार्थक करना है, तुम टाईम को क्या पास करोगे टाईम तुम्हें ही पास कर देगा। इसीलिये ध्यान रखो समय का एक-एक क्षण महत्वपूर्ण है और उस एक-एक क्षण को सार्थक करोगे तो तुम्हारी जिंदगी कोहिनूर हीरे से भी ज्यादा चमक जायेगी।

मैं तो बस आपको इतनी सलाह देना चाहता हूँ कि आप अपने जीवन का सदुपयोग करो। चाहे भले ही आपने अपने जीवन में करोड़ों रुपयों का दुरुपयोग किया हो, कोई बात नहीं पश्चाताप मत करो, आपने अपने जीवन में शब्दों का दुरुपयोग किया है कोई बात नहीं, दुकान, मकान वस्त्राभूषणों का दुरुपयोग किया तो चलो कोई बात नहीं किन्तु जीवन में एक संकल्प लें कि जीवन में हम कभी अपने समय का दुरुपयोग नहीं करेंगे। जो व्यक्ति ऐसा संकल्प कर लेता है उस व्यक्ति को कभी कोई निन्दनीय नहीं बना सकता, उसे कभी कोई उपेक्षित या तिरस्कृत नहीं कर सकता, ऐसा व्यक्ति जो अपने जीवन के एक क्षण का भी सदुपयोग करता है और अच्छे से अच्छा बनाने का भाव रखता है उस व्यक्ति का जीवंत उपदेश सबके लिये जायेगा, सामने वाला आपकी क्रिया चर्या को देखकर के अपने समय का सदुपयोग करने लग जायेंगे, वे भी अपने समय की कीमत करने लग जायेंगे और नि:संदेह उनका जीवन भी स्वर्णिम हो जायेगा।

महानुभाव ! समय की आज की माँग यही है। आज माँग ये नहीं है कि व्यक्ति के पास बहुत धन हो, पढ़ा लिखा हो, भौतिक साध न हों या परिवार बड़ा हो अपितु माँग ये है कि हम समय का सदुपयोग करना सीखें। जितने भी स्कूल, कॉलेज, मदरसे सभी समय का सदुपयोग करना ही सिखाते हैं। हम अंग्रेजी, हिन्दी, प्राकृत, गुजराती, मराठी, ब्राह्मी सब भाषायें व विद्यायें-कलायें सीख जायें इन सबसे तब तक कुछ भी होने वाला नहीं है जब तक हम समय का सदुपयोग करने की कला नहीं सीख पायें। पुरुषों की 72 कला होती

हैं स्त्रियों की 64 कला होती हैं। इनमें धर्म की कला सबसे उत्तम मानी जाती है।

कला ७२ पुरुष की तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका एक जीव उद्धार॥

जीव की जीविका चलाने वाली कला अलग है उससे तो केवल जीवन जीया जाता है। जीवन जीने की कला तो पशु के पास भी होती है जीवन का उद्धार करने वाली कला श्रेष्ठ होती है। वह कला होती है समय का सदुपयोग करना, वह कला होती है धर्म की कला। आत्मसेवा, समाज सेवा, विश्व सेवा, धर्म सेवा, प्राणीमात्र की सेवा ये कला जिसके पास आ जाती है उस व्यक्ति का कभी भी कोई कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता, उस आत्मा को कभी कोई दु:खी नहीं कर सकता, उस आत्मा की कभी दुर्दशा नहीं होती है, दुर्गति नहीं होती, वह कभी दु:खों में सीजती नहीं है ऐसी आत्मा तो ऐसी शोभायमान होती है जैसे सोने के थाल में रत्नों को सजा-सजा कर रखा जाता है वह आत्मा सर्व पूज्यनीय व आदरणीय हो जाती है।

अंत में यही कहना चाहता हूँ कि समय का सही सदुपयोग करो, समय तुम्हारी बाट देख रहा है। समय भी तुमसे अपेक्षा रख रहा है कि जो समय अर्थात् जीवन के क्षण तुम्हें मिले हैं उनमें से प्रत्येक समय का सही सदुपयोग करो नि:संदेह समय भी धन्य व सार्थक हो जायेगा, वह क्या सार्थक होगा तुम्हारी आत्मा ही कृत-कृत्य हो जायेगी, लोक पूज्य हो जायेगी, सिद्ध और शुद्ध हो जायेगी। हम भी आपके लिये समय रहते हुये, समय की छत्र छाया में यही भावना भाते हैं कि हे प्रभु ! सभी का सुसमय आये, सभी अपने समय का सदुपयोग करें कोई भी प्राणी स्वप्न में भी अपने समय का दुरुपयोग नहीं करे। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ मैं अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

२१. ''धैर्य''

आत्मा में अनंतगुण हैं, वे अनंत गुण पुरुषार्थ के माध्यम से प्रकट होते हैं, जिस प्रकार दूध में घी पाया जाता है, उस घी को प्राप्त करने के लिये दूध को गर्म करना उसका पुनः जमा देना, मंथन कर देना, नवनीत को पुनः तपाना यह प्रक्रिया आवश्यक होती है उसी प्रकार चेतना के गुणों को प्राप्त करने के लिये परम पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। जो कोई भी साधक अपनी साधना काल में निराकुलता के साथ साहस, निष्ठा एवं आत्मविश्वास के साथ जब आत्मा की साधना करता है तब वह चेतना के समस्त गुणों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

निष्ठा, साहस, लगन, उद्यमशीलता ये गुण जितने आवश्यक हैं उतनी ही आवश्यकता जीवन में धैर्य की होती है। धैर्य मेरी दृष्टि में इन सभी गुणों से भी श्रेष्ठ माना जा सकता है। कारण यही है कि अन्य सभी गुण बिना धैर्य के प्राप्त नहीं होते। धैर्य एक ऐसा गुण है जिसमें चुम्बकीय शक्ति होती है, जैसे चुम्बक के द्वारा लोहे की ऑलपिनों को इकट्ठा किया जा सकता है, पुष्प को देखकर जैसे भ्रमर आ जाते हैं, शक्कर के ढेर पर चीटियों का समूह बिना निमन्त्रण के आ जाता है ऐसे ही जिस आत्मा में धैर्य है उस आत्मा में अनंत गुण प्रकट होने की संभावना है।

एक मनीषी विद्वान् का यहाँ तक कहना है कि धैर्य के माध्यम से हर एक काम संभव है। जब उनसे इसका कारण पूछा गया कि यह कैसे संभव है तब वे बोले क्यों नहीं हो सकता। तो प्रति प्रश्न किया गया यदि हो सकता है तो पानी को छलनी में भरकर बताओ। उस विद्वान् ने कहा-मैं यह कार्य भी कर सकता हूँ मैं पानी को छलनी में ऐसे भर सकता हूँ। पहले छलनी को पानी में रख दिया तो पानी

छलनी में भरा हुआ है। वे बोले-नहीं इस तरह तो छलनी पानी में हो गयी, पानी छलनी में कैसे भरोगे? वे विद्वान् बोले-मैं तब तक धैर्य ध ारण करूँगा जब तक वह पानी जमकर के बर्फ न हो जाये इस तरह वह पानी भी छलनी में आ सकता है। जब छलनी में धैर्य से पानी भी आ सकता है, धैर्य व निरन्तर उद्यमशीलता के बल से एक-एक जल की बूंद पाषाण में छेद कर सकती है, उसी प्रकार धैर्यशाली व्यक्ति अपने गन्तव्य स्थान को प्राप्त कर लेता है जिस तरह एक पिपीलिका सैकड़ों योजनों की दूरी को प्राप्त कर लेती है।

गच्छन् पिपीलिकायाति योजनानि शतान्यपि
अगच्छन् वैनतेयं हि, पदमेकं न गच्छति॥

चलती हुयी चीटीं सैकड़ों योजनों की दूरी पार कर लेती है किन्तु न चलता हुआ गरुड़ पक्षी एक कदम भी नहीं चल सकता। ऐसे ही धैर्य को धारण करके जो कोई भी महानुभाव पुरुषार्थ में संलग्न रहता है, वह मंजिल को प्राप्त करता है। और ध्यान रखना-''धैर्य एक ऐसा अश्व है जो अपने सवार को नियम से मंजिल तक पहुँचाता है और वह अश्व कभी अपने सवार को गिराता नहीं है, न किसी के कदमों में और न कभी किसी की नजरों में।'' धैर्य कहो या सब्र मतलब एक ही है।

धैर्य का आशय है जो धीर है। धी-बुद्धि र-रमण। धीरवान् वही हो सकता है जो बुद्धि में रमण करता है, ज्ञान में रमण करता है, ज्ञान को प्राप्त करता है। जिसकी बुद्धि रम्य है, रमण करने योग्य है या 'र'-'धन' जिसके पास बुद्धि रूपी धन है, जो बुद्धि रूपी लक्ष्मी से सम्पन्न है वही वास्तव में धीर हो सकता है। कवियों ने लिखा है-

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आये फल होय॥

194

रे मन ! तू आकुल व्याकुल होकर के अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है। आकुलता से कोई मंजिल प्राप्त नहीं होती। व्याकुल चित्त शांति को देने में असमर्थ होता है। शांति को पाने के लिये चित्त को शांत करना होता है। आकुलता/आतुरता के साथ किया गया कार्य बिगड़ जाता है और निराकुलता से किया कार्य सफल हो जाता है।

यदि कोई माली दिनभर एक वृक्ष में 100 घड़े भी सींच दे तो उससे ऐसा नहीं कि एक दिन में फल आ जाये, फल तो समय पर ही आयेगा, एक-एक घड़ा प्रतिदिन पानी सींचता है तो वृक्ष सूखेगा नहीं एक दिन में 100 घड़े पानी से फल तुरंत नहीं लगेंगे। नीतिकारों ने और भी लिखा-

कारज धीरे होत है काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फले केतक संचे नीर॥

जो भी कार्य होता है धीरता से होता है अधीर होकर नहीं। जो व्यक्ति अधीर हो जाते हैं वे अपनी शक्ति को नष्ट करते हैं। अधीर होने वाले व्यक्तियों का आत्म विश्वास नष्ट हो जाता है। अधीर व्यक्ति उतनी लगन से कार्य नहीं कर सकते उनकी कार्य क्षमता घट जाती है। अधीर व्यक्तियों के सहयोगी उनसे दूर भाग जाते हैं। अध ीर व्यक्ति अपने आप से हार जाते हैं इसलिये अधीरता से काम सिद्ध नहीं होते। वृक्ष जब भी फलते हैं अपने समय पर फलते हैं चाहे जल से नहीं दूध और अमृत से ही सिंचन क्यों न किया जाये तब भी वे वृक्ष असमय में फल नहीं देते।

एक बालक बड़ी आतुरता के साथ खेत में बीज बोने के लिये गया और बीज बोने के उपरान्त उसने थोड़ी देर बाद देखा कि बीज कितना बड़ा हो गया, देखा अरे ये तो ज्यों की त्यों रखा है। थोड़ी देर बाद पुनः मिट्टी में दबा दिया। थोड़ी देर बाद पुनः देखता है कि अब

तो बड़ा हो गया होगा। बीज तो अभी भी ज्यों का त्यों था। ऐसे उसने दिन में 20-30 बार किया। दबाया निकाला, देखा पुनः दबाया। यह प्रक्रिया कई बार की। इधर दूसरे व्यक्ति ने बीज बोया और बीज बोकर वह शांति से बैठा है कि मैंने अपना पुरुषार्थ पूरा कर दिया अब मैं धीरता के साथ इंतजारी करता हूँ कि किस तरह से ये फलीभूत होता है किस प्रकार से यह पल्लवित व पुष्पित होता है।

जो व्यक्ति बीज बोकर धीरता के साथ बैठा है उसका बीज अंकुरित हो जाता है। शनैः-शनैः वह अंकुर पल्लवित होता है उसमें कोंपलें निकलती हैं, और आगे बढ़ता है पौधा बनता है उस पौधे से पुनः पुष्प निकलते हैं और आगे बढ़ता है तो फल लगने लगते हैं। प्रायः करके संसारी प्राणी अपने कार्यों को अधीरता से करना चाहता है, शीघ्र ही करना चाहता है। बुन्देलखण्ड की एक कहावत है-

''आज ही बनिया कल ही सेठ''

वह चाहता है कि मैं एक ही दिन में अमीर हो जाऊँ या कोई विद्यार्थी एक ही दिन में पूरी पढ़ाई करना चाहता है, या कोई व्यक्ति एक ही दिन में पूजा पाठ करके परमात्मा बनना चाहता है। जो कोई व्यक्ति इस तरह से आतुर होते हैं, जिनके चित्त में व्याकुलता है यह व्याकुलता ही उनके दुःख की जननी है। व्याकुलता ही लक्ष्य से भटकाने वाली है। व्याकुलता चिकनी मिट्टी की तरह से है। जिसका पैर व्याकुलता की चिकनी मिट्टी पर पड़ता है वह नीचे धड़ाम से गिर जाता है और जिसके पास धैर्य की लाठी है, आजू-बाजू में धैर्य की रैंलिंग है ऐसा व्यक्ति इसे पकड़ कर चढ़ सकता है चोटी तक पहुँच जाता है।

महानुभाव ! आचार्य शिवकोटि जी मुनिराज ने समाधि की साधना के साथ भी धैर्य रखने को कहा। जहाँ संवेगी भावना, ज्ञानभावना

का कथन किया वहाँ धृति भावना के बारे में भी कहा कि धृति भावना भी बहुत जरूरी है। यदि कोई साधक धैर्य को छोड़कर के अधीर होकर के साधना करना चाहता है तो अधीर साधक अपनी समाधि की साधना को नहीं कर सकता। समाधि धीरता के साथ होती है अधीरता के साथ नहीं। अधीर साधक अपने परिणामों को निर्मल बनाने में समर्थ नहीं हो सकता, उसका चित्त व्याकुल रहेगा और व्याकुल चित्त कभी धर्म ध्यान में स्थिर नहीं होता, इसलिये साधक के लिये धृति भावना बहुत आवश्यक कही। धैर्य धारण करो।

विद्यार्थी के जीवन में, कृषक के जीवन में, व्यापारी आदि सभी के जीवन में धैर्य होना चाहिये। धैर्य जिसके पास है सफलता उसके पास स्वयं चलकर आ जाती है यदि वे सफलता के पात्र हैं तो। यदि धैर्य धारण नहीं करते हैं तो सफलता के पात्र भले ही बने रहें वे सफलता को प्राप्त वैसे ही नहीं कर पाते जिस प्रकार काक अंगूर (दाख) को खाने में असमर्थ होता है क्योंकि वह इतना आकुल व्याकुल हो जाता है कि पकने के पहले ही खाने लगता है जिससे इसके कंठ में रोग हो जाता है और जब तक दाख पकती है तब तक कंठ के रोग के कारण खा नहीं पाता। ऐसे ही अधीर व्यक्ति फल को कच्चा तोड़कर खाता है और कच्चा तोड़कर खाने से उसका मुंह खट्टा हो जाता है कि वह पुनः पके फल को भी नहीं खा पाता है। अतः अधीरता न हो।

एक द्विज पुत्र शिक्षा प्राप्त करने के लिये बनारस गया। 12 वर्ष तक उसने शिक्षा प्राप्त की, वह माता-पिता का इकलौता पुत्र था। माता-पिता ने भी उसके उज्ज्वल भविष्य के लिये प्रभु परमात्मा से हजारों रात्रि बैठकर के प्रार्थना की थी। माता-पिता की भावनायें साकार रूप लेने लगी। पुत्र इतना ज्ञानी, गुणी, विद्वान् था कि जिसकी उन्हें उम्मीद भी न थी। वह पुत्र जैसे ही नगर को लौटा तो सभी

नगरवासी उसका खूब मान-सम्मान करने लगे, उसकी विद्वत्ता का लोहा मानने लगे, अनेक देशों के विद्वानों द्वारा भी वह सम्मान को प्राप्त हुआ। पुत्र जब भी घर आता तो प्राय:कर के उसके पिता उससे कहते अभी तुम कुशल नहीं बने, अभी तुम्हें और आगे बढ़ना चाहिये और उसकी माँ भी उनकी हाँ में हाँ मिलाती। पुत्र माता-पिता के शब्दों को सुनकर बड़ा व्याकुल चित्त हो जाता है, उसे लगता मैं इतना श्रेष्ठ हूँ, गुणी हूँ, विद्वान् हूँ, सैकड़ों नगरों गाँवों के लोग मेरा सम्मान करते हैं किन्तु मेरे माता-पिता को मुझमें कोई विशेषता ही दिखाई नहीं देती।

एक दिन की बात उस पुत्र के मन में अपने माता-पिता के प्रति विद्वेष का भाव उत्पन्न हो गया, इतना विद्वेष बढ़ा कि मन में निर्णय ले लिया कि मैं अपने माता-पिता को जीवित नहीं छोड़ूँगा। ग्रीष्मकाल का समय था, माता-पिता छत पर विश्राम कर रहे थे, किंतु उन्हें नींद नहीं आ रही थी, पूर्णमासी की रात्रि थी चन्द्रमा पूरी तरह से आकाश में अपनी चाँदनी को फैला रहा था। वह पुत्र सीढ़ियों पर दरवाजे की आड़ से जाकर खड़ा हो जाता है और सोचता है जब दोनों सो जायेंगे तब कटारी से इन दोनों का गला काट दूँगा। जब तक उन्हें नींद नहीं आ रही थी तब तक वह उन दोनों की चर्चा सुनने लगा।

पुत्र की माँ अपने पति से कहती है-देखते हो आकाश में चन्द्रमा अपनी कितनी चाँदनी फैला रहा है। क्या ऐसा चन्द्रमा आपने कभी देखा है वह (उसका पति) कहता है-अरी भाग्यवान् ! तू इस कलंकी चन्द्रमा की प्रशंसा करती है इसमें इतने दाग भरे पड़े हैं अरे ! ये चन्द्रमा तो कुछ भी नहीं है ऐसे तो हजारों चन्द्रमा तेरे बेटे पर न्यौछावर किये जा सकते हैं। तेरा बेटा तो कितना बड़ा चन्द्रमा है जिसकी ख्याति सैकड़ों-हजारों नगरों-ग्रामों तक है। तू क्या समझती है ऐसा विद्वान् हजारों सालों में एक होता है।

198

बेटे ने सुना कि मेरे माता-पिता मेरे बारे में ऐसी चर्चा कर रहे हैं, उसकी माँ ने कहा-बात तो आप सत्य कहते हो किन्तु यदि ऐसी ही बात है तो तुम बेटे की बार-बार बुराई क्यों करते हो, उसके सामने यह क्यों कहते हो कि अभी तुम पूर्ण कुशल नहीं हो? उसने कहा तू नहीं समझती जब कोई व्यक्ति बहुत योग्य होता है तो उसे और आगे बढ़ाने के लिये अंकुश लगाया जाता है। पतंग जब आकाश में ऊँची हो तो उसे खींचा जाता है जिससे वह और आगे बढ़े, हाथी आगे बढ़े इसके लिये और अंकुश लगाना पड़ता है। यदि मैं बेटे की प्रशंसा करना प्रारंभ कर दूँगा तो उसमें अहं भाव आ जायेगा उसका विकास, उसकी उन्नति रुक जायेगी इसलिये मैं उससे कहता हूँ अभी और आगे बढ़ना है, किन्तु सत्यता तो यह है कि वास्तव में उस जैसा ज्ञान, विद्वत्ता, हुनर हजारों में से किसी एक में ही होता है।

अपने माता पिता की ऐसी चर्चा सुनकर वह बेटा वहाँ से चला गया। प्रात:काल ही वह अपने पिता के पास पहुँचा और हाथ जोड़कर निवेदन करता है पिताजी ! यदि किसी के मन में निर्दोष को मारने के लिये पाप आ जाये भ्रम पैदा हो जाये और उन्हें मारने तक का निर्णय ले ले तो उसके लिये क्या प्रायश्चित है। उसके पिता भी विद्वान् थे-उन्होंने सहजता में कह दिया कि बेटा उसके लिये प्रायश्चित यह है कि या तो वह व्यक्ति 12 वर्ष तक नंगे पैर तापस का वेष धारण करके जंगल में रहने लगे या फिर 12 वर्ष तक गौ सेवा करे या फिर वह सन्यास लेकर के अपने जीवन को समाप्त करे। वह पुत्र हाथ जोड़कर कहता है-ठीक है पिताजी, मुझसे अपराध हो गया था, मैंने भ्रम में आकर आप दोनों को ही मारने का गलत निर्णय ले लिया था, अब इसके प्रायश्चित हेतु मैं 12 वर्ष के लिए जाता हूँ और तापस का वेश धारण कर मैं जंगल में साधना करूँगा। माता-पिता ने बहुत रोका, पत्नी भी रोने लगी मुझे छोड़कर न जाओ, आपके बिना यहाँ कौन

करने वाला है, उसने कहा-तुम चिंता न करो उसने एक पर्ची लिखी और पर्ची लिखकर अपनी पत्नी को दी उस पर्ची में लिखा था-**''उकताये काम नसाये धीरज काम बनाये''।**

पत्नी से कहा-ये पर्ची नगर सेठ को देना और कहना कि 1 लाख रु. की आवश्यकता है, जब पैसे आ जायेंगे तब भिजवा देंगे। उसकी पत्नी गयी, नगर सेठ ने पर्ची देखी और 1 लाख रुपया दे दिया, सेठ ने वह पर्ची अपनी अलमारी पर चिपका दी। सेठ भी उसी दिन व्यापार के लिये विदेश निकल गया। वह सेठ 12 वर्ष बाद जब व्यापार करके लौटा, वह बहुत धन कमाकर लाया। रात्रि का समय था सेठ अपने महल में घुसा और अपने कक्ष में गया, देखा उसकी पत्नी सो रही थी और साथ में कोई पुरुष भी सो रहा था। उसे लगा ये कोई अन्य पुरुष है जो मेरी स्त्री इसके साथ सो रही है वह आग बबूला हो गया, गुस्से में उसने तलवार निकाली और मारने को हुआ किन्तु तभी उसकी निगाह उस अलमारी पर लगे कागज पर पड़ी जिसमें लिखा था-''उकताये काम नसाये धीरज काम बनाये' उसने अपनी तलवार की नोंक से अपनी पत्नी को जगाया, पत्नी उठी देखा उसके पति उसके सामने खड़े हैं। वह अपने बाजू से अपने बेटे को जगाती है कहती है बेटा उठ चरण स्पर्श कर तेरे पिता जी आ गये। तूने अपने पिता को पहली बार देखा है 12 वर्ष पहले ये यात्रा के लिये गये थे, तब तेरा जन्म भी नहीं हुआ था।

वह सेठ सोचता है आज यदि ये कागज नहीं होता तो मेरा परिवार नष्ट हो गया होता। उसने प्रात:काल वह पर्चा अपनी पत्नी के हाथ उस ब्राह्मण के यहाँ भिजवाया और यह कहलवाया कि अब उनका 1 लाख रु. वसूल हो गया है, अब उन्हें पैसे चुकाने की आवश्यकता नहीं है। 12 वर्ष बाद वह ब्राह्मण पुत्र भी तापस वेश छोड़कर आता है और कहता है अब मुझे सेठ जी के 1 लाख रु.

चुकाना है। तब तक सेठजी भी उसके पास आ गये और कहने लगे-ब्राह्मण देवता जी आपने तो बहुत अच्छा काम किया कि आपके एक ही वाक्य से मेरा परिवार नष्ट होने से बच गया। उस वाक्य को पढ़कर मैंने आकुलता नहीं की अपनी पत्नी को जगा दिया उसके जगते ही मेरा सारा भ्रम दूर हो गया कि वे तो मेरे ही पुत्र व पत्नी थे, मैं सोच रहा था कि वे कोई और होंगे। इस प्रकार आपकी वजह से आज मेरा परिवार सुरक्षित है। आपका पूरा धन मय ब्याज के चुक गया है अब कोई धन शेष नहीं रहा।

कहने का अभिप्राय यहाँ बस इतना सा है कि आकुलता के साथ जब कोई व्यक्ति काम करता है तब नि:संदेह वह काम नष्ट हो जाता है। 'उतावला सो बावला' यह कहावत बुंदेलखण्ड में कही जाती है। जो उतावलेपन में कार्य करता है वह मूर्खता की निशानी है। जो धैर्यशाली होता है, तुरंत ही नहीं बोलता सोच समझकर, नाप तौल कर बोलता है, आक्रोशित नहीं होता वह व्यक्ति नि:संदेह धीर-वीर-गंभीर और बुद्धिमान् कहलाता है, और जो व्यक्ति थोड़े में ही आकुल-व्याकुल हो जाता है तो समझो वह उस पतले तवे की तरह है कि जरा सी आँच लगी और गर्म हो गया। तो महानुभाव ! जो जितने शक्तिशाली होते हैं वे उदार, गंभीर, धीर-वीर, मनस्वी, क्षमाशील, पराक्रमी व शांतप्रिय होते हैं।

हम और आप जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो धैर्यशाली होना जरूरी है। चाहे कोई भी कार्य करें व्यापारी हैं तो व्यापार में धैर्य रखें धीरे-धीरे उन्नति को प्राप्त होगा, पुरुषार्थ करिये। धीरता का आशय यह नहीं है कि आप भाग्य के भरोसे बैठे रहें ध ीरशाली होने से आशय है कि आप सम्यक् पुरुषार्थ करें किन्तु फल के लिये आकुलता व्याकुलता न करें। जो फल के लिये आकुलता-व्याकुलता करता है उसका फल मिष्ट नहीं होता उसका

फल कटुक कहलाता है। इसलिये आप सभी को वात्सल्य पूर्वक यही आशीर्वाद है कि आप धैर्यता के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करें, लक्ष्य की ओर सदैव गतिशील रहें, उद्यमशील रहे इसी से जीवन की सफलता व सार्थकता है।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

धीरो अपुव्व धम्मो, सव्वाणं धम्म कारणं भणिदं।
धीरो वीरो पुरिसो, धीमाणो रत्तो अप्पम्मि॥

अर्थ:-धैर्य अपूर्व धर्म है। यह सबके धर्म का कारण कहा जाता है। धीर-वीर पुरुष ही धीमान् है और वही आत्मा में रत होता है।

-विज्जावसु-सावयारो
(आचार्य श्री वसुनंदी मुनि)

२२. संकल्प

संसार का कोई भी काम असंभव नहीं। जो कोई भी असंभव समझता है उसके लिये कोई काम संभव नहीं है। संभव और असंभव कार्य नहीं होता, संभव और असंभव व्यक्ति की धारणा व मान्यता होती है। जिस व्यक्ति के आत्मप्रदेशों में यदि किसी भी कार्य के प्रति असंभवपना स्थायीपने को प्राप्त हो गया है, आत्मा के प्रदेशों से चिपक गया है, उस असंभवपने को निकालना बड़ा कठिन है। और जिस कार्य के प्रति व्यक्ति के मन में अंदर से ये दृढ़ विश्वास है कि यह कार्य तो आसान है उसे चाहे दुनिया असंभव कहे किन्तु वह व्यक्ति उस कार्य को संभव करके रहता है, उसके लिये वह कार्य आसान हो जाता है। Impossible शब्द जो कि अपने आप में कहता है-

Impossible word says-I am Possible. वह शब्द अपने आप में कह रहा है मैं संभव हूँ। असंभव नहीं। मुश्किलें कभी मार्ग में नहीं होती मुश्किलें राही के द्वारा बनायी जाती हैं किन्तु जो राही मंजिल को प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिये वे मुश्किलें उसकी साथी बन जाती हैं और राह छोड़ देती हैं। हम भी अपने जीवन में मुश्किलों से घबरायें नहीं और अपनी धारणा ये न बनायें कि यह कार्य असंभव है। सदैव सकारात्मक सोच बनाकर रखें, सदैव अपने पर विश्वास रखें। जिस व्यक्ति को अपने ऊपर, अपनी शक्ति के ऊपर, अपने पुरुषार्थ के ऊपर विश्वास होता है विश्व की सभी शक्तियाँ उसका साथ देने के लिये तत्पर रहती हैं, चाहे वे चेतन शक्तियाँ हो या अचेतन शक्तियाँ हों।

किन्तु स्वयं पर विश्वास जाग्रत कैसे हो? स्वयं की शक्तियाँ जाग्रत कैसे हों? हमारे मन से यह भूत कैसे निकले कि संसार में कोई

कार्य मुश्किल नहीं है, हमारे अंदर की ये धारणा कैसे बदले कि यह काम असंभव नहीं है। इसके लिये एक उपाय है वह उपाय अचूक है राम बाण औषधि की तरह से है, उस उपाय को कोई नकार नहीं सकता। ये बात मन में तब तक रहती है जब तक व्यक्ति द्वन्द के घेरे में रहता है। द्वन्द के घेरे में घिरा व्यक्ति एक नतीजे पर नहीं पहुँचता उसका चित्त घड़ी के पेन्डुलम की तरह से घूमता रहता है या झूले की तरह दोलायमान रहता है। ऐसे ही उस व्यक्ति का चित्त दोलायमान रहता है मन विकल्पों में रहता है।

विकल्प का अर्थ है वि अर्थात् दो कल्प-अर्थात् कल्पना। कम से कम दो कल्पनायें होती हैं जब कल्पनायें दो हो तब नि:सदेह चित्त कभी इस कल्पना पर जाता है कभी दूसरी पर जा सकता है। जैसे किसी व्यक्ति के दो मकान हैं तो वह कभी इस मकान में रहता है तो कभी दूसरे में रह सकता है। एक घर के दो दरवाजे हैं तो कभी इस दरवाजे से निकल सकता है कभी दूसरे से। और यदि एक ही दरवाजा है तो उसी से आयेगा उसी से जायेगा, एक ही मकान है तो उसी में रहेगा। इसी प्रकार विकल्प उसका नाम है जहाँ चित्त में दो कल्पनायें होती हैं। तीन-चार और ज्यादा भी हो सकती हैं, किन्तु संकल्प एक होता है, संकल्प के सामने सभी विकल्प नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य का उदय होते ही तारेगण, नक्षत्र, चन्द्रमा अस्तप्राय: हो जाते हैं उसी प्रकार संकल्प के सूर्य के सामने विकल्पों के तारे ग्रह नक्षत्र भी अस्तवत् होते हैं। सूर्य ग्रह जहाँ बैठा होता है उसका प्रभाव उच्च या स्वग्रही जब होता है तो अन्य ग्रहों के प्रभाव व पराक्रम को कम कर देता है। संकल्प का सूर्य सबसे बड़ा प्रभावी सूर्य होता है।

जिस प्रकार संकल्प रूपी समुद्र के आगे विकल्प रूपी मचलती नदियाँ ज्यादा ठहर नहीं पाती उसमें समाहित हो जाती है उसी प्रकार दृढ़ संकल्प के सामने विकल्प ज्यादा देर ठहर नहीं पाते अथवा यूँ

कहें जिसके पास संकल्प की चुम्बक हो वह विकल्पों रूपी सभी ऑलपिनों को खीचने में समर्थ है। अथवा यूँ कहें जिस प्रकार विकल्पों रूपी बिखरे हुये शक्कर के दाने चुल्लुभर पानी के मिलते ही एक मेक हो जाते हैं ऐसे ही संकल्प के सामने सभी विकल्प घुलकर एकमेक हो जाते हैं। जिस व्यक्ति के जीवन में संकल्प लेने की सामर्थ्य नहीं है उस व्यक्ति को कापुरुष कहना चाहिये। वह व्यक्ति पुरुषत्व से रहित है, वह व्यक्ति उसी तरह से है जैसे बाँझ स्त्री। जैसे बांझ स्त्री का सौन्दर्य व्यर्थ होता है वैसे ही संकल्पहीन व्यक्ति का पुरुषार्थ व्यर्थ होता है। संकल्प के सामने संसार का कोई भी काम असंभव नहीं है सब कुछ संभव है। अत: हमें संकल्पशील बनना है।

संकल्प लेने वाली चींटी यदि आगे बढ़ती है संकल्प के साथ तो पहाड़ की चोटी पर भी पहुँच जाती है। संकल्प के साथ एक विद्यार्थी अध्ययन करना प्रारंभ करता है तो बहुत अच्छी पढ़ाई कर लेता है। यह सब तभी संभव है जब वह संकल्प के साथ बढ़े, संकल्प को छोड़कर नहीं। संकल्प से उत्तम वाहन न आजतक दुनिया में था, न है, न हो सकेगा। जिस किसी के पास संकल्प का वाहन है ऐसा व्यक्ति नि:संदेह मंजिल तक पहुँचता है। वह वाहन कभी रास्ते में धोका नहीं देता, एक बार जिसने भी संकल्प के यान पर उड़ान भरी नि:संदेह क्षितिज में मार्ग कम पड़ जाता है किंतु संकल्प का यान कभी थकता नहीं है। आप भी संकल्प के साथ बढ़ें। महानुभाव ! इतिहास उठाकर देखें संकल्प के साथ आगे बढ़ने वाले व्यक्ति कहाँ तक नहीं पहुँचे देखो-

महाराज चामुण्डराय जिन्होंने आज से लगभग 1 हजार वर्ष पूर्व संकल्प लिया था अपनी माँ की इच्छा को पूर्ण करने का, उसकी माँ की इच्छा थी मैं भगवान् बाहुबली के दर्शन करूँ। भगवान् बाहुबली की जो पोदनपुर में विद्यमान सवा 500 धनुष ऊँची स्वर्णमयी प्रतिमा

थी उसके दर्शन करना उस समय तो संभव नहीं था क्योंकि वह मूर्ति जमीन में नीचे दबी हुयी थी किन्तु चामुण्डराय ने संकल्प लिया मैं अपनी माँ की भावना को पूर्ण करूँगा और आचार्य अजितसेन और नेमिचन्द जी के आशीर्वाद से 57 फीट का भगवान् बाहुबली का जिनबिम्ब तैयार कराया। आज से लगभग हजार वर्ष पहले इतने साध न नहीं थे आज बहुत साधन हैं किन्तु उस संकल्प की दृढ़ता से चाहे कितना ही धन व्यय करना पड़ा और इतना सुंदर व मनोज्ञ जिनबिंब बना कि आज हजार वर्ष के बाद भी ऐसा लगता है कि आज ही उसका निर्माण किया हो।

महानुभाव ! वे वीर शिवाजी जो कि एक छोटा सा जमींदार परिवार का बालक छोटी सी सेना के आधार पर किस प्रकार वह पूरे मराठा को आजाद करा देता है, मुगल सेना को खदेड़ देता है। बड़े-बड़े मुगल शासकों के सेनापतियों को उसने धूल चटा दी किन्तु उसने कभी पीछे हटना नहीं सीखा। वह छोटी सी बालिका मनु महारानी लक्ष्मीबाई, जिसने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिये। किस वीरता और साहस के साथ वह अंग्रेजों के साथ भिड़ गयी और जीते जी अंग्रेजों के सामने हार नहीं मानी, वह झुकी नहीं उसकी तलवार उठी रही। इतना ही नहीं उसका संकल्प था कि पूरे भारत वर्ष में आजादी की अलख जगानी है। वह मंगल पाण्डे एक ही व्यक्ति था जिसने विरोध किया था कि कारतूस में गाय की चर्बी का प्रयोग होता है उसका प्रयोग हम नहीं करेंगे। भले ही बटेलियन के सब सैनिकों ने उसका साथ नहीं दिया, अंग्रेजों ने उसका विरोध किया, मारने की चेष्टा की किन्तु वह झुका नहीं। जिसके पास सत्य संकल्प होता है उस संकल्प को विश्व की अनैतिक रूप शक्ति दबा नहीं सकती, नष्ट नहीं कर सकती। क्योंकि संकल्प में कल्पवृक्ष से भी ज्यादा शक्ति होती है, इसीलिये कहा है-"**संकल्पं कल्पवृक्षं स्यात्**" संकल्प कल्पवृक्ष की तरह फल देने वाला होता है।

206

महानुभाव ! अनेक ऐसे महामना हुये जिनके मन में जुनून पैदा हुआ और उन्होंने उस कार्य को दृढ़ संकल्प के साथ पूर्ण किया। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अपने प्राण भी हथेली पर रखने पड़ें तब भी कोई बात नहीं। एक संकल्प को प्राप्त करने के लिये हजारों विकल्पों की आहूती देनी पड़ती है। एक संकल्प को प्राप्त करने के लिये मार्ग की अनेकों अनुकूलताओं व प्रतिकूलताओं से मुख मोड़ना पड़ता है। बस अर्जुन की तरह से लक्ष्य एक ही होना चाहिये कि मुझे इसे प्राप्त करना है। वह तीर मार्ग नहीं देखता कि मेरा मार्ग फूलों से भरा है या शूलों से, मार्ग में मेरा सम्मान हो रहा है या अपमान वह तीर तो अपने लक्ष्य को देखता है और सीधा चला जाता है, ऐसे ही संकल्प का धनी भी सीधा अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जाता है।

एकलव्य ने गुरु द्रोणाचार्य से अपमान प्राप्त करने के बावजूद भी उत्तम विद्या प्राप्त करने का संकल्प पूर्ण किया, दिन रात परिश्रम किया सफलता को प्राप्त किया।

संकल्प का धनी चन्द्रगुप्त चाणक्य की शरण में जाकर के, उनके निर्देशन में चलता रहा और एक महान सम्राट बना जिसने पूरे भारत को एकता के सूत्र में बाँधा। ऐसा कौन सा व्यक्ति है जिसने संकल्प के द्वारा सफलता को प्राप्त नहीं किया। अब्राहिम लिंकन सामान्य परिवार में जन्मा व्यक्ति जिसने अपने जीवन में बार-बार असफलता का मुख देखा किन्तु उसने संकल्प नहीं छोड़ा उसने ठान लिया था कि एक दिन मैं देश का श्रेष्ठ व्यक्ति बनकर रहूँगा और अब्राहमलिंकन अमेरिका का राष्ट्रपति बना। जॉर्ज वाशिंगटन सामान्य परिवार में जन्मा हुआ Street Light में पढ़ने वाला वह व्यक्ति संकल्प के साथ आगे बढ़ा वह भी अमेरिका का राष्ट्रपति बना। ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण हैं।

संकल्प आत्मा के अंदर की शक्ति है बाहरी शक्तियाँ तभी कार्यकारी होती हैं जब अंदर की शक्ति कार्य करे। जैसे कि बांस पर

टंगा हुआ कपड़ा, यदि बांस टूट गया तो कपड़ा अपने आप झुक जायेगा और यदि तना रहे तो कपड़े के फट जाने से बाँस टूटता नहीं है। बाहर की शक्तियाँ साथ दें, न दे किन्तु अंदर की शक्ति यदि बलिष्ठ है तो बाहर की शक्तियाँ मिलेगीं भी और जुड़ेंगी भी। किन्तु अंदर की शक्तियाँ ही टूट गयी हैं तो बाहर की भी जुड़ न पायेंगी। संकल्प शक्ति जितनी सुदृढ़ होती है नि:संदेह उतनी ही दृढ़ता उस व्यक्ति में आती है अपने कार्य के प्रति।

विल्मा रुडोल्फ जिसका जन्म टेनेसीसी के एक गरीब परिवार में हुआ था। चार वर्ष की उम्र में उसे पोलियो हुआ, वह इतनी अस्वस्थ हुयी कि शायद उसके जीवन की भी आशा न थी 9 वर्ष की उम्र में उसका ऑपरेशन हुआ डॉक्टर्स ने कहा बेटा-बिना वैशाखी के सहारे तुम चल न सकोगी। कभी बिना वैशाखी के चलने की कोशिश नहीं करना, इतना सुनते ही उसकी आँखों में आँसू आ गये वह बोली डॉक्टर साहब मैं आगे बढ़ना चाहती हूँ और दौड़ना चाहती हूँ। उसने अपनी माँ से कहा, माँ ने कहा-बेटी चिन्ता मत करो यदि तुम्हारे मन में जुनून है, संकल्प है कि तुम दौड़ना चाहती हो तो मैं तुम्हारी मदद करूँगी। उस बालिका ने धीरे-धीरे चलना प्रारंभ किया 15 वर्ष की उम्र में उसे पहली सफलता मिली। और वह अपने संकल्प में अति दृढ़ हुयी टेनेसी स्टेट यूनिवर्सिटी गई, जहाँ वह एड टेम्पल नाम के कोच से मिली और मेहनत की। कहा जाता है ऑलम्पिक्स गेम में उनका दुनिया के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों से मुकाबला हुआ, उसका मुकाबला जुत्ता हैन से था, पहली दौड़ 100 मीटर की थी, दूसरी 200 मीटर की व तीसरी दौड़ 400 मीटर की रिले रेस थी। इसमें टीम का सबसे तेज एथलीट ही दौड़ता है। विल्मा ने सन् 1960 में तीसरा गोल मैडल जीता व ओलंपिक दुनिया में सबसे तेज धाविका बन गयी।

महानुभाव संकल्प बहुत बड़ी चीज है कई बार ऐसा लगता है विश्व की समस्त शक्तियाँ तराजू के एक पलड़े पर रख दी जायें और

दूसरे पलड़े पर अकेला संकल्प रख दिया जाये तो संकल्प का पलड़ा ही भारी होता है। विश्व की सभी शक्तियाँ उसके सामने हल्की हो जाती हैं। एक चिड़िया संकल्प के साथ आगे बढ़ती है, तो वह चिड़िया अपना हौसला बनाये रखने में सक्षम रहती है-

यूँ ही नहीं मिलती राही को मंजिलें,
इक जुनून सा दिल मे जगाना पड़ता है
पूछा-चिड़िया से कैसे बना आशियाना तेरा
बोली-भरनी पड़ती है उड़ाने बार-बार तिनका-तिनका उठाना पड़ता है।

महानुभाव ! जो व्यक्ति एक-एक तिनका जोड़ता चला जाता है किन्तु अपने साहस को कम नहीं करता, अपने उत्साह को कम नहीं करता, आत्म विश्वास को कम नहीं करता वह अपना मुकाम प्राप्त कर ही लेता है। चींटी भी 1-1 दाना इकट्ठा करके पहाड़ जैसा अनाज का ढेर लगा सकती है। एक गरीब व्यक्ति भी एक-एक पैसा जोड़कर अमीर बन सकता है, एक-एक ईंट को जोड़कर महल बनाये जा सकते हैं किन्तु ऐसा करने का जुनून पैदा होना चाहिये। जिसके मन में जुनून नहीं वह सफलता को भोग नहीं सकता। सफलता के लिये धधकती लौ होना चाहिये उस लौ में समस्त विकल्प जल जाना चाहिये, उस लौ में समस्त प्रतिकूलतायें ध्वस्त हो जाना चाहिये, उससे पहले मंजिल प्राप्त नहीं होती।

आपने कपिल वस्तु के महाराज शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ के बारे में सुना होगा-यथाजात दिगम्बर दीक्षा लेने के उपरांत उन्होंने खूब साध ना की। कहते हैं उन्होंने कई निर्जल उपवास किये किन्तु जब उन्हें सिद्धी की प्राप्ति नहीं हुयी तो वे अपने मार्ग से च्युत होकर लौट कर आ रहे थे। वे एक झील के पास पहुँचे, पानी पीने के लिये ज्यों ही उन्होंने कदम बढ़ाये सामने देखते हैं एक गिलहरी बार-बार अपनी पूँछ को पानी में भिगोती है और बाहर आकर झाड़ती है। उसे देखकर के

कुमार सिद्धार्थ के मन में विचार आया कि ये क्या खेल खेल रही है। उन्होंने गिलहरी से पूछा-तुम्हें यदि कोई ऐतराज न हो तो ये बताओ ये कौन सा खेल है, वह गिलहरी उसे टेढी निगाह से एक बार देखती है पुनः अपने काम में लग जाती है। दूसरी बार पूछा तो पुनः और तेज निगाहों से देखती है। तीसरी बार पूछा-तो बोली-इस झील ने मेरे बच्चों को खा लिया है। मैंने संकल्प लिया है कि मैं इस दरिया को सुखा कर ही रहूँगी। तब सिद्धार्थ ने कहा-क्या तुम्हें अपनी शक्ति का ख्याल भी है उसने कहा-हाँ मुझे बहुत अच्छी तरह से ख्याल है मैं वो सिद्धार्थ नहीं जो अपने संकल्प को तोड़ दे, मैं जीते जी इस कार्य को पूर्ण करके ही रहूँगी। इस बात को सुनकर के सिद्धार्थ को शिक्षा प्राप्त होती है और पुनः लौट जाते हैं वन की ओर व तपस्या में रत हो जाते हैं। कहते हैं वे साधना में संलग्न हुये और उन्हें बोधि की प्राप्ति हुयी।

संकल्प के सामने असंभव तो कुछ भी नहीं रहा। संकल्प लेना ही बहुत कठिन है, वह संकल्प एक ऐसा पहाड़ है इसे उठाने में कापुरुष व्यक्ति सफल नहीं होते। संकल्प एक ऐसा वज्र है जिसकी चोट को सहन कर पाना बहुत कठिन है। संकल्प सिंहनी के दूध की तरह से है जो लोहे के पात्र में टिकता नहीं, संकल्प का क्षीर स्वर्ण पात्र में ही टिकता है।

महानुभाव ! आपसे बस इतना कहना चाहता हूँ कि किसी भी अच्छे कार्य का संकल्प करें तो साहस के साथ आगें बढ़ें। प्रारंभ में आपको विरोध सहन करना पड़ेगा। लोग आपका मुखौल उड़ायेंगे, आपके लिये जितनी हो सकेगी उतनी प्रतिकूलता उपस्थित करेंगें किन्तु जब आप उन प्रतिकूलताओं से निकलकर आगे पहुँच जायेंगे तब वे ही लोग आपके चरणों में नतमस्तक हो जायेंगे और आपके पीछे चलने के लिये आतुर हो जायेंगे। किन्तु जब तक आप उन

विरोधियों से आगे नहीं निकलेंगे, विरोधियों को यह ज्ञात नहीं करा देंगें कि आपकी शक्ति विरोधी शक्तियों से बहुत ज्यादा है तब तक वे आपके उत्साह को, साहस को भंग नहीं कर सकते, आपके संकल्प का मुख नहीं मोड़ सकते। संकल्प की गाड़ी जब पटरी पर दौड़ती है तब विश्व की कोई भी शक्ति उसे रोकने में समर्थ नहीं हो पाती।

आप एक अच्छे इंसान बनिये, आप अपने जीवन को सुखद बनाना चाहते हो तो संकल्प लीजिये कि मैं जीवन में कभी किसी को दु:ख नहीं दूँगा, सताऊँगा नहीं। आप सभी लोग कभी-कभी जीवन में आयी किसी प्रतिकूलता से विक्षिप्त होकर, हार मान लेते हैं, कभी अनुकूलताओं को प्राप्त कर वहीं सुखद नींद लेने लगते हैं किन्तु संकल्प का धनी न तो प्रतिकूलताओं से हार मानकर अपने रास्तों को बदलता है और न कभी अनुकूलताओं की सेज पर फूलता है, वह तो आगे बढ़ता चला जाता है। जीवन में अनुकूलता प्रतिकूलता का कोई विशेष महत्व नहीं है वह समान रूप से दोनों को गिनता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है।

आप अपने जीवन में सम्यक् संकल्प को स्वीकार करें, संकल्प मात्र कंठ व मस्तिष्क में न हो अपितु वह रोम-रोम में हो। प्रत्येक विचार में हो, आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर हो तो हर सफलता आपकी मुट्ठी में है। आप सभी अपने सम्यक् लक्ष्य की पूर्ति में समर्थ हों ऐसी भावना भाता हुआ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

२३. ठहराव

वर्तमान काल में जहाँ भी दृष्टिपात करते हैं ऐसा लगता है सभी किसी प्रतिस्पर्धा में दौड़ रहे हैं। एक धावक अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये पूरी शक्ति लगाकर दौड़ता है, दूसरे धावक से जीतना चाहता है उसी तरह आज संसार के प्राणी दौड़ते हुये दिखायी दे रहे हैं। कोई पैसा कमाने के लिये दौड़ रहा है, कोई यश पाने के लिये दौड़ रहा है, कोई अपने वंश की वृद्धि के लिये बड़ा आतुर है, कोई चित्त की शांति के लिये सब जगह भ्रमण कर रहा है, कोई अन्य नाना प्रकार के मानसिक, काल्पनिक सुखों की निष्पत्ति करके उन्हें प्राप्त करने के लिये चंचल चित्त है।

यह चंचलता, यह क्रियाशीलता तब तक रहती है जब तक स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती। संसार में विद्यमान जितने भी द्रव्य हैं उनमें से चार द्रव्य तो निष्क्रिय हैं दो द्रव्य क्रियाशील हैं। जो 4 द्रव्य निष्क्रिय हैं वे अनादि काल से आज तक शुद्ध दशा में हैं, शुद्ध दशा में थे और शुद्ध दशा में ही रहेंगे। वे चार द्रव्य जो निष्क्रिय है उनकी सभी गुण द्रव्य पर्याय शुद्ध-शुद्ध हैं। वह अपने आप में परिवर्तन करते हुये द्रव्य की द्रव्यान्तर दशा को प्राप्त नहीं होते। उनका वह द्रव्यत्व गुण है जिनमें अपने आप परिणमन चलता रहता है। जैसे कोई व्यक्ति अपनी धुरी पर ही गमन करता रहे आगे न बढ़े।

किन्तु पुद्गल और जीव ये दो द्रव्य ऐसे हैं जो गतिशील हैं, वे बाहर से भी गतिशील हैं अंदर से भी गतिशील हैं। अंदर से गतिशील होना एक अलग बात है, बाहर से गतिशील होना अलग बात है। कई बार ऐसा देखा जाता है व्यक्ति बाहर से स्थायी हो जाता है किंतु अंदर में भूचाल आता रहता है। यदि अंदर में भूचाल आ रहा है और बाहर से स्थिरता है तो बाहर की स्थिरता अंतरंग की अशांति को शांत नहीं

कर पाती। कदाचित् बाहर की स्थिरता, बाहर की शांति अंदर की शांति के लिये निमित्त कारण बन जाये किन्तु नियामक संबंध नहीं है। यद्यपि जो बाह्य स्थिरता है वह दिखायी देती है, जड़ की तरह से, चाहे पाषाण है, चाहे वृक्ष है चाहे कोई व्यक्ति ही जड़वत् बैठ जाये किन्तु उसे प्रज्ञ और बुद्धजीवी नहीं कहा जाता।

महानुभाव ! कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति बाहर से भी दौड़ लगा रहा है और अंदर से भी दौड लगा रहा है। बाहर से दौड़ लगाता है लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये जिससे अंदर से परिणाम और ज्यादा सक्रिय होते चले जाते हैं। जो व्यक्ति बाहर से अपने आप को थामने में असमर्थ है तब वह अंदर कैसे थामेगा। क्योंकि पहले तो बाहर से थामना पड़ता है फिर अंदर से थामने में सफल हो सकता है। एक व्यक्ति दौड़ता चला जा रहा है वह चाहे कि वह अपने चित्त को शांत कर ले तो चित्त शान्त नहीं हो सकता। या यूँ कहें जैसे किसी बर्तन में दूध, पानी या कोई तरल पदार्थ है, कोई व्यक्ति उस बर्तन को हाथ में लेकर तेज गति से दौड़ता चला जा रहा है और दौड़ते-दौड़ते वह पदार्थ भी संचालित हो रहा है जब तक बर्तन स्थिरता को प्राप्त नहीं होगा तब तक उसमें रखा पदार्थ भी स्थिर नहीं होगा। इसी तरह हमारे और आपके चित्त जब तक अशांत हैं, व्याकुल हैं, चंचल हैं तब तक हम निःसंदेह शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकते। जीवन में आवश्यक है ''ठहराव''।

अनादि काल से आजतक हमने अपनी मंजिल को दौड़कर के प्राप्त करना चाहा है। दौड़कर के मंजिल प्राप्त नहीं की जाती है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपनी परछाई को दौड़कर के प्राप्त नहीं कर सकता, जितना ज्यादा दौड़ता है परछाई उतनी ही ज्यादा आगे दौड़ती चली जाती है किंतु जैसे ही ठहर जाता है तो परछाई भी ठहर जाती है। हम अपने स्वभाव को प्राप्त करना चाहते हैं, हमारा स्वभाव दौड़ना

नहीं है, ठहरना हमारा स्वभाव है इसलिये हमें ठहरना ही पड़ेगा। बाहर से भी ठहरना पड़ेगा, अंदर से भी ठहरना पड़ेगा, जब ठहर जायेंगे तब हम अपने आत्म वैभव को देखने में, निहारने में, प्राप्त करने में समर्थ हो पायेंगे और नहीं ठहरेंगे तो उसे देखने में, निहारने में, प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो पायेंगे।

जिस प्रकार कोई धावक तीव्र गति से दौड़ रहा है वह तीव्र गति से दौड़ता धावक सामने किसी बैठे व्यक्ति को देखता है तो सामने बैठा हुआ वह व्यक्ति उसे पहचान में नहीं आता, ऐसा लगता है कोई है, कई बार तीव्रता से दौड़ता है तो ये समझ भी नहीं आता कि कोई आदमी है या पाषाण का टुकड़ा। किन्तु जब स्थिर खड़े होकर देखता है तब उसे व्यक्ति भी पहचान में आता है और उसके लक्षण गुण आदि के बारे में समीक्षा कर पाता है। वर्तमान काल में जो व्यक्ति दौड़-दौड़ कर सुख और शांति प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिये परम पूज्य आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी जी ''अध्यात्म अमृत कलश'' में कहते हैं-

विरम किं परेण कार्य कोलाहलेण,
अयमपि निभृत सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदय सरसि पुंसां पुद्गलाद् भिन्न धाम्नो,
ननुकिमनुपलब्धि भाति किं चोपलब्धिः॥

हे भव्य जीव ! विराम लो। दूसरों के द्वारा किये जाने योग्य कार्यों से तू अपने चित्त में कोलाहल क्यों कर रहा है। अरे ! तू अपने चित्त को शान्त करना चाहता है, चित्त की शांति चित्त को अशांत करके नहीं मिलती है। जैसे कोई बालक एक लकड़ी की डंडी लेकर किसी तालाब गड्ढे आदि में भरे पानी को उससे हिलाता है तो लकड़ी भी हिल रही है पानी भी हिल रहा है। लकड़ी चाहे कि मैं शांत हो जाऊँ तो जब तक वह स्वयं हिलना न बंद करेगी जब तक वह शांत नहीं

हो सकती और पानी जब तक हिलना न बंद करे तब तक पानी भी शाँत नहीं हो सकता। ऐसे ही दूसरों के निमित्त से हम अपने चित्त में कोलाहल पैदा करते हैं। जैसे जल ने लकड़ी के निमित्त से व हवा के निमित्त से अपने में तरंग पैदा की, कोलाहल पैदा कर लिया अब वह जल अशांत है वैसे ही मानव का चित्त अशांत है। चाहे वह किसी से मोह करके अपने चित्त को अशांत करता है, चाहे किसी से राग करके अपने चित्त को अशांत करता है, चाहे द्वेष की भावना से परिपूर्ण होकर चित्त को अशांत कर लेता है, चाहे कषायों के आवेग में उसका चित्त अशांत हो जाता है।

जब-जब भी उसका चित्त मलिन और उत्तेजित होता है तब-तब वह अपने स्वरूप को और रूप को निहारने में असमर्थ हो जाता है क्योंकि चित्त में अशांति जोश के कारण आती है और जोश यदि होश से रहित होता है तब नि:संदेह वह विध्वंसक होता है, वह प्राणी मात्र का पतन करने वाला होता है इसलिये प्रभु परमात्मा से प्रार्थना करो कि-हे प्रभु ! यदि हमें जीवन में जोश देना तो उससे पहले हमें होश देना।

क्योंकि होश के बिना हमारा जीवन पतनोन्मुखी हो जायेगा। होश के बिना हमारा जीवन स्व-और पर के विनाश का कारण बन जायेगा, नि:संदेह दु:खों का कोश बन जायेगा इसीलिये जीवन में होश की भावना पहले रखना, जोश का प्रयोग बाद में करना। किन्तु प्राय:करके यह देखा जाता है जिसके पास जोश होता है उसके पास होश नहीं होता क्योंकि बाल्यावस्था और युवावस्था जोश से परिपूर्ण होती है। व्यक्ति जोश में आकर बड़े-बड़े कार्य करने का संकल्प लेता है, जोश में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है, जोश में आकर ऐसा व्यवहार दूसरों से करता है जिसे अत्याचार अनीति भी कह सकते हैं। जोश में आकर के व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री कर देता है। वह नि:संदेह

उस जोश में अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है। किन्तु प्रौढ़ अवस्था के उपरांत जैसे ही जीवन में वृद्धावस्था का प्रारंभ होता है तब व्यक्ति को होश आने लगता है।

क्यों आने लगता है? जिस व्यक्ति ने जीवन में अनेकों ठोकरें खायी हैं वह संभल-संभल कर चलता है उसका जोश ठंडा होने लगता है, होश आने लगता है। किन्तु जिसका जोश ठंडा पड़ जाता है उसके पास अकेला होश ही होश है तब भी वह अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच सकता, उसे मंजिल तक पहुँचने के लिये होश के साथ जोश में चलना पड़ेगा। किन्तु अब आचार्य महोदय कहते हैं कि अब जोश को भी छोड़ो पहले जोश था होश नहीं था फिर जोश और होश दोनों मिले, अब जोश को भी छोड़ो होश-होश में ही रहो। जोश जब तक रहेगा तब तक तुम्हें शांति से नहीं बैठने देगा और जोश ज्यों ही चला जायेगा अकेला होश शुद्ध दशा को प्राप्त हो जायेगा तब तुम ज्ञाता दृष्टा बनकर के अपने आत्मा के वैभव को निहारने में समर्थ हो सकोगे। जिस प्रकार गंदे जल में अपना चेहरा नहीं देखा जा सकता, उसी प्रकार मलिन चित्त में अपने आप को नहीं निहारा जा सकता। जिस प्रकार उबलते पानी में अपना चेहरा नहीं देखा जा सकता उसी प्रकार कषायों से उत्तेजित चित्त में भी अपना चेहरा नहीं देखा जा सकता। जैसे जल से भरा कोई बर्तन ढका है उस ढके बर्तन में अपना चेहरा नहीं देखा जा सकता उसी प्रकार मोह रूपी आवरण के रहते आत्मा को आत्मा में कभी नहीं देखा जा सकता, इसके लिये आवश्यक है बर्तन के ढक्कन को दूर करो अर्थात् पहले मोह को दूर करो। पानी बर्तन में यदि उबल रहा है तो पहले उसे शांत होने दो या गंदगी पड़ी है तो पहले उसे शांत होने दो क्योंकि चंचल जल कभी निर्मल नहीं होता, चंचल जल मलिन होता है। मलिन चाहे जल हो या चित्त हो वह प्रतिबिम्ब को प्रकट करने में असमर्थ होता है।

इन सबके लिये आवश्यक है जीवन में 'ठहराव'। आचार्य भगवन् कह रहे थे-कोलाहल के कार्य से विराम लो। दूसरों के लिये तू कोलाहल देने वाला है और दूसरों को अपने कोलाहल में निमित्त बनाने वाला है। अरे दूसरों से तू विमुख हो जा, विराम ले ले तो तेरे चित्त का कोलाहल शांत हो जायेगा। प्राणी के जीवन में लगभग 80-90% दुष चिंतायें, विकल्प दूसरों के निमित्त से आते हैं स्वयं के निमित्त से नहीं आते और यूँ भी कह दिया जाये कि लगभग 99% विकल्प पर के लिये होते हैं, स्व का विकल्प नहीं, एक प्रतिशत स्व का विकल्प बनाया जा सकता है और यदि गहराई में जाकर के देखें तो स्व का विकल्प तो कभी आता ही नहीं है। स्व के बारे में तो संकल्प होता है। विकल्प 'वि' अर्थात् सदैव दो के साथ होता है, जब अपने साथ दूसरे को जोड़ दिया जाता है तो वह विकल्प बन जाता है।

एक महात्मा जी ने अपने शिष्य को भेजा कि शुद्ध निर्मल जल लेकर आओ। वह शिष्य नदी किनारे पहुँचा। उस नदी से कुछ समय पहले ही कुछ जंगली पशु स्नान करके गये थे इसलिये नदी का जल मलिन हो रहा था। वह शिष्य उस घाट पर चारों तरफ देखता है कि जल तो चारों ओर गंदा ही है इसलिये बिना जल लिये ही वहाँ से चला जाता है। लौटकर पहुँचा, गुरु जी ने पूछा-जल लेकर आ गये-वह बोला नहीं गुरुदेव। पूछा-क्यों क्या हुआ? वह बोला-वहाँ सब जगह पानी मलिन था, आपके लिये मलिन जल लाना व्यर्थ था तो मैं नहीं लाया। गुरुजी ने कहा-कल जब मैं गया था तब तो शुद्ध जल था। वह बोला-हाँ गुरुदेव कल था पर आज नहीं है। गुरु ने कहा-गर तू वहाँ ठहर जाता, इंतजारी करता वह मलिन जल भी निर्मल हो जाता। यदि मलिन जल को भी ले आता तो पात्र को यहाँ रखकर के उसकी गंदगी नीचे जम जाती और वह जल निर्मल हो

जाता। ऐसे ही हमारा चित्त अनादिकाल से मलिन है इसमें प्राय:कर के कर्म के उदय के कारण मलिनता आती रहती है, कषायें उसे मलिन करती रहती हैं। हम थोड़ी देर के लिये शांत बैठ जाते हैं तो हमारा चित्त निर्मल होने लगता है जैसे फिटकरी को डालने से जल की कीचड़ जम जाती है वैसे ही कषायों के शांत होने से उपशम भाव होने से हमारा चित्त भी शांति को प्राप्त हो जाता है।

आवश्यक यही है ठहराव। हम दौड़ते हैं खूब दौड़ते हैं दौड़कर बाहर की वस्तुयें प्राप्त की जा सकती हैं किन्तु दौड़कर के जो वस्तु हमारे पास है उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। माना कि किसी व्यक्ति की पॉकिट में कोई वस्तु रखी है वह उसके ऊपर अन्य-अन्य वस्त्र पहने हुआ है। वह उस वस्तु को निकालना चाहता है किन्तु लगातार दौड़ रहा है तो उसे पहले अपनी दौड़ बंद करनी पड़ेगी। दौड़ता हुआ वह अंदर हाथ डालकर निकाल नहीं सकता है रुकना ही पड़ता है। ऐसे ही अपनी आत्मा के अंदर जो गुण विद्यमान हैं उन्हें दौड़कर के कैसे प्राप्त कर सकते हैं। जितनी तेज दौड़ लगायी जाती है उतनी ही बाधा अपनी वस्तु को प्राप्त करने में होती है।

आपने देखा होगा जब कोई ट्रेन बहुत स्पीड से चलती है तो उसमें बैठे व्यक्तियों को ऐसा लगता है कि सामने वाला भी दौड़ रहा है। वृक्ष भी दौड़ रहे हैं, पहाड़ भी दौड़ता दिखाई दे रहा है किन्तु सत्यता यह है जब व्यक्ति स्वयं दौड़ता है तो उसे सामने वाला व्यक्ति भी दौड़ता दिखायी देता है। बाल्यावस्था में जब आप सब चन्द्रमा की चाँदनी में चलते थे तो आपको लगता था आपके साथ चन्द्रमा भी चल रहा है किन्तु सत्यता यह है चन्द्रमा आपके साथ नहीं दौड़ रहा वह तो अपनी गति से चल रहा है, किन्तु आपको लग रहा है कि मेरे साथ-साथ दौड़ रहा है। जो व्यक्ति स्वयं चलायमान है उसे सारी दुनिया भी चलायमान दिखायी देती है किन्तु जो व्यक्ति स्थिर हो

जाता है उसे स्पष्ट बोध हो जाता है कि संसार के कौन से पदार्थ चलायमान हैं, कौन से पदार्थ स्थिर हैं।

बचपन में गोल-गोल घूम कर चक्कर लगाते हुये जब रुकते थे तो सब कुछ घूमता हुआ दिखायी देता था या नृत्य करके रुके तो सब कुछ घूमता सा नजर आता था। आप और हम सभी संसार में अनादि काल से चक्कर लगा रहे हैं परिभ्रमण कर रहे हैं, हम बार-बार जन्म मरण करते हैं बार-बार चक्कर लगाकर इन चक्करों को दूर नहीं किया जा सकता। एक जगह कहीं शांति से बैठ जायें, और शांति से कहीं ऐसी जगह बैठे जहाँ चक्कर नहीं लगाना पड़ रहा हो, तब तो शांति मिल सकती है। आप कहें निगोद की दशा में बैठ जायें, वहाँ तो जन्म-मरण हो रहा है। झूले में बैठकर तो चक्कर और आयेंगे उस निगोद में तो जन्म मरण के चक्कर लगा ही रहे हैं। आप कहें मनुष्य अवस्था में, देव अवस्था में हम शांति से बैठे हैं तो ऐसा भी नहीं है। केवल शांति शरीर की नहीं चित्त की भी शांति होना चाहिये। जो व्यक्ति अंदर में ठहर जाता है तो निर्मलता अपने आप आने लगती है और बाह्य निमित्त भी फिर अपना प्रभाव दिखाने में समर्थ नहीं हो पाते।

यदि आप भी अपने जीवन में सुख शांति चाहते हैं तो मैं तो आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि थोड़ा 'ठहरो'। विद्यार्थी यदि उतावलेपन में किसी विषय को पसंद करता है, फिर बाद में सोचता है मैंने अच्छा नहीं किया, दूसरा ले लेता तो ठीक रहता, या व्यापारी किसी उतावलेपन में कोई माल खरीदता है बाद में उस वस्तु के भाव गिरने पर पश्चाताप करता है, कृषक उतावलेपन में यदि खेत में बीज बोता है बाद में बारिश नहीं आती तो पश्चाताप करता है कि उस समय बीज नहीं बोया होता तो ठीक रहता, इसकी जगह दूसरा बीज बो दिया होता तो ठीक रहता या कोई युवा क्षणिक प्रेम में पड़कर

गलत जीवन साथी को स्वीकार करके बाद में पछताता है कि शायद पहले ठहर जाता तो आज पछताना नहीं पड़ता। तो जीवन में जल्दबाजी करने पर पछताना ही पड़ता है।

'उतावला सो बावला'। जल्दबाजी में काम नहीं करना है अत: ठहरो। जहाँ भी दौड़ रहे हो वहाँ ठहरो एक बार मंजिल को देख लो तुम्हें कहाँ जाना है। रास्ता तुम्हारा सही है या गलत। यदि गलत रास्ते पर दौड़ रहे हो तो पुन: लौटने का साहस न जुटा पाओगे। मार्ग में बार-बार अवलोकन करते रहो, पृच्छना करते रहो कि क्या मैं सही रास्ते पर चल रहा हूँ या गलत पर। यदि चार कदम गलत रास्ते पर पड़े हैं तो वे चार कदम तो लौटाये जा सकते हैं, 400 कि.मी. यदि गलत रास्ते पर चला गया तो वहाँ से लौटना बड़ा मुश्किल होता है। जो व्यक्ति एक बार संग्रह कर लेता है वह संग्रह की हुयी वस्तु को नष्ट नहीं करना चाहता। चाहे वह भले ही उसके लिये दु:ख की सामग्री ही क्यों न हो। जिस मंजिल को प्राप्त करने के लिये वह घर से चला था, यदि वह उस रास्ते पर न चलके उसके विपरीत चलता है तो मंजिल से दूरी बढ़ जाती है। पुन: वह उस मंजिल की ओर चलने का भाव ही छोड़ देता है, साहस छोड़ देता है फिर गलत मंजिल को ही पसंद करना पड़ता है।

इसीलिये आप सभी लोग समय के रहते हुये ठहरें। साधना के क्षेत्र में उतरना चाहते हैं तो पहले ठहरें, कुछ शब्द बोलना चाहते हैं तो पहले ठहरें, कोई कार्य करना चाहते हैं तो पहले ठहरें। इसका आशय हमारे आचार्यों ने कहा है-''विस्संतो'' जैसे सम्यक् को प्राप्त करने के पूर्व भी विश्रांति दी जाती है ऐसे ही कोई कार्य प्रारंभ करने के पहले सोच-विचार करना पड़ता है। ये उपदेश सभी माता-पिता देते हैं-''बेटा देख भाल कर चलो'' अर्थात्-चलो तो सही किन्तु पहले देखो और सोचो समझो, भालो अर्थात् ठहरना। यदि बोलना भी है तो

पहले ठहरो, शांत चित्त से सोचो कि मुझे क्या बोलना है मेरे बोलने का प्रभाव क्या होगा, अच्छा होगा या बुरा मेरे लिये भी व दूसरों के लिये भी। नीतिकार कहते हैं-

बिना विचारे जो करे सो पांछे पछताये
काम बिगाड़े आपनो जग में होत हंसाय॥

जो बिना विचारे कार्य करता है वह नि:संदेह पश्चाताप को प्राप्त होता है और जो सोच विचार कर काम करता है, ठहर कर काम करता है वह पश्चाताप नहीं करता। दूसरी बात यह भी है ठहरने से ऊर्जा आती है निरन्तर गतिशीलता होने से ऊर्जा नष्ट होती है। पुन: विश्रांति करने पर स्फुर्ति आती है, नया उत्साह, उमंग उल्लास आता है तो कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है।

एक युवा मजदूर जंगल में लकड़ी काटने के लिये गया, उसने पहले दिन में लगभग 10 सूखी लकड़ियाँ काटी। किन्तु दूसरे दिन सोचता है मैं 12 लकड़ी काटूँगा और बड़े उत्साह के साथ कार्य प्रारंभ किया, समय भी ज्यादा लगाया किन्तु 12 लकड़ी नहीं काट पाया मात्र 8 लकड़ी काट पाया। तीसरे दिन छ: लकड़ी, चौथे दिन 4 लकड़ी, पाँचवें दिन दो ही लकड़ी काट पाया। उसका उत्साह भी बढ़ा हुआ है, मेहनत भी ज्यादा कर रहा है, समय भी ज्यादा लग रहा है किन्तु क्या हुआ लकड़ी 10 से 12, 16, 14 नहीं हो रही किन्तु वे 10 से 8,6,5 रह गयीं क्या हुआ? हुआ ये कि उसने अपनी कुल्हाड़ी पर धार नहीं दी, यदि धार दे देता तो उसकी लकड़ी काटने की क्षमता और बढ़ जाती। ऐसे ही जीवन में जो ठहराव होता है यदि उसके साथ काम किया जाता है तो शक्ति आती है, उत्साह बढ़ता है और कार्य भी जल्दी से हो जाता है। जो व्यक्ति निरन्तर दिन-रात कार्य करते रहते हैं उनकी कार्य क्षमता घटती चली जाती है, यदि बीच में घंटे 2 घंटे विश्राम करके काम करें तो वह उससे ज्यादा कार्य कर लेते हैं जो व्यक्ति निरन्तर कार्य कर रहा है।

महानुभाव ! हमें शक्ति का संचय करने के लिये बीच-बीच में विश्राम की आवश्यकता है। कोई भी ऐसा मार्ग नहीं है जिसमें विश्राम नहीं आते हो, चाहे कोई पगडंडी का मार्ग हो, चाहे राजपथ हो, चाहे जीवन का मार्ग हो प्रत्येक मार्ग में बीच-बीच में विश्राम गृह होते हैं। वे विश्रामगृह इसीलिये बनाये जाते हैं कि आप विश्राम करो, अपनी थकान को दूर करो क्योंकि थकान आपकी शक्ति को नष्ट करने वाली है और विश्राम आपको नव शक्ति/नवऊर्जा देने वाला है, आपके प्रदेशों में सचार करने वाला है इसलिये जीवन में ठहराव बहुत जरूरी है। जो व्यक्ति ठहरते नहीं हैं वे फिर स्थायी रूप से पतित हो जाते हैं मार्ग में चलने लायक भी नहीं रह पाते उनकी मंजिल बहुत दूर रह जाती है। इसलिये आचार्य महोदय के शब्दों में-

अरे भोले प्राणी तू इस संसार के कार्यों को छोड़कर अपने शरीर को पड़ौसी मानकर के एक बार मेरे पास आजा। छः महीने इस शरीर को पड़ौसी मानकर के सब कार्यों से विराम ले ले। गर तुझे आत्मा का दर्शन न हो तब कहना। किन्तु यह सब बात ठहरने पर ही संभव है। बिना ठहरे नहीं।

तो आज बस यही आपसे कहना है-ठहरें, जीवन में जल्दबाजी न करें ठहरकर निःसंदेह मंजिल की प्राप्ति का साहस उत्साह, विश्वास बढ़ेगा अन्यथा आप भटक जायेंगें। इतना ही कहकर अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

२४. सहनशीलता

किसी भी व्यक्ति के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिये उसके लक्षणों को देखा जाता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके लक्षणों पर निर्भर होता है, लक्षण दो प्रकार के होते हैं, एक आत्मभूत और एक अनात्मभूत। अनात्मभूत लक्षण चल लक्षण होते हैं आज हैं तो कल नहीं किन्तु आत्मभूत लक्षण दीर्घकालीन होते हैं। आत्मभूत लक्षणों के माध्यम से ही विवेकी बुद्धिमान् एक दूसरे की पहचान करते हैं। अनात्म भूत लक्षणों से या क्षणिक पर्याय से अल्पज्ञ, मूर्ख किसी वस्तु या व्यक्ति की पहचान करते हैं। पहले एक जमाना था व्यक्ति की परख करने के लिये कहते थे उसके पास जाना जरूरी है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को जानने के लिये उसके साथ रहना जरूरी है कहावत है-

''सोना परखो कसे और मानव परखो बसे''

सोने को कसकर परखा जाता है मात्र दूर से देखकर नहीं, मानव को दूर से देखकर नहीं परखा जाता उसके साथ रहकर के परखा जाता है। कसौटी के पाषाण पर कसकर ही सोने की परीक्षा होती है ऐसे ही मानव की परीक्षा मात्र उसकी बोली से नहीं हो जाती। पहले परीक्षा लेने का तरीका था रहन-सहन देखकर के लड़की वाले अपनी कन्या के लिये वर देखने जाते थे। लड़के व उसके परिवार का पहले रहन-सहन देखा जाता था किन्तु आज परम्परा बदल गयी है, रहन सहन व्यक्ति बाद में देखता है कहन-सुनन ज्यादा देखता है। सामने वाले के बारे में क्या सुनने में आ रहा है, वह क्या बोलता है, क्या कहता है। कहन-सुनन जहाँ पर देखा जाता है वहाँ पर कहा-सुनी होती रहती है, किसी ने कहा, किसी ने सुना, तो वह कहा-सुना स्थायी नहीं है किन्तु रहन सहन अपनी स्थायी छाप छोड़ने वाला होता है।

महानुभाव ! रहना है तो सहना है, जो भी रहा है उसने सहा है और जो भी रहेगा वह सहेगा। आज भी जो रहता है सो सहता है। सहने वाला व्यक्ति रहने में सक्षम होता है किन्तु जो व्यक्ति कहने वाला होता है वह व्यक्ति रह नहीं सकता, बह जाता है। जैसे हवा कहकर के बह गयी, जिस प्रकार नदी का झरना अपनी आवाज में कुछ कहकर के बह गया, जो कहता है वह टिक नहीं पाता बह जाता है। आपने देखा होगा किन्हीं दो व्यक्तियों में झगड़ा होता है तो उनमें से कोई अपनी ऊँच-नीच बात कहकर के वहाँ पर टिकता नहीं है वहाँ से जल्दी चला जाता है और जो व्यक्ति कहता नहीं है सुनता है, चुपचाप सहता है वह वहाँ पर बना भी रहता है और उसका कोई बाल बांका भी नहीं करता। यदि कहकर के व्यक्ति वहाँ रहना चाहेगा तो पिटेगा इसलिये जीवन में आवश्यक है सहना।

सहन करना प्रत्येक अच्छे मनुष्य का कर्त्तव्य ही नहीं धर्म भी है। सहन करना अच्छे पुरुष की पहचान है, सहनशीलता धर्मात्मा का लक्षण है या यूँ कहें सहनशीलता आत्मकल्याण की आधारशिला है। जो व्यक्ति सहनशील होता है वही दूसरों का उपकार करने में समर्थ होता है, जो सहनशील होता है वही अपने कर्मों को नष्ट करने में समर्थ होता है, वही उत्कृष्ट वस्तु को भोग करने में समर्थ होता है। जो सह नहीं पाता, जो अपने आप में रह नहीं पाता ऐसा व्यक्ति नष्ट हो जाता है या दुनिया, जमाना उसे नष्ट कर देता है। क्योंकि जमाना कहने वालों के साथ नहीं रहता, जमाना तो उसके साथ रहता है जो जमाने की सहता है और जमाने के बीच में फिर भी रहता है। जमाना उसे नहीं रहने देता जो जमाने में आकर के अपनी जमाने के लिये कहता ही कहता है, उसे जमाना रहने नहीं देता कहता है बस जा।

'सहनशीलता' यह शब्द भी अपने आप में कह रहा है कि सहन व शील अर्थात् प्रकृति/स्वभाव/गुण। आत्मा का स्वभाव है सहन

करना, उस स्वभाव को नष्ट कैसे किया जा सकता है। सहन तो संसार का प्रत्येक प्राणी करता है, कोई अपनों को सहन करता है, कोई परायों को सहन करता है। कोई स्वाधीन होकर सहन करता है कोई पराधीन होकर सहन करता है। कोई रो-रो करके सहन करता है, कोई हँस-हँस करके सहन करता है। कोई सहन कर रहा है दूसरों को कष्ट देकर के, तो कोई सहन कर रहा है दूसरों के कष्ट मेट करके। सहन दोनों ने किये, दोनों के सहन करने में इतना अंतर रहा कि जिसने दूसरे को कष्ट देकर सहन किया है उसने आगे अपने लिये ही पाप का बंध किया और दूसरे के लिये भी पाप बंध में निमित्त कारण बन गया, और जिस व्यक्ति ने दूसरे के कष्ट को नष्ट करके अपने कष्ट को सहन किया उस व्यक्ति ने अपने भी पाप कर्म को नष्ट किया है और दूसरों के पाप कर्म की निर्जरा में भी कारण बना है। तो सहन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

देखो-जीवन में चाहे कोई और कला आये या न आये अपने जीवन को सुखी व शांतमय बनाना चाहते हो तो जीवन में केवल एक बात सीख लो वह है-निभना और निभाना। जहाँ कहीं भी चले जाओ उस माहौल में निभने का प्रयास करो चाहे माहौल तुम्हारे प्रतिकूल ही क्यों न हो। क्योंकि तुम प्रतिकूल माहौल को प्रतिकूल दिखाना चाहोगे तो उससे तुम्हारी ही संक्लेशता बनेगी। यदि प्रतिकूल माहौल में भी तुम अनुकूल माहौल दिखाने का प्रयास करोगे तो पुनः तुम्हारे लिये कोई प्रतिकूलता पैदा कर नहीं सकता। इसलिये निभना और निभाना। यदि तुम किसी दूसरे के पास पहुँच गये, वह तुम्हें अपने पास रखना नहीं चाहता, तुम्हारे लिये वह बार-बार प्रतिकूलता उपस्थित करता है किंतु आपने उसे निभा लिया। कई बार ऐसा भी तो होता है कि तुम्हारे माध्यम से दूसरे व्यक्ति को प्रतिकूलता हो रही हो, ऐसा भी हो सकता है कि दूसरा व्यक्ति भी तुम्हें निभा रहा है तो तुम निभ जाओ। वह

सोच रहा है जैसे-तैसे मेरे पास रहने के लिये आया है, 4 दिन बाद चला जायेगा, 4 दिन मैं इसे निभा लूँगा। वह निभा रहा है तो उसके साथ अति मत करो तुम भी निभने का प्रयास करो। और तुम्हारे पास कोई रहने के लिये आया है तो उसे निभाने का प्रयास करो। जो निभता और निभाता है नि:संदेह वह सबको भाता है। जो निभता और निभाता है वह वास्तव में गुण के कोष को पाता है, वही स्वकीय ध र्म को प्राप्त करता है, वही सिद्धालय को जाता है। जो निभता और निभाता है वही नियम से उत्तम सुख को पाता है।

निभने और निभाने की कला सर्वश्रेष्ठ कला है। अन्य कलायें सीखने वाला व्यक्ति कभी-कभी सड़क पर भी दिन रात गुजारता है, चाहे कोई भी हुनर हो अच्छे से अच्छे हुनर वाला व्यक्ति चाहे अच्छी मूर्ति बनाने वाला, अच्छा मकान बनाने वाला, अच्छा वस्त्र बनाने वाला या कोई भी हुनर वाला व्यक्ति हो वह चौराहे पर पड़ा रहता है, फुटपाथ पर भी रात व्यतीत करता है किन्तु जिस व्यक्ति के पास निभाने और निभाने की कला है वह व्यक्ति फुटपाथों पर या जंगल में जिंदगी नहीं गुजारता, उसे सब चाहते हैं वह किसी के भी घर में प्रवेश कर जाये सभी उसे सम्मान से अपने घर में बिठालते हैं। एक झोंपड़ी में दो व्यक्ति की जगह है, और दो व्यक्ति वहाँ पहले से हैं किन्तु जिसके पास निभने व निभाने की कला है वह झोंपड़ी के सामने पहुँच जायेगा तो झोंपड़ी वाले उसे बुला लेंगे कहेंगें-आओ भईया तुम भी अंदर बैठो, हम दोनों सीमित जगह में सो तो नहीं सकते किन्तु हम दोनों बैठकर के रात्रि व्यतीत कर सकते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि ये निभना निभाना जानता है, ये आकर के हमारी झोंपड़ी पर कब्जा नहीं करेगा, यह हमारे कष्ट को भी समझता है और इसका भी कष्ट हमारे पास आकर दूर हो जायेगा।

जो सहन कर लेता है वह अपनी आत्मा में रह लेता है आचार्यों ने लिखा है-जो योगी परीषहों को, उपसर्गों को सहन करने में समर्थ

होता है ऐसा योगी ही अपनी आत्मा में निवास कर पाता है। जिस योगी की क्षमता उपसर्ग, परीषहों को सहन करने की नहीं है ऐसा योगी चाहे कितना ही उत्कृष्ट तप कर ले किन्तु वह अपनी आत्मा में लीन नहीं रह पाता है क्योंकि उसका चित्त चंचल हो जाता है, उसके मन में बार-बार विक्षिप्तता आती है। संसार तो चित्त को क्षुब्ध करने वाला है, संसार में ऐसे अनेक निमित्त भरे पड़े हैं कि जिनके माध्यम से आपके चित्त रूपी जल में तरंगे उठती रहें। संसार का वातावरण, संसार की हवा ऐसी है जिससे चित्त में हर पल, हर क्षण, हर दम विचारों की तरंग उठती रहती है, विक्षोभ की तरंग उठती रहती हैं किन्तु जो व्यक्ति सहनशील है, उस हवा के वेग को सहन कर जाये, वही अपने आप में रह सकता है, क्योंकि तरंग ऊँची उठती है फिर डूबती है वह अपने आप में रह नहीं पाती।

जैसे किसी पात्र में रखा हुआ जल यदि हवा का वेग आता है तो जल बहुत ऊँचा उठता है और पात्र के बाहर भी चला जाता है ऐसे ही कोई व्यक्ति किसी वेग में आकर के आपे से बाहर हो जाता है तो समझो वह सहन नहीं कर पा रहा है, आपे से बाहर चले जाना अपना अहित करना है जैसे पात्र में रखा जल जब पात्र के बाहर जाता है तो नष्ट हो जाता है ऐसे ही कोई व्यक्ति अपने आपे से बाहर जाता है, सहन नहीं कर पाता तो अपने गुण, धर्म, स्वभाव आदि को नष्ट कर देता है। सहन करने वाला व्यक्ति स्वयं के गुणों की तो रक्षा करता ही है साथ ही दूसरों के सद्गुणों को ग्रहण कर लेता है। क्योंकि कोई भी अच्छा व्यक्ति उसे ही अपने गुण व संस्कार देना चाहेगा जिसके पास सहनशीलता है जिसके पास निभने और निभाने की सामर्थ्य है, जो सज्जन है तथा सौहार्द्रता से परिपूर्ण है।

जिस व्यक्ति में क्षोभ भरा हुआ है, क्रुद्ध है, सहन नहीं करता मात्र कहना ही जानता है और कहता है मैं बिना कहे मानूँगा ही नहीं

ऐसा व्यक्ति कभी अपने जीवन में उत्तम उपलब्धि को प्राप्त नहीं करता। जो व्यक्ति सहन करता चला जाता है नि:संदेह वह व्यक्ति सहता सहता बहुत ऊँचाई तक पहुँच जाता है। पैर की चोट खाकर के, धूल व्यक्ति के सिर पर बैठने की अधिकारिणी बन जाती है और जो धूल पैर की चोट नहीं खा सकती वह नीचे ही दबी रहती है। ऐसे ही जो पाषाण शिल्पी के हाथ की चोट, हथोड़ा की चोट खा सकता है छैनी से उसकी काँट छाँट-सहन कर सकता है और वह भी मूक साध क की तरह से तो ऐसा वह पाषाण सहन करता-करता मूर्ति का रूप ले लेता है। शिल्पकार अपने भावों को उसमें भर देता है, कोई आचार्य महोदय उसमें सूरिमंत्र देते हैं और इन्द्र का रूप बनाकर श्रावक उसकी प्रतिष्ठा करते हैं, तब वह पाषाण भगवान् के रूप में अवतरित होता है, फिर उसे कोई पाषाण नहीं कहता अब तो उसे भगवान् कहते हैं। क्योंकि उसने सहन किया। सहन करने से जब एक पाषाण भगवान् बन सकता है तो सहन करने से वह इंसान भगवान् क्यों नहीं बन सकता।

भाई ! सहन करना सीख लो, इससे तुम्हारे ही घर में स्वर्ग है। सहन करना सीख लो तो तुम स्वयं सुख के भण्डार हो, तुम्हारे पास अथाह शांति है क्योंकि तुम्हारे पास वह कुँआ भरा है। तुम सहन करना नहीं जानते इसलिये वह कुँआ पेट्रोल बन जाता है। सहन करना सीख जाओ तो वह तरल पदार्थ पेट्रोल न बनकर जल बन जायेगा, नीर बन जायेगा इससे बड़ी शांति आयेगी। उत्तेजना से ही वह जल पेट्रोल का काम करता है जब उसमें कोई भी व्यक्ति चिंगारी लगाता है, निमित्त बन जाता है तुम्हारी कषाय को उत्तेजित करने के लिये तो तुम्हारे अंदर से ज्वाला धधकने लगती है, उस स्वयं की ज्वाला से तुम स्वयं जलते हो और तुम्हारे समीपस्थ भी उस ज्वाला के शिकार बन जाते हैं, इसलिये जीवन में सहन करना सीखो।

228

पाषाण भी आपको शिक्षा दे रहा है कि सहन करो, मैंने सहन किया अब मैं इस मंदिर में तब तक रहूँगा जब तक ये मंदिर रहेगा। मंदिर यदि जीर्णशीर्ण हो जायेगा तो लोग मंदिर का जीर्णोद्धार करेंगे मेरी मूर्ति खण्डित भी हो गयी तब भी लोग मेरी पूजा करते रहेंगे क्योंकि मैंने सहन किया है। जितना सहन मैंने किया है उतना सहन मंदिर ने नहीं किया। जो जितना सहन कर पाता है उतना वह टिक पाता है जैसे झोंपड़ी तेज आँधी सहन नहीं कर पाती, पानी बरसा तो चूने लगती है जल्दी टूट जाती है किंतु मंदिर वह सब कुछ सहन करता है इसलिये सालों साल टिका रहता है।

महानुभाव ! यदि आप भी सहन करोगे तो मंदिर के भगवान् की तरह पूजे जाओगे और आपने यदि कहना शुरू कर दिया तो मेढ़क की तरह से आपको उठाकर फेंक दिया जायेगा या कौवे की तरह से बोलना प्रारंभ करोगे तो पत्थर फेंक कर उड़ा दिये जाओगे इसीलिये कहना नहीं सहना सीखो। कहने से ज्यादा सुनना सीखो और दूसरों को जो सहन करवाना चाहते हो उससे ज्यादा स्वयं सहना सीखो। दूसरों को सहन करने का उपदेश देने से ज्यादा स्वयं सहना सीखो। दूसरों को सहन करने का उपदेश तो बहुत देते हो किन्तु जब तक हम स्वयं अपने जीवन में सहन नहीं करेंगे तब तक हमारे शाब्दिक उपदेश का भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। उपदेश तो वास्तव में जीवन से दिया जाता है जीभ के द्वारा दिया गया उपदेश केवल कानों तक पहुँचता है, शब्द कण्ठ में व मस्तिष्क में याद रहते हैं किन्तु जीवन्त उपदेश जीवन पर्यन्त अपना प्रभाव डालता है। आपकी और हमारी सहनशीलता किसी के चित्त में एक बार जम जाये तो जब तक वह शरीर रहता है तब तक छूटती नहीं है यहाँ तक कि कालान्तर में भी काम देती है।

सहन करना है तो ऐसे सहन करो जैसे मिट्टी सहन करती है। कुम्भकार उस मिट्टी पर प्रहार करता है फावड़े का, कुदाली से

बार-बार बेरहमी से वार करता जा रहा है वह माटी मूक बनकर सहन करती जा रही है कहती कुछ नहीं बस मूक रहकर सहती ही सहती है। यही तो एक साधक की साधना है क्योंकि व्यक्ति सहकर के भी कह देता है, अरे यहाँ तो बताया है कहना नहीं है, सहकर के भी नहीं कहना और बिना सहे भी नहीं कहना है, कहना ही नहीं है। जो कहता है वह एक मुख से कहता है और जो सहता है उसकी सहनशीलता की गाथायें पूरा जमाना कहता है। तुम अकेले कहोगे तो जमाना चुप हो जायेगा, कोई तुम्हारे बारे में कुछ नहीं कहेगा और तुम सहते चले जाओगे तो जमाना तुम्हारे बारे में बहुत कुछ कहेगा।

दूसरी बात यह भी है-यदि तुम 'कहते' हो तो 'क' का अर्थ होता है-'आत्मा' 'हता' का अर्थ होता है नष्ट करने वाला। कहने वाला अपनी आत्मा को नष्ट करता है। सहता अर्थात् 'स' संसार 'हता'-नष्ट करना। जो सहता है वह अपने संसार को नष्ट करता है। मिट्टी, कुदाली व फावड़े की चोट सहती है जब वह चोट सहन कर ले तब उस कुम्भकार को दया आती है फिर उसे जलसिंचन दिया जाता है। मिट्टी तो सकारात्मक सोच रही है कि इसको मेरे पर दया आ गयी अभी तक तो इसने मेरे ऊपर प्रहार किया था अब जल सिंचन कर रहा है किंतु कुम्भकार का मन अभी भी नहीं माना अब वह उसे पैरों से रोंदता चला जा रहा है।

मिट्टी ने कहा-मैं अपनी सहन शक्ति को कम नहीं होने दूँगी, मैं तुम्हारे पैरों को चूम-चूम कर ऐसी अवस्था कर दूँगी कि तुम मुझे सम्मान से सिर पर बैठा लोगे। जो दूसरों के पैरों को सम्मान के साथ स्वीकार करता है एक दिन नि:संदेह वह उसी के सिर पर बैठने का अधिकारी हो जाता है वह मिट्टी प्रहार सहन करते-करते उस कुम्भकार के हाथों में आ जाती है। अब वह सोचती है लगता है मेरा प्रमोशन हो गया, किन्तु ये क्या अब उसे चाक पर रखकर घुमाया जा

रहा है उसकी क्षमता नहीं है उचट सकती है किन्तु नहीं वह सहन कर रही है चाक के बाहर नहीं जा रही है वह जानती है कि यदि में चाक के बाहर चली गयी तो कुछ बन नहीं पाऊँगी इसलिये वह सहन कर रही है।

फिर वह कुम्भकार थप्पी देकर सहलाकर नया आकार देता है और आकार दिया मंगल कलश का। अभी भी मिट्टी का सहना बंद नहीं हुआ, वह कहती है मैं और सहन करूँगी उसे सूर्य के प्रखर प्रताप के सामने रख दिया मानो साक्षात् अग्नि की ज्वाला जल रही हो, किन्तु अभी भी वह सहन करने से मना नहीं कर रही, अब वह नम मिट्टी शुष्क हो जाती है। अब क्या शेष रह गया, किन्तु परीक्षायें अपने आप समाप्त हो जाती हैं, परीक्षा थक जाती है किन्तु परीक्षा देने वाले को कभी थकना नहीं चाहिये जैसे मिट्टी पुनः तैयार है किंतु कुंभकार भी तैयार है और कठिन परीक्षा लेने के लिये, अब कौन सी परीक्षा है? अब है अग्नि परीक्षा।

अग्नि परीक्षा के बाद फिर अन्य परीक्षा नहीं होती, और कुंभकार उसे अग्नि में रख देता है चारों तरफ से अग्नि जलाता है। अग्नि जल रही है जिससे जलाया जा रहा है वह जल गया किन्तु वह कलश और निखर गया उसकी दीर्घायु हो गयी। उसने अपनी सहन शीलता को बता दिया। अग्नि शांत हो गयी पर उसकी सहनशीलता कम नहीं हुयी। अब कुम्भकार दोनों हाथों से उस मंगल कलश को उठाता है कहीं हाथ से छूट न जाये संभाल कर अपने सिर पर रखता है उस पर स्वस्तिक बनाता है। वह मंगल कलश सभी मंगलकार्यों के लिये मंगलकारी हो जाता है। सौभाग्यवती महिलायें अपने सिर पर ध ारण करके बड़े आनंद के साथ अपने मंगल कार्यों का प्रारंभ करती हैं। वह मिट्टी जो अनेक प्रहार सहन कर रही थी आज सिर पर आरूढ़ हो गयी, मंगल स्वरूप को प्राप्त हो गयी।

महानुभाव ! ऐसे ही आप भी यदि सहन करोगे, दूसरों की बातों के प्रहार को सहन करो, दूसरों की चिकनी-चुपड़ी बातें रूपी जल सिंचन को ग्रहण (सहन) करो, फिर यदि कोई आपका विरोध करे तो मिट्टी को पैरों से रोंधने के समान सहन करो, फिर कोई आपको बातों में घुमाये तब भी सहन करो शांत बने रहो। फिर जब आपको तपना पड़े तब भी शांत रहो और अंत में यदि आपकी अग्नि परीक्षा भी हो जाये तब भी सहन करो। अग्नि परीक्षा दे दोगे तो समझो आप सिद्ध बन जाओगे और यदि अग्नि परीक्षा देने से घबराओगे तो सिद्ध न बन पाओगे।

जहाँ सहनशीलता है वहीं स्वर्ग है। आज मानव की सहन शीलता घटती जा रही है यदि सहनशीलता बढ़ जाये तो आज भी आप और हम उसी चौथे काल को जहाँ पर रामराज्य होता था, उसे प्राप्त कर सकते हैं। सहन नहीं कर पाये तो टूटते व बिखरते चले जायेंगे। टूटता हुआ व्यक्ति अपनी शक्ति को नष्ट करता है और जुड़ता हुआ व्यक्ति अपनी शक्ति का संग्रह करता है। शक्ति का संग्रह ही शक्तिपुंज है। हमारी आत्मा शक्ति पुंज है वह सिद्ध बने, भगवान् बने इसका पहला सूत्र है सहनशील बनो। सहनशील हमारा स्वभाव है अत:

सहो-सहो-सहो, अपने आप में रहो-रहो-रहो।

किसी से कुछ भी मत कहो और बहो तो ऐसे बहो जैसे सरिता अपने आप में बहती हुयी सागर से मिल जाती है ऐसे ही आप भी अपने आप में बहते हुये सिद्धालय तक पहुँच जाओ वही आपका चरम व परम लक्ष्य है। उसे आप सभी प्राप्त करें ऐसी मैं आप सबके प्रति मंगल भावना भाता हूँ।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय॥

२५. मंगल जीवन

संसार में जितने भी प्राणी हैं वे सभी प्राणी अपने जीवन में सुख और शांति चाहते हैं। कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जो सुख नहीं चाहता। सुख और शांति के मायने वे अपने जीवन को मंगलमय बनाना चाहते हैं। मंगल शब्द के दो अर्थ होते हैं-उसे विच्छेद करके समझने का प्रयास करें। पहला मम+गल, मम=पाप, गल=गलाने वाला। पाप को गलाने वाला। दूसरा अर्थ समझें-मंग+ल, मंग=उमंग, आनंद, सुख, अमन, चैन, उल्लास आदि। ल-प्रदान करने वाला। मंगल का द्वितीय अर्थ हुआ, जो जीवन में उत्तम सुख देने वाला है वह मंगल है।

मंगल दो प्रकार के होते हैं-एक होते हैं लोक मंगल, दूसरे होते हैं पारमार्थिक मंगल। लोक मंगल वे कहलाते हैं जिन्हें व्यवहार में मंगल माना जाता है। व्यवहार में मंगल करने के लिये व्यक्ति व्यवहारिक वस्तुओं को काम में लाता है जैसे शादी आदि कार्यक्रमों में चावल, हल्दी, सुपाड़ी आदि को मांगलिक माना जाता है, मंगलकलश अथवा सौभाग्यवती स्त्री या सजा हुआ घोड़ा, हाथी, रथ, आदि को मंगल मानते हैं अथवा द्विज आदि का आगमन होना, मंगलगान का सुनाई देना, हंस आदि की पंक्ति दिखाई देना, पक्षियों का कलरव शब्द सुनाई देना या प्राकृतिक वातावरण का दिखाई देना ये सब मंगल माने जाते हैं। अचानक ही आकाश में बादल छाना, चार बूंद पानी की आ जाना इसे भी मंगल में माना जाता है, ये सब लोक मंगल हैं।

इसी प्रकार कुछ अमंगल रूप भी माने जाते हैं। यदि कहीं अचानक आग लगे, कहीं सामने से एकाक्षी (काना) व्यक्ति का आगमन, कागस्वर, गर्दभ स्वर, श्वान का भौंकना इत्यादि स्वर अमंगलमय माने जाते हैं। किसी बाल बिखेरी हुयी स्त्री का सामने आ जाना या किसी का अट्टास स्वर सुनाई देना, रोने की आवाज सुनाई देना, कुत्ते

बिल्ली आदि का रास्ता काट जाना आदि ये सब अमंगल माने जाते हैं। जहाँ पर गाय और बछड़े का एक साथ दिखाई देना मंगलमय होता है वहीं यदि पशु के ऊपर काक आदि बैठा हो, या गधे के ऊपर कोई व्यक्ति उल्टा मुँह करके बैठा हो या धोबी कपड़े बाँट करके आ रहा हो या कुम्हार बर्तन बांटने जा रहा है यह सब अमंगल माने जाते हैं।

ये सब लोक मंगल और अमंगल की श्रेणी में आते हैं। इनसे कोई विशेष कार्य सिद्ध नहीं होते और इनसे कोई विशेष बाधायें भी नहीं आतीं, किन्तु लोक की ऐसी धारणा व मान्यता है कि लोकमंगल करने से कार्य शुभ होते हैं इसीलिये प्राय:कर व्यक्ति यात्रा गमन के समय अपना मुँह मीठा करके जाते हैं, कोई प्रेम भरे शब्द बोलकर/सुनकर जाता है, कोई दर्पण में अपना मुख निहार कर जाता है, कोई अपने इष्ट का स्मरण करके जाता है किन्तु यह भी लौकिक सुखों को देने में किंचित् मात्र समर्थ हैं नियामक हेतु नहीं हैं। किन्तु जो वास्तव में हमारे जीवन में मंगल करने वाले हैं वे कहलाते हैं पारमार्थिक मंगल।

हम प्राय:कर के मंगल की कांक्षा व कामना करते हैं हमारे जीवन में मंगल हो, वह कैसे हो? आप पर द्रव्यों के माध्यम से मंगल करते हो, चाहे कोई भी कार्य हो सबके साथ में मंगल लगाना चाहते हो-मंगल गृह प्रवेश, मंगल विवाह मुहूर्त, मंगल जन्म दिवस, मंगल विहार, मंगल प्रवेश इत्यादि मंगल शब्द कहते हो। यहाँ तक ही नहीं अब तो लोग मृत्यु तक के कार्यक्रम करते हैं तो लिखते हैं मांगलिक कार्यक्रम। कहीं भी अमांगलिक नहीं लिखना चाहते मंगल ही मंगल चाहते हैं। किंतु वह मंगल बाहर से चाहते हैं, सत्यता ये है कि जो मंगल बाहर से होते हैं वे आत्मा को मंगल नहीं बना पाते। अपनी आत्मा को मंगल बनाने के लिये हमें आत्मिक मंगलों की आवश्यकता है। जिनका हमारी आत्मा से सीधा संबंध हो सकता है। जिनका हमारे शरीर से संबंध है वे हमारे आत्मा को मंगल कैसे बनायेंगे? आत्मा को

मंगल बनाने वाले चार मंगल हैं जिन्हें पारमार्थिक मंगल कहते हैं। वे चार मंगल अनादि काल पहले भी थे, आज भी हैं और अनंत काल तक रहेंगे। अनादि निधन मंत्र जो कि 127 अक्षर का मंत्र माना जाता है उसमें चत्तारि मंगलं करके तीन दण्डक दिये हैं उसमें पहला दण्डक है-

चत्तारि मंगलं-मंगल चार हैं।
अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चार मंगल हैं यहाँ 'हैं' कहने से मात्र इतना नहीं कह रहे है कि वर्तमान में ही चार मंगल हैं। वाक्य में 'हैं' शब्द लगाने से वर्तमान जो आज अतीत बन गया है वह भी कभी वर्तमान था उस समय भी चार मंगल थे और आज जो भविष्य है वह कल वर्तमान बनेगा तब भी कहा जायेगा चार मंगल हैं। ये चार मगल त्रिकालवर्ती हैं उनमें कभी कमी नहीं आ सकती। यह बात अवश्य है किसी स्थान विशेष पर और किसी समय विशेष पर वह मंगल रूप जिनकी हमने मूर्त रूप से भावना की है, मूर्त रूप में उनसे मंगलमय अवस्था को जाना पहचाना व समझा है अनुभव किया है वह चाहे उस द्रव्य, क्षेत्र पर हों न हों ये अलग बात है किन्तु मंगल चार हैं।

अरिहंत भगवान् मंगल हैं। अरिहंत भगवान का नाम मात्र लेने से हमारे अंतरंग के शत्रु कांपने लगते हैं। कौन हैं हमारे अंतरंग के शत्रु जो हमारे जीवन में अमंगल करने वाले हैं, वे हैं पाप। जितनी भी पाप प्रकृतियाँ हैं प्राय: वे हमारे जीवन में अमंगल करने वाली होती हैं। वे पाप प्रकृतियाँ चाहे घातिया रुप हों या अघातिया रूप हों। घातिया कर्म की पाप प्रकृतियाँ हैं-ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय कर्म की प्रकृतियाँ पाप रूप होती हैं। अघातिया कर्म की समस्त उत्तर प्रकृतियों के मुख्यता से दो भेद होते हैं कुछ प्रकृतियाँ पाप रूप होती

हैं तो कुछ प्रकृतियाँ पुण्य रूप होती हैं, जैसे वेदनीय कर्म के दो भेदों में से साता वेदनीय पुण्य रूप है व असातावेदनीय पाप रूप है। गोत्र कर्म के दो भेदों में उच्च गोत्र पुण्य रूप है, नीचगोत्र पाप रूप है। इसी प्रकार आयु कर्म है जिसमें नरकायु पाप रूप है, मनुष्यायु, देवायु, तिर्यंचायु पुण्य रूप है। नाम कर्म की 93 प्रकृतियाँ होती हैं उनमें से कुछ प्रकृतियाँ पुण्य रूप होती हैं कुछ प्रकृतियाँ पाप रूप होती हैं। पाप रूप जो प्रकृतियाँ हैं वे हमे इष्ट पदार्थ की संप्राप्ति नहीं होने देती।

यूँ तो कर्म ही हमारे लिये अनिष्ट कारक हैं, कर्म हमें हमारे स्वभाव को प्राप्त नहीं होने देता, जब तक कर्म की एक प्रकृति भी शेष रहेगी तब तक हम समग्र स्वभाव को प्राप्त करने में असमर्थ ही रहेंगे। सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के नष्ट होने से हम समग्र स्वभाव को प्राप्त कर सकते हैं। फिर भी कुछ प्रकृतियाँ ऐसी होती हैं जो हमें स्वभाव तक ले जाने में बाधक नहीं है, और बाधक नहीं है इसलिये उन्हें हम साधक कह सकते हैं। किन्तु कुछ प्रकृतियाँ बाधक होती हैं, जो हमें स्वभाव तक जाने में रोकती है इसीलिये वे पाप प्राकृतियाँ ज्यादा घातक मानी जाती हैं और वे हमारे स्वभाव का मूलतः नाश करना चाहती हैं, वे घातने वाली हैं इसीलिये घातिया कहलाती हैं। अघातिया कर्म की प्रकृति किंचित् घात करती हैं कम घातती हैं जो पाप रूप हैं और जो पुण्य रूप हैं वे हमारे स्वभाव में निमित्त कारण बनती हैं इसलिये वे किसी अपेक्षा से हमारे लिये ग्राह्य हैं, उपादेय हैं।

महानुभाव ! अरिहंत मंगल किस प्रकार से हैं ?-अरिहंत भगवान् का स्वरूप जब हमारे ध्यान या चिंतन में आता है, तो हमारा हृदय श्रद्धा से भर जाता है यदि किसी व्यक्ति का नाम अरिहंत है और हमने अरिहंत नाम लिया तो यह मंगल नहीं है, इसे नाम मंगल भले ही कहो। क्योकि 'अरिहंत' शब्द शुभ अर्थ वाला है अतः नाम लेने

पर श्रद्धा तो होती है किंतु किसी व्यक्ति विशेष का नाम है इसलिये किंचित् श्रद्धा है किन्तु अरिहंत भगवान् के स्वरूप को समझकर के जिन्होंने अपने आधे कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट कर दिया है, जो अर्द्ध नारीश्वर है, अर्द्ध-आधे, न-नहीं, अरि शत्रु, अर्थात् जिनके आधे शत्रु नहीं हैं ऐसे ईश्वर अरिहंत भगवान् का शुभ ध्यान करना मंगलकारी है।

ऐसे भगवान् की शरण में हम पहुँचते हैं तो हमारे अंदर भी साहस जाग्रत होता है, शक्ति जाग्रत होती है, एक प्रेरणा प्राप्त होती है कि हम भी अपने शत्रुओं को जीत सकते हैं। शत्रुओं को जीतने का बल, प्रबल संकल्प उन अरिहंतों के सामने ही आ पाता है। जो संसार में दु:खी प्राणी हैं उन्हें देखकर के तो हमारे अंदर में करुण भावनायें जाग्रत होती हैं, भोगी व्यक्ति के आस-पास भोग की वर्गणायें होती हैं, हमारे विचार भी भोगमय हो सकते हैं किन्तु जब अरिहंत भगवान् के सामने जाते हैं तब नि:संदेह भव्य जीव अपनी मोहनीय कर्म की प्रकृतियों को नष्ट करने में समर्थ हो जाता है। अरिहंत भगवान के सामने पहुँचते ही क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है।

इसीलिये क्षायिक सम्यक्त्व केवली और श्रुत केवली के पादमूल में ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त नहीं हो सकता। अर्थात् केवली प्रभु के पास पहुँचकर के उस आसन्नभव्य में वह सामर्थ्य आ जाती है कि वह मिथ्यात्वादि को निर्मूल कर सके, नष्ट कर सके। ऐसी सामर्थ्य अन्यत्र कहीं नहीं आती इससे सिद्ध होता है कि अरिहंत प्रभु की सामर्थ्य कुछ विशेष है। उनके पास उनके समवशरण में पहुँचकर के जो अत्यन्त निकृष्ट प्रकृतियाँ हैं वे भी उदय में नहीं आती। कहा जाता है कि समवशरण में कभी भी किसी व्यक्ति का जन्म-मरण नहीं होता, कोई रोगी नहीं होता यहाँ तक कि छींक व खांसी तक भी

नहीं आती। कोई छोटा-सा रोग भी वहाँ नहीं होता आनंद ही आनंद रहता है।

केवली भगवान् की इतनी तीव्र वर्गणायें निकलती हैं कि उस परिवेश में जो भी पहुँच जाता है वह भी अत्यंत विशुद्धि से सहित हो जाता है और पाप प्रकृतियाँ उस समय उससे दूर भागती हैं, उस समय उस आत्मा के लिये घातक नहीं बन पाती। जैसे कोई व्यक्ति शमशान से लौटकर पुष्पवाटिका में पहुँच जाता है तो वहाँ उसकी नासिका सुगंध से तृप्त होने लगती है क्योंकि शमशान में उसकी नासिका बदबू से सड़ रही थी। ऐसे ही संसार में जब व्यक्ति भोगियों, पापी, कषायी-व्यक्तियों के पास में रहता है तो उसके परिणाम मलिन होते हैं, संक्लेश रूप, अमंगलरूप होते हैं किन्तु जैसे ही वह व्यक्ति अरिहंत प्रभु के पास पहुँचता है उसके परिणामों में निर्मलता आने लगती है। अरिहंत प्रभु के माध्यम से मिथ्यात्व ही विगलित नहीं होता, चारित्र मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ भी विगलित होने लगती हैं, इतना ही नहीं अरिंहत प्रभु के समवशरण में पहुँचकर वहाँ से मोक्ष तक को भी प्राप्त कर लेते हैं। अतः अरिहंत भगवान् मंगलमय हैं।

जो भगवान् चिन्मय हैं वे तो मंगलमय हैं ही, इसके साथ-साथ आज हमारे सामने साक्षात् अरिहंत नहीं हैं किन्तु उन अरिहंत प्रभु की तदाकार स्थापना करके मूर्ति में उनकी स्थापना करके, जब हम उनके जिनबिम्ब के सामने खड़े होते हैं तो उनके सामने खड़े होकर उस समय भी पाप का भाव नहीं आता, वह पाप भाव तिरोहित होने लगता है और जब तीव्र पाप कर्म का उदय आता है तो हम अरिहंत प्रभु की मूर्ति व मंदिर के सामने से हट जाते हैं बाहर निकल आते हैं। कभी आपने देखा सुना होगा यदि कभी मंदिर में दो व्यक्तियों का किसी बात पर झगड़ा हो गया तो एक व्यक्ति शांत होकर कहता है मंदिर में मैं तुमसे कुछ नहीं कहता मंदिर के बाहर चलो तब मैं तुम्हें

देखूँगा, इसका आशय क्या है? यही है कि वह सोचता है मैं मंदिर में ऐसा पाप नहीं करूँगा, यदि यहाँ पर जिन शासन की आज्ञा का उल्लंघन करूँगा तो बहुत पाप लगेगा।

दूसरी बात यह भी है वहाँ उसने सहन भी कर लिया लोगों ने कहा तुम इतने क्रोधी हो सहन कैसे हो गया, वह कहता है भगवान् की कृपा दृष्टि रही, मंदिर था इसलिये मैं सहन कर गया यदि मंदिर के बाहर होता तो एक नहीं सुनता। तो अरिहंत प्रभु की ऐसी महिमा है जहाँ कषाय स्वयमेव ही विगलित होती हैं। कई बार तो भगवान् की मूर्ति के पास बैठने से ऐसे लगता है कि वह भगवान् की मौन मुद्रा हमें उपदेश दे रही है, जिस उपदेश से हमारी कषाय स्वतः ही शान्त होने लगती हैं। कहा जाता है-चोर, डाकू, लश्कर आदि लोग भी भगवान् के सामने पहुँच जाते हैं तो चोरी आदि के परिणाम भी वहाँ जाकर निर्मल हो जाते हैं वे भी धर्म के मार्ग को स्वीकार कर लेते हैं। तो जीवन में पहले मंगल करने वाले होते हैं-"अरिहंत भगवंत"

आप लौकिक मंगलों के चक्करों में मत पड़ो ये लौकिक मंगल तुम्हारे जीवन को मंगल नहीं बना पायेंगे, यदि जीवन को वास्तव में मंगलमय बनाना है तो अरिहंत भगवान् का स्तवन, पूजन, कीर्तन, भक्ति, स्तुति आदि का सहारा लो। अरिहंत भगवान् की मुद्रा भी बहुत बड़ा काम करती है, यदि किसी को सर्प ने डस लिया हो तो गरुड़ की मुद्रा बनाकर के फिर मंत्र का प्रयोग करते हैं तब वह सर्प का विष दूर हो जाता है ऐसे ही अरिहंत भगवान् की मुद्रा जब हमारे साथ होती है तो हम अपने जीवन में बहुत बड़ा पाप नहीं कर पाते। उन अरिहंत प्रभु की मुद्रा का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है, मूर्ति की बात तो छोड़ो यदि आपकी डायरी या शास्त्र पर कहीं भी अरिहंत प्रभु का वह चित्र है जो आपको बहुत अच्छा लगता है उसे देखकर ही आपका मन बहुत विशुद्ध हो जाता है, वह अरिहंत भगवान् का चित्र निमित्त बन रहा है।

अगली बात यदि अरिहंत प्रभु नहीं मिल रहे हैं तो क्या करें :-तो सिद्धों का ध्यान लगाओ। सिद्ध भगवान् तो शाश्वत हैं। अरिहंत भगवान् तो किसी काल में, किसी क्षेत्र में नहीं हैं और माना कहीं कोई व्यक्ति जंगल में है वहाँ उसे अरिहंत प्रभु तो क्या उनका चित्र तक नहीं मिल रहा है, तो वह सिद्धों का ध्यान लगाये। जो शरीर से रहित मात्र आत्मा ही आत्मा है, कुछ भी नहीं सिवाय आत्मा के वह किस अवस्था से मोक्ष गये थे, उसी आकृति रूप उस आत्मा का ध्यान लगाते हुये ऐसा लगता है जिस अवस्था से मोक्ष गये थे उसी आकृति रूप हैं किन्तु अमूर्त हैं उस आत्मा का ध्यान लगाते ही ऐसा लगता है जैसे मैं भी शरीर से रहित हो गया।

सिद्धों का ध्यान लगाते-लगाते व्यक्ति उसमें इतना लीन हो जाता है उसे अपना भावी स्वरूप (सिद्ध) सामने अनुभव में आने लगता है। जैसे कोई व्यक्ति संसारी व्यक्ति के प्रति राग करता है, उसमें डूब जाता है तो उसका असर उसमें आने लगता है वैसे ही यदि कोई व्यक्ति सिद्धों का ध्यान लगाता है तो सिद्धों का ध्यान लगाते-लगाते स्वयं का सिद्धत्व उसे अनुभव में आने लगता है।

जो भी योगीराज, मुनिराज, यति हैं वे सिद्धों का ध्यान लगाते हैं। क्यों? क्योंकि सिद्धों का ध्यान लगाने से नि:संदेह उन्हें अपने सिद्धत्व को प्राप्त करने का साहस प्राप्त होता है। आज तक जितने भी सिद्ध हुयें उन्होंने नियम से सिद्धों का ध्यान लगाया है, पहले सिद्धों का आलम्बन लिया फिर अपनी आत्मा में लीन हुये, फिर अपने कर्म मल को धोने लगे तो पुन: वे सिद्धत्व की ओर बढ़ने लगे। जब अरिहंत और सिद्ध का स्वरूप अपने अंदर घुलने लगता है तो कर्म मैल जो आत्मा में लगा है वो अपने आप ही धुलने लगता है इसलिये आपको और हमको अरिहंत और सिद्ध का आलंबन लेना है। अरिहंत का आलंबन प्राय:कर सभी श्रावक लोग लेते हैं, श्रमण भी लेते हैं किन्तु श्रमण सिद्धों का आलम्बन मुख्य रूप से लेते हैं।

तीसरा मंगल कहा **'साहू मंगलं'** आचार्य उपाध्याय साधु ये भी मंगल रूप हैं जीवंत हैं। वर्तमान काल में भी हैं इनकी मुद्रा देखते ही मन में परिणाम निर्मल होते हैं, मन विशुद्ध हो जाता है। यदि मन में कहीं विकल्प आ रहा हो, संक्लेशता बन रही हो तो अपने इन गुरुओं का आचार्य-उपाध्याय-साधुओं का ध्यान करते ही नि:संदेह परिणामों में निर्मलता आती है वह भी मंगल का कारण है। आचार्य उपाध्याय साधु में से कहीं किसी का भी आलम्बन ले लिया तो आपके जीवन में मंगल आचरण आने लगेगा, पुन: चौथा मंगल कहा-**''केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं''**

यद्यपि लोक में हर व्यक्ति अपनी मान्यता को, धारणा को धर्म की संज्ञा देने लगता है। हर व्यक्ति कहता है ऐसा नहीं ऐसा धर्म पालन करो किन्तु वास्तव में यथार्थ धर्म तो वही है जिसका निर्देश केवली भगवान् ने दिया। केवली भगवान् के द्वारा कहा गया धर्म ही यथार्थ धर्म है, क्योंकि केवली भगवान् ने अपने स्वभाव को जान लिया है वे अपने स्वभाव को प्राप्त कर चुके हैं अब स्वत: ही भव्य जीवों के निमित्त से उनके अन्तरंग से दिव्यध्वनि निसृत होती है, वह स्वभाविक होती है, वह वास्तव में धर्म है। उस स्वभाव को हम भी प्राप्त कर सकते हैं। वह स्वभाव शब्दातीत है, वचन के अगोचर है किन्तु फिर भी जब तक हम स्वभाव को प्राप्त नहीं कर पा रहे तब तक शब्दों का आलंबन लेना पड़ता है। जैसे कोई हवाई जहाज उड़ना चाहता है तो पहले जमीन पर दौड़ लगाता है फिर उड़ता है, जब उड़ता है तो फिर जमीन की आवश्यकता नहीं। ऐसे ही जो केवली भगवान् होते हैं उनकी बिना किसी ईहा के (इच्छा) राग द्वेष से रहित होकर के जो दिव्य ध्वनि निसृत हुयी उस दिव्यध्वनि का चिंतन करने मात्र से, अपने स्वभाव का चिंतन करने मात्र से अथवा स्वभाव को प्राप्त कराने वाले व्यवहार धर्म का अवलम्बन लेने मात्र से भी हमारा मंगल होता है।

व्यवहार धर्म क्या है? इसके दो भेद हैं श्रमण धर्म और श्रावक धर्म। श्रावक धर्म क्या है? 8 मूल गुणों का, षट् आवश्यकों का पालन करना, 12 व्रतों का पालन करना, 11 प्रतिमाओं का पालन करना श्रावक धर्म है। श्रमण धर्म क्या है ? 28 मूलगुणों का, 34 उत्तर गुणों का पालन करना, 22 परीषहजय सहन करना, 12 प्रकार के तप, 10 धर्म ये सब श्रमण व्यवहार धर्म है। इन व्यवहार धर्म का आलम्बन लेकर आत्मा जब निश्चय में लीन हो जाता है वही अपना स्वभाविक धर्म है। किन्तु कोई भी आत्मा यकायक निश्चय में लीन नहीं हो सकता, निश्चय में लीन होने के लिये व्यवहार का सहारा आवश्यक होता है। जैस पिघला हुआ घी एक बर्तन में रखा हुआ है वह ऐसे पकड़ में नहीं आयेगा, यदि उस घी को किसी बर्तन में रखकर उसे बर्फ पर रख दिया तो वह जम जायेगा, वह ढेला हाथ में लिया जा सकता है। ऐसे ही निश्चय धर्म के लिये पात्र व आधार चाहिये। वह आधार कहलाता है व्यवहार धर्म।

व्यवहार धर्म का आश्रय लेने से संक्लेशता नष्ट होती है, जीवन में मंगल ही मंगल होता है। जीवन में अमंगल करने वाला केवल पाप है। पाप का किसी भी रूप में नाम ले लो वे पाप अमंगल ही अमंगल करते हैं और स्वभाव की ओर जाने वाला पुण्य या हमारा स्वभाव या स्वभाव को प्राप्त वे परमेष्ठी हमारे जीवन में मंगल करने वाले होते हैं। हमारा और आपका सबका जीवन मंगलमय बने इसीलिये आप सभी उन चार मंगलों को अपने जीवन में स्थान दो, ये चार मंगल हमारे जीवन का आयाम बनें जिससे हम चतुर्गति रूप संसार को नष्ट करके शाश्वत अपने निजस्वभाव को प्राप्त करें। ऐसी मैं आपके प्रति भी भावना भाता हूँ और उसे प्राप्त करने के लिये मैं भी पुरुषार्थ रत रहूँ। आपका हमारा सबका सर्वत्र मंगल ही मंगल हो इन्हीं भावनाओं के साथ मैं अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय॥

२६. ऐसी वाणी बोलिये

संसार में दो प्रकार के प्राणी हैं एक वे प्राणी जिनके पास वाणी है, एक वे प्राणी जिनके पास वाणी नहीं है। जिनके पास वाणी है ऐसे प्राणी भी दो प्रकार के हैं एक वे प्राणी जो वाणी को सुन सकते हैं, एक वे प्राणी जो केवल बोल सकते हैं। जो वाणी सुन सकते हैं ओर बोल सकते हैं वे संसार में श्रेष्ठ प्राणी कहे जाते हैं। जो वाणी बोल नहीं पाते वे निकृष्ट और जघन्य हैं और जो केवल बोल पाते हैं उन्हें मध्यम कहा जाता है। जो सुन लेते हैं किन्तु बिना समझे बोल जाते हैं वे जघन्य की श्रेणी में आते हैं और जो सोच-समझकर तौल कर अपने वचनों का प्रयोग करते हैं वे प्राणी सम्मानीय, आदरणीय व आदर्श पुरुष कहे जाते हैं।

वचन बोलना तो संसार के बहुत से जीव जानते हैं किन्तु हमें कब कौन से वचन बोलना चाहिये, किस प्रकार बोलना चाहिये, वचनों का स्वराघात कहाँ होना चाहिये ये नहीं जानते। वचनों में क्या भाव छिपा हुआ है यह सुनने वाले के चित्त पर सीधा प्रभाव छोड़ता है। कागज के फूल बनाकर के किसी मनुष्य को भी धोका दिया जा सकता है किन्तु भौरों को धोखा नहीं दिया जा सकता। किसी डिब्बे में नमक भरकर उस डिब्बे पर शक्कर की स्लिप लगा दी जाये, यह लिखकर के किसी ग्राहक को तो धोका दिया जा सकता है किन्तु चींटी को धोखा नहीं दिया जा सकता। इसी तरह से मन में कपट का भाव रखकर ईर्ष्या और विद्वेष का भाव रखकर के, मन में अहंकार का पोषण करके, दूसरे का अहित का भाव रखकर के, उनसे मीठी-मीठी चिकनी चुपड़ी बातें कहने से इंसान को धोका तो दिया जा सकता है किन्तु अपनी आत्मा और परमात्मा को धोका नहीं दिया जा सकता।

संसार में दो ही ऐसे हैं जिन्हें कभी कोई धोका नहीं दे सकता एक है खुद और दूसरा है खुदा। इन दो के अलावा जो भी है उन्हें ध

ोका भी दिया जा सकता है, सताया भी जा सकता है, समझाया भी जा सकता है, संभाला भी जा सकता है, उठाया भी जा सकता है, गिराया भी जा सकता है, तो खुद को और खुदा को जो साक्षी मानकर अपनी प्रवृत्ति करते हैं उन्हें संसार से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं।

महानुभाव ! दो इन्द्रिय से लेकर सभी जीव वचन शक्ति, भाषा वर्गणा का प्रयोग करते हैं। उनके पास रसना इन्द्रिया है जिसके माध्यम से वे रस का स्वाद भी चख लेते हैं और शब्द का निष्पत्तीकरण भी करते हैं, शब्द उत्पन्न होते हैं किन्तु संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य, देव, नारकी, पशु ये ऐसे प्राणी हैं जिनके पास सोचने समझने की क्षमता है। यदि संज्ञी पंचेन्द्रिय बोलता है तो उसका बोलना मोक्ष मार्ग में कारण हो सकता है। असंज्ञीयों का बोलना उनका समस्त प्रलाप कभी मोक्ष मार्ग का कारण नहीं बनता। असंज्ञी की वाणी कभी भी देशना का कारण नहीं बनती, देशना संज्ञी मनुष्य और संयमी की ही कही जाती है अन्य किसी की देशना सम्यक्त्व आदि में कारण नहीं मानी जाती।

आचार्य भगवन् कुलभद्र स्वामी जी सार समुच्चय ग्रंथ में लिखते हैं-

"प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति मानवाः।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं वचने ४का दरिद्रता॥

प्रिय वाक्य बोलने से सभी प्राणियों को संतोष होता है, आनंद व शांति मिलती है। चाहे भाई हो, माता-पिता हो, पुत्र-पुत्री, मित्र-रिश्तेदार हों, चाहे घर के सेवक आदि के प्रति भी यदि आप मिष्ट वचन बोलते हैं तो ऐसा लगता है कि वह आपको देवता मानता है, आपके वचन सुनना चाहता है। मीठे वचन बोलने से सामने वाले को भी और

आपको भी दोनों को अच्छा लगता है। मीठे वचन से तो आपके घर में यदि पालतू पशु-पक्षी भी है वह भी आनंदित होता है। यदि मीठे वचन जंगल के किसी वृक्ष के नीचे बैठकर भी बोले जाते हैं तो वृक्ष भी उन वर्गणाओं से आनंदित होता है और आपकी भाषा वर्गणाओं से इतना प्रभावित होता है कि कहते हैं वृक्ष भी अनायास पुष्प वर्षा कर देते हैं किन्तु जब कोई वृक्ष के नीचे जाकर के गाली देता है, अपशब्द बोलता है तो वृक्षों से काँटे गिरते हैं या लकड़ी कांटे की तरह चुभने वाली होती है, पुष्प भी गिरता है तो सीधा गिरता है डंठल चुभ जाता है।

महानुभाव ! कटुक वचन कोई भी नहीं सुनना चाहता, यदि किसी कुत्ते को भी डाँट दिया तो वह भी रूठ जाता है, भोजन तक नहीं करता। किसी एक मालिक ने कुत्ते को डाँट दिया तो कुत्ता इतना रूठ गया कि शाम तक भोजन नहीं किया, बाद में उसके मालिक ने उसे मनाया खूब सहलाया तब वह माना फिर भोजन किया। अर्थात् कुत्ता भी अपना अपमान सहन नहीं कर पाता तो सोचिये आपके घर में रहने वाले व्यक्ति अपना अपमान कैसे सहन कर सकते हैं। आप कभी अपने माता-पिता, भाई-बहिन, मित्र रिश्तेदार आदि के प्रति अपशब्द बोल देते हैं जो आपके अपशब्दों को सुन रहा है समझो उसकी मजबूरी है आपके अपशब्दों को सुनना अन्यथा वह स्वतन्त्र होता तो आपके अपशब्दों को कदापि नहीं सुनता।

एक नौकर आपके यहाँ नौकरी करता है वह आपके अपशब्द या गालियाँ सुनता है तो वह भी बाद में कह देता है कि मैं आपके यहाँ नौकरी करता हूँ किन्तु मैं यहाँ अपशब्द सुनने के लिये नहीं आया यदि आप ऐसे ही अपशब्द सुनाते रहेंगे तो मैं यहाँ से नौकरी छोड़कर चला जाऊँगा। प्यार के साथ अपने नौकर से दुगुना काम लिया जा सकता है, अपशब्द कहने से उसकी कार्य क्षमता घटती है, उसका

मनोबल टूटता है और वह आपका मन ही मन में शत्रु बनने लगता है। अच्छे शब्द बोलने से आपके चित्त में भी शांति आती है और सामने वाले के चित्त में भी शांति आती है क्योंकि अच्छे शब्द आपकी कषाय को मंद करने वाले होते हैं, आपके चेहरे पर सौम्यता आती है और सामने वाले के चित्त में भी शीतलता आती है, इसीलिये तो कहा है-

ऐसी वाणी बोलिये मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे आपहुँ शीतल होय॥

वाणी इस प्रकार की हो कि जिसके माध्यम से आपके मन का आपा, अहंकार भाव नष्ट हो, आपके मन का पाप नष्ट हो। ऐसी वाणी बोलिये जिसमें आप अपनत्व को दे सकें व उसे बोलते-बोलते आपको भी आनंद की अनुभूति हो, सुनने वाला व्यक्ति अतृप्त चातक की तरह से आपकी वाणी सुनने के लिये लालायित रहे, जैसे चातक सघन मेघ को देखकर तरसता है स्वाति नक्षत्र की एक बूँद को पाने के लिये ऐसे ही जो कोई भी सुनता है वह आपकी वाणी को मंत्रमुग्ध होकर के सुने। जैसे सांप व हरिण बांसुरी की आवाज सुनकर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं आपकी वाणी भी ऐसी होनी चाहिये।

वाणी के माध्यम से आप पुण्य का आश्रव भी कर सकते हैं पाप का आश्रव भी कर सकते हैं। वाणी जब किसी व्यक्ति को धर्म में लगाने वाली होती है, पाप को शमन करने वाली होती है, पापों से विरक्ति दिलाने वाली होती है, कर्तव्य का बोध कराने वाली होती है तब वह वाणी पुण्य का कारण कहलाती है, धर्म का अंश बन जाती है। जब वाणी पाप में प्रेरित करने वाली हो, जिस वाणी से कषायें बढ़ती चली जायें, कर्त्तव्यों को छोड़ व्यक्ति अधिकारों का दुरुपयोग करने लग जाये, शत्रुता की गांठ बांधकर के बैठ जाये तब समझना चाहिये आपकी वाणी वीणा नहीं बाण का काम कर रही है।

शब्द बोलना एक कला है, यह कला सबके पास नहीं होती। मौन रहना एक साधना है जिसे बहुत सारे व्यक्ति कर सकते हैं किन्तु बोलने की कला वाले व्यक्ति संसार में विरले ही होते हैं। हजार व्यक्तियों में एक अच्छी वाणी बोलने वाला वक्ता निकलता है। शूरवीर सैकड़ों में से एक हो सकता है, दाता 10 हजार में से कोई एक अच्छा हो सकता है किन्तु अच्छी वाणी बोलने वाला कोई लाखों में एक ही होता है जो धर्म के मर्म को बताने वाला होता है। वाणी की यह विशेषता है कि वह इष्ट हो, मिष्ट हो, शिष्ट हो। जिस शब्द को हम बोल रहे हैं वह शब्द अपने इष्ट कार्य का संपादन करने में सफल हो।

आपने किसी से कार्य करने को कहा उसने सुना ही नहीं अनसुनी कर दी, आपने किसी को बात समझाने को कही उसने आपकी बात को सुना पर समझा नहीं तो वे वचन आपके इष्ट नहीं कहलायेंगे। हो सकता है आपके वचन सुनकर वह और ज्यादा कषाय से आवेशित हो जाये और ज्यादा गाँठ बाँध ले तो वे वचन इष्टकारक न होकर के अनिष्ट कारक हो जाते हैं। वाणी की पहली विशेषता है कि वह इष्टकारक हो। दूसरी विशेषता-वह वाणी मिष्ट हो। ऐसा लगे जैसे जीभ पर मिशरी का टुकड़ा रख दिया हो, उसे आनंद आ रहा है। गूंगा व्यक्ति मिशरी का स्वाद कह नहीं सकता पर स्वाद ले सकता है ऐसे ही कोई व्यक्ति आपकी वाणी को सुने तो वह बस यही सोचता रहे कि अभी दो शब्द और सुनने को मिल जायें। वाणी सुनने व्यक्ति दौड़ा-दौड़ा आये आतुर रहे। जिन वचनों को सुनकर मेरे दिन व रात्रि दोनों मंगलमय हो जाते हैं वे वचन कहीं मुझसे छूट न जायें। वे मिष्ट शब्द चेतना में मिशरी का काम करें।

शब्द पाषाण की तरह न हों जो चुभें, शब्द काँटे की तरह न हों जो चुभें, अग्नि के कोयले की तरह दहकाने वाले न हों, शब्द शीतल

हों। शब्दों से ज्यादा शीतल तो चंदन का लेप भी नहीं होता, शब्दों से ज्यादा शीतल तो बसेरा के मोती भी नहीं होते, शब्दों से ज्यादा शीतल तो चन्द्रमा की किरणें भी नहीं होती, शब्दों की शीतलता तो विश्व में प्रसिद्ध है। जिनके पास शब्दों की शीतलता है उनके लिए सारे संसार को शीतल करना आसान है किन्तु जिनके पास शब्दों में भी शीतलता नहीं है, जो शीतल शब्द बोलना नहीं जानते हैं वे यदि चाहे किसी को शर्बत पिलाकर शांत कर दें तो नहीं कर सकते हैं। दो मीठे शब्द बोलने से सारी सभा शांत हो सकती है किन्तु सबके गले में बसेरे के मोती की माला डालने से शांति नहीं हो सकती। इसीलिये इष्ट व मिष्ट शब्द बोलना चाहिए।

तीसरा विशेषण है शब्द शिष्ट भी होना चाहिये। यदि अपने से छोटे के प्रति आप अति आदर के शब्द बोल रहे हैं तो वह समझेगा ये मेरी हूटिंग कर रहे हैं, इसलिये उसके साथ प्रेमपूर्वक शब्द तो बोलिये किन्तु अति आदर के साथ नहीं जैसे कोई मुनिराज हैं वे किसी अव्रती असंयमी के सामने स्वयं अपने हाथ जोड़कर, पैर छूकर शब्द बोलने लग जायें तो यह उनके पद के प्रतिकूल हो गया यह शिष्टाचार नहीं कहलाता। शिष्टाचार का आशय है किसके साथ हमें कौन सा व्यवहार करना है, अपने से बड़ो के सामने निगाह नीची करके बोलना है, हाथ जोड़कर नम्र वृत्ति से बोलना है, अपने से छोटे से बोलना है तो प्रेम की वर्षा करते हुये बोलना है, इस प्रकार शब्दों का प्रभाव अलग होता है।

शिष्टाचार का पालन करते हुये जो शब्द बोले जाते हैं वे शब्द धर्म की श्रेणी में आ जाते हैं, वे शब्द कर्त्तव्य पालन और मर्यादा की श्रेणी में आ जाते हैं, वे शब्द ही वास्तव में धर्म के मर्म को बताने वाले होते हैं, अंतरंग की गाँठ को खोलने वाले होते हैं। जिन शब्दों में शिष्टाचार नहीं होता चाहे अच्छी बात भी हो, यदि अच्छी बात भी

अशिष्टता के साथ कही जाती है तो वह अशिष्ट बात सज्जनों की सभा में शोभा को प्राप्त नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि ये हमारे पिताजी हैं या माँ हैं, तो कहने का अर्थ अलग है यदि कोई व्यक्ति कहीं दूसरे रूप में कहता है कि मेरे पिता की पत्नी है तो यह अशिष्टता हो गयी, कहा तो सत्य है किन्तु इसमें शिष्टाचार नहीं रहा। शिष्टता के साथ मिष्टता का प्रयोग करना, किस बात के लिये हमें किस शब्द का प्रयोग करना है यह समझना भी महत्वपूर्ण है।

कई बार देखने में आता है कि कोई आया पूछा-अरे साथ में यह व्यक्ति कौन है? तो बताया ये मेरे ताऊ जी का बेटा है। उसके ताऊ जी भी संयोग से पास में ही खड़े थे उन्होंने कहा-बेटा तुम ये नहीं कह सकते थे कि यह मेरा भाई है। ये मेरा भाई है कहते तो ज्यादा अच्छा लगता ताऊ का बेटा कहकर तुमने भेद डाल दिया। ऐसे ही शिष्टाचार के मायने होता है कि हमें किस समय, किस स्थान पर, किस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना चाहिये, हम किससे वार्तालाप कर रहे हैं। जिनके शब्दों में इष्टता, शिष्टता व मिष्टता होती है तब वे नि:संदेह सार्थक व सफल होते हैं अन्यथा शब्द अनिष्टकारक भी हो सकते हैं। अनिष्टकारक शब्द जीवन में महाभारत करने वाले होते हैं जैसे द्रोपदी के कड़वे शब्दों ने कि ''अंधों के अंधे ही होते हैं'' महाभारत खड़ा कर दिया।

जैसे मंथरा के शब्दों ने कैकयी के कान भरने से वह कुपित होकर राजा दशरथ के मनाने से भी न मानी और वरदान माँग लिये, ऐसा वैदिक परम्परा में कहा जाता हैं और राजा दशरथ ने भरत को राजगद्दी व राम को वनवास दे दिया। शब्दों की भूमिका अपने आप में अलग रहती है।

आप जब बाजार में कोई वस्तु लेने जाते हैं, मटका है तो बजाकर देखते हैं, फल है तो चखकर देखते हो, कपड़ा भी है तो छू कर देखते

हो, आप सोचते हो जब पैसे देने ही है तो अच्छी चीज छाँटकर क्यों न लें और कुछ सुनना भी चाहते हैं तो मीठा सुनना चाहते हैं। तो हम आपसे पूछना चाहते हैं कि जब आपको स्वयं के लिये इतना सब अच्छा लगता है तो आप दूसरों के लिये उन मीठे शब्दों का प्रयोग क्यों नहीं करते।

जीभ घिस गयी होती कि रुतबा घट गया होता।
जो गुस्से से कहा तुमने वही हँसकर कहा होता।

प्रेम से कहने से न तो तुम्हारा रुतबा घटता और न कीर्ति घटती बल्कि तुम्हारा मान सम्मान बढ़ जाता, तुम्हारी धाक और गहरी जम जाती किन्तु व्यक्ति यह सोच नहीं पाता है, जिसके पास इतनी सोच समझ होती है वह नि:संदेह अच्छे शब्दों का प्रयोग करता है। इसीलिये तो आचार्य महाराज कह रहे हैं-

प्रिय वाक्य के माध्यम से सभी प्राणियों को संतोष होता है इसीलिये वैसे ही वचन बोलने चाहिये, वचन बोलने में दरिद्रता क्यों। अरे दान देने में तुम दरिद्रता का प्रयोग करो तो अलग बात है मीठे वचनों को बोलने में दरिद्रता क्यों? ऐसा नहीं कि दान की भांति किसी को तुमने अपने भण्डार में से 10 लाख रुपये दिये तो तुम्हारे 10 लाख कम हो गये, किन्तु मीठे वचनों को एक बार नहीं 100 बार भी बोला जा सकता है तुम्हारे कोष में कमी नहीं होगी, तुम्हारा कोष और बढ़ जायेगा। जितनी बार अच्छे शब्दों का प्रयोग करते जाओगे उतने ही ज्यादा वे शब्द आपकी जुबान पर रहेंगे।

विद्वत्वर दौलतराम जी ने मुनियों के लिये कहा कि शब्द कैसे होना चाहिये-**भ्रम रोग हर जिनके वचन मुख चन्द्र तैं अमृत झरें।** मुनिराज भाषा समिति का प्रयोग करते हैं, सत्य महाव्रत का प्रयोग करते हैं, वचन गुप्ति का प्रयोग करते हैं ऐसे शब्द होते हैं जैसे चन्द्रमा

से अमृत की वर्षा हो रही हो, वह सुधाकर सुधा बरसा रहा हो। हो सकता है सुधा के माध्यम से भले ही तृप्ति न हो किन्तु मुनिराज के श्री वचनों से व्यक्तियों का संतृप्त हृदय शांत हो जाता है। चन्द्र किरणों से मात्र तन ही शीतल होता है किन्तु मुनिराज के वचन से मन भी शांत होता है चित्त अर्थात् आत्मा भी शांत होती है।

इसीलिये कहा कि अच्छे वचन बोलने वाला व्यक्ति अच्छा होता है बुरे वचन बोलने वाला बुरा होता है। जो जैसा होता है उससे वैसी ही आवाज निकलती है, आप देखते ही हैं कि ढोलक से बांसुरी जैसी आवाज नहीं निकल सकती और बांसुरी से ढोलक की आवाज नहीं निकल सकती। यहाँ तक कि धातुओं की आवाज भी अलग-अलग होती है। लोहे के बर्तन को बजाकर देखो तो आवाज अलग होगी, तांबे के बर्तन की आवाज अलग है, सोने के बर्तन की आवाज अलग है, फूटे बर्तन की आवाज अलग है सबकी आवाज अलग-अलग होती है। महापुरुषों की वाणी आपने सुनी होगी कितना मृदु बोलते हैं, कितने नम्र वृत्ति के सरल और सहज होते हैं इसलिये व्यक्ति महापुरुषों की वाणी को सुनने के लिये आतुर रहता है और दुष्ट लोगों की वाणी इतनी कठोर होती है व्यक्ति सोचता है ये बोले ही नहीं तो अच्छा है।

तो महानुभाव ! जीवन में अच्छे वचन बोलो। एक छोटा सा रूपक कहकर बात पूर्ण करूँ-

एक अंधा पुरुष चतुष्पद पर बैठा हुआ था। संध्याकाल का समय था, सोच रहा था कोई भला पुरुष यहाँ पर आये जो मुझे रास्ता बता दे, मुझे अपनी झोंपड़ी की तरफ जाना है, रास्ते चार हैं, उसके मन में संदेह था कहीं मैं गलत रास्ते पर न चला जाऊँ यह सोचकर वहाँ बैठा था। तभी थोड़ी देर में एक सैनिक वहाँ आया उसने उस अंधे पुरुष को देखकर कहा-ओ बे अंधे यहाँ क्यों बैठा है? यहाँ से महाराज गये

थे क्या? महामंत्री जी गये थे क्या? उसने कहा-नहीं यहाँ से अभी नहीं गये। और वह अंधा कुछ पूछना चाहे तब तक सैनिक आगे बढ़ गया। थोड़ी देर बाद कोतवाल आया उसने भी उसी लहजे में और अधिक ऊँची आवाज में, कुछ गालियाँ देते हुये पूछा-क्यों ? यहाँ से राजा या मंत्री आदि गये हैं। उसने कहा-नहीं, महाराज व मंत्री तो नहीं गये हाँ एक सैनिक निकल कर गया है। थोड़ी देर बाद महामंत्री आया उसने कहा सूरदास जी यहाँ से आपने किसी को जाते देखा है, हाँ मंत्री जी यहाँ से अभी आपका सैनिक व कोतवाल निकल कर गया है।

थोड़ी देर बाद राजा वहाँ से निकलकर जाता है और राजा पूछता है अहो ! प्रज्ञाचक्षु महात्मन् आप यहाँ जब से बैठे हैं क्या आपने यहाँ से हमारे सैनिकों को जाते देखा है ? उस अंधे ने कहा-महाराज को प्रणाम हो, महाराज अभी आपका सैनिक भी यहाँ से निकल कर गया है, अभी कोतवाल व महामंत्री जी भी आपको खोजते-खोजते निकल गये और आप भी यहाँ आये बड़ी कृपा दृष्टि की। राजा ने पूछा-आप यहाँ क्यों बैठे हो? उसने कहा-राजन् मैं रास्ता पूछना चाहता था, राजा ने कहा आपकी झोंपड़ी सामने ही है क्या मैं आपको वहाँ छोड़ आऊँ, बोला बहुत-बहुत शुक्रिया अब मैं चला जाऊँगा। राजा से उस अंधे व्यक्ति का वार्तालाप चल ही रहा था तब तक सैनिक, कोतवाल, महामंत्री आदि सभी वहाँ आ गये।

पुनः उस अंधे व्यक्ति से पूछा-कि एक बात तो बताओ कि या तो तुम अंधे नहीं हो, यदि हो तो तुमने कैसे पहचाना कि पहले सैनिक निकल कर गया, फिर कोतवाल निकल कर गया फिर महामंत्री गया और अब राजन्, वह बोला-महाराज ! अपराध क्षमा करें क्योंकि जो जैसा होता है उसका वैसा ही व्यवहार होता है। मतलब ? महाराज जब यहाँ से आपका सैनिक निकल कर गया तो उसने कहा-ओ बे अंधे

यहाँ से कोई निकलकर गया क्या? उसकी भाषा अलग ही थी। कोतवाल साहब ने अंधे के साथ-साथ अन्य अपशब्द भी कहे फिर प्रश्न पूछा तो मैं समझ गया ऐसा व्यवहार कोतवाल का हो सकता है।

जब आपके महामंत्री जी निकले तो उन्होंने कहा-'सूरदास' जी यहाँ से किसी को जाते देखा तो मैं समझ गया इसका व्यवहार नम्र है, शब्द भी संभले हुये हैं नि:संदेह यह उच्च परिवार का होगा तो महामंत्री को मैंने पहचान लिया और महाराज जब आप आये तब आपने न तो अंधे कहा, न अपशब्द कहे, न सूरदास कहा, न कुछ और कहा आपने हे प्रज्ञा चक्षु महात्मन् कहकर संबोधा है। महाराज आपके शब्द ही स्वयं में कह रहे हैं कि आप स्वयं ही उच्च आदर्शवादी हैं, आपने अपनी समस्या को पूछने के साथ-साथ मेरे यहाँ बैठने का कारण भी पूछा, झोंपड़ी तक छोड़ने का आग्रह भी किया। नि:संदेह महाराज व्यक्ति की वाणी व व्यवहार से मालूम चल जाता है कि कौन कैसा है। कौवा व कोयल भले ही दोनों का रंग एक होता है किन्तु दोनों की वाणी अलग-अलग होती है। इसी तरह सज्जन व दुर्जन में भेद वाणी से जाना जाता है। इसीलिये आचार्य गुणभद्र स्वामी यहाँ कह रहे हैं कि हमें सदैव प्रिय वाक्य ही बोलने चाहिये, कभी कटु वचन नहीं बोलने चाहिये।

अत: आप और हम सब अच्छे वचन बोलने का सम्यक् पुरुषार्थ करें यहीं हम आप सभी को शुभाशीष देते हैं व इन्हीं शुभ भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय।

२७. दृष्टा का दृष्टिकोण

जैन जगत् के महान् आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी जो एक बहुत तपस्वी आचार्य थे, जिन्होंने जैन वाङ्मय का बड़ा गहरा चिन्तन व मन्थन किया, उसके उपरांत उन्होंने समयसार जैसे महान ग्रंथों की व 84 पाहुड़ों की रचना की फिर सिद्धान्त पर उन्होंने अपनी लेखनी चलायी। वे आचार्य भगवन् श्री 'समयसारजी' में लिखते हैं।

'सव्वत्थ सुन्दरो लोए'

लोक में सर्वत्र सुन्दरता ही सुन्दरता है।

तो एक महामनीषी महोदय कहते हैं-

यह संसार असार महासागर है स्वामी

दूसरे मनीषी आचार्य कहते हैं कि-संसार स्वार्थमय है, संसार अथिर है।

संसार वही है जिसके बारे में सभी वक्ता और नीतिकार कहते हैं, संसार में न कुछ बुरा है न कुछ अच्छा है, संसार में जो था, वो है और रहेगा। संसार में चार गति के जीव परिभ्रमण करते हैं, थे और करते रहेंगे। संसार में मूल रूप से दो ही द्रव्य हैं जीव और अजीव। अजीव के 5 भेद हैं, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव के दो भेद हैं संसारी जीव और मुक्त जीव। संसारी जीव पाँच इन्द्रिय की अपेक्षा से पाँच प्रकार के माने जाते हैं तो मुक्ति जीव कर्मों से रहित होने की अपेक्षा से एक ही प्रकार के माने जाते हैं।

संसार में दृश्य हैं और संसार में दृश्य को देखने वाले दृष्टा भी हैं, उन दृष्टाओं के पास दृष्टि भी है। दृश्य भी अनंत हैं, दृष्टा भी अनंत हैं। जब दृष्टा अनंत हैं तो उनकी दृष्टियाँ भी अनंत हैं। या यूँ कहें कि एक-एक दृश्य को देखने के लिये भी अनंत दृष्टियों की

आवश्यकता पड़ती है क्योंकि एक-एक दृश्यमान वस्तु अनेक धर्मों से, स्वभावों से, गुणों से अनुरंजित होती है। इसीलिये एक दृष्टि से अनंतत्व को देखना बड़ा असंभव है। जब तक दृष्टि सीमा में बंधी हुयी होती है तब तक असलियत का दिग्दर्शन नहीं करा सकती है। असीम का दिग्दर्शन कराने वाली दृष्टि भी निस्सीम होती है। संसार में पदार्थ सीमातीत हैं तो दृष्टि भी सीमातीत होना चाहिये।

दृष्टि कभी विकृत होती है, कभी प्रकृत होती है तो कभी सुकृत होती है, जब दृष्टि में विकार आ जाता है अर्थात् पदार्थ ज्यों की त्यों न दिखकर के विकार मय दिखता है तो समझ लो दृष्टि विकृत होती है। जब पदार्थ उसे कुछ अच्छा लगता है, जिसके प्रति राग जाग्रत होता है तो उसके प्रति दृष्टि वैसी हो जाती है। जब पदार्थ ज्यों की त्यों दिखाई देता है अर्थात् दृष्टि में न राग होता है न द्वेष होता तो दृष्टि प्रकृत होती है। बंद दृष्टि दृश्यों के प्रति विद्वेष का प्रतीक है। पूर्ण खुली हुई दृष्टि दृश्यों के प्रति राग का प्रतीक है, वीतरागी की दृष्टि न तो कभी पूर्ण बंद होती है न कभी पूर्ण खुली। वीतरागी की दृष्टि प्रकृत होती है, उनकी दृष्टि नासा के अग्रभाग पर रहती है क्योंकि उन्होंने राग-द्वेष को नष्ट कर दिया है। यदि राग द्वेष को नष्ट नहीं किया जायेगा तो दृष्टि या तो पूरी बंद रहेगी या पूरी खुली रहेगी। राग द्वेष के नष्ट होने पर ही नासाग्र दृष्टि हो सकती है यह वीतरागी का लक्षण है।

एक बात यह भी है कि दृष्टि पूरी खुली है तो भी चंचल हो सकती है और जब तक दृष्टि चंचल रहती है तब तक उसका मन स्थिर नहीं रह सकता। जिस प्रकार कहीं कमरे में लगा हुआ काँच हवा के माध्यम से हिल रहा है उस काँच में जिस गुलदस्ते का प्रतिबिम्ब झलक रहा है उधर वह भी हिल रहा है तो वह काँच में झलकने वाला गुलदस्ता स्थाई कैसे दिखाई दे सकता है। गुलदस्ता भी हिल रहा है,

कांच भी हिल रहा है दोनों हिल रहे हैं। गुलदस्ता न भी हिले तो काँच के हिलने से गुलदस्ता हिलता हुआ दिखाई देगा, इसी तरह जब तक दृष्टि चंचल होती है चाहे दृश्यमान पदार्थ चंचल हों या न हों दृष्टा का चित्त चंचल हो जाता है।

महानुभाव ! दोष दृष्टि का नहीं, दोष दृष्टा का नहीं, दोष दृश्यों का नहीं फिर किसका दोष है? दोष है हमारे दृष्टिकोंण का। और हम जिस दृष्टिकोंण से जिस वस्तु को देख रहे हैं उस अपेक्षा से वह दृष्टिकोंण बिल्कुल सही है किन्तु वह समग्र नहीं है। बस इतना हम भूल जाते हैं कि एक-एक दृष्टि कोंण को सर्वदृष्टिकोण मानकर बैठ जाते हैं। प्रत्येक दृष्टि अपने आप में अपूर्ण है। प्रत्येक दृष्टि अपने आप में अनेक दृष्टियों की भाजक है। किसी भी दृश्य को एक दृष्टि से पूरी तरह से नहीं देखा जा सकता, चाहे भले ही श्रुत केवली ही क्यों न हो, चाहे अवधिज्ञानी, मन:पर्यय ज्ञानी क्यों न हो किंतु वे सम्पूर्ण पदार्थों को सम्पूर्ण तरह से नहीं देख सकते, क्योंकि उनकी दृष्टि सीमित है। अनंत दर्शन के माध्यम से ही, अनंत दृष्टियों के माध्यम से ही पदार्थ का अनंत रूप से अवलोकन किया जा सकता है। अनंत अतीत व अनंत अनागत की पर्यायों को जाना जा सकता है, अनंत के बारे में अनुभव किया जा सकता है।

एक दृष्टि अनंत का अनुभव नहीं करा सकती जैसे तिनके पर समुद्र के जल की एक बूँद आ सकती है, वह एक ही बूंद है, वह बूंद समुद्र की है, मन के संतोष के लिये भले ही कह दिया जाये कि तृण के अग्रभाग पर जो बिन्दु है वह समुद्र है क्योंकि वह जल समुद्र से बाहर नहीं है किन्तु वह वास्तव में समुद्र नहीं है, वह समुद्र का एक अंश है। सम्पूर्ण समुद्र को जानने के लिये वैसे अनंत दृग बिन्दुओं को जोड़ना पड़ता है अनंत तृण बिन्दुओं को देखना पड़ता है।

महानुभाव ! संसारी प्राणी के पास दृष्टि सीमित होती है क्योंकि उसका क्षयोपशम सीमित होता है, उसका दृष्टिकोण सीमित होता है

इसीलिये वह एक वस्तु को एक प्रकार से, दो प्रकार से, चार प्रकार से अनंत प्रकार से देखता है। जब अच्छे प्रकार से देखता है तो वस्तुओं के प्रति राग होता चला जाता है जब विपरीत दशा से देखता है गलत रूप से देखता है तो वस्तु के प्रति द्वेष होता चला जाता है। वस्तु एकान्तत: न द्वेष की कारण है न राग की कारण है, वस्तु तो वस्तु है। वह किसी से नहीं कहती कि मुझसे राग करो या द्वेष करो वस्तु अपने आप में है।

व्यक्ति जब अपने आप में नहीं रह पाता है दृष्टि के माध्यम से वस्तु के अंदर चला जाता है तो व्यक्ति के अंदर राग-द्वेष हो जाते हैं। जैसे किसी व्यक्ति के पास प्राकृतिक आँखें होते हुये भी यदि वह किसी रंग का चश्मा लगाता है, लाल चश्मे में सफेद वस्तु लाल दिखती है, हरे रंग से हरी दिखती है, वह यदि बदरंगी चश्मा लगाता है तो सफेद वस्तु बदरंगी दिखाई देती है और यदि सभी चश्मों को निकाल देता है तो वस्तु ज्यों की त्यों दिखाई देती है। ऐसे ही संसारी प्राणी रागद्वेष के चश्मों से रहित नहीं होता। वीतरागी ही राग-द्वेष के चश्मों से रहित होता है इसलिये वह प्रकृत वस्तुओं को देखने में समर्थ होता है।

संसार के पदार्थ आपके लिये हितकारी भी प्रतिभासित होते हैं और कभी अहितकारी भी। वही वस्तु कभी आपके लिये राग का जनक बनती है तो कभी वही वस्तु द्वेष का जनक बनती है। कभी वही वस्तु सुखद भासती है तो कभी वही दु:ख रूप भासती है। वस्तु एक ही है वस्तु में भेद नहीं, भेद है दृष्टि के विकार में। कई बार दृष्टि में विकार आ जाता है। हम जब विकृत होते हैं तो वस्तु विकृत दिखायी देती है और जब दृग निर्मल होते हैं तो वस्तु निर्मल दिखायी देती है। दृग निर्मल भी हों किन्तु दृष्टिकोण एक हो तब तक निर्मल दृग भी वस्तु की सम्पूर्णता दिखाने में सफल व समर्थ नहीं होते इसीलिये अनंत दृष्टिकोण चाहिये।

माना कि किसी वस्तु को आप सामने से देखते हैं तो उसका कुछ और रूप दिखायी देता है, पीछे से देखते हैं तो कुछ और रूप दिखाई देता है, साईड से कुछ और। वह चारों दिशाओं से अलग-अलग दिखायी देता है उसके और भी कई रूप हो सकते हैं। किसी व्यक्ति से पूछा-जामुन कैसी होते है, उसने कहा-जामुन गोल होती है, यही प्रश्न दूसरे से पूछा-वह बोला जामुन जामुनी रंग की होती है, तीसरे से पूछा-वह बोला जब जामुन कच्ची होती है तो हरी होती है पक जाती है तो काली सी हो जाती है। किसी ने पूछा टमाटर कैसा होता है? वह बोला लाल होता है, कोई बोल गोल होता है, कोई बोला खट्टा होता है। जामुन-जामुन है, टमाटर-टमाटर है जामुन टमाटर नहीं हो सकता, टमाटर जामुन नहीं हो सकता किन्तु दोनों में साम्य भाव है दोनों पुद्गल हैं दोनों में भिन्नता है नाम अलग है गुण धर्म स्वभाव अलग है। पहली बार में किसी से पूछोगे कि भाई ये बताईये वृक्षों की पत्तियाँ कैसी होती हैं ? वह कहेगा हरी होती हैं। यह तो आपने वर्ण की अपेक्षा बता दिया किन्तु उसमें और भी बहुत सारी बातें होती हैं, देखने का कोण अलग-अलग है जिस कोने से देखेंगे वस्तु आपको वैसी ही दिखाई देगी, विपरीत कोण का अवलोकन आप नहीं कर सकेंगे।

एक व्यक्ति से उसके हाथ में पानी का गिलास थमाते हुये कहा-कहिये आपकी इसके संबंध में क्या राय है, वह कहता है इसमें राय देने की क्या बात है गिलास आधा खाली है। दूसरे से पूछा-वह बोला गिलास आधा भरा है। तीसरे से पूछा-वह बोला जो है सो है इसे खाली भी नहीं कह सकते भरा भी नहीं कह सकते। चौथे से पूछा बोला-एक अपेक्षा से भरा है, आधे गिलास की अपेक्षा से पूरा भरा है, ऊपर की अपेक्षा से खाली है, दृष्टिकोण सबके अलग-अलग हैं। सकारात्मक दृष्टि से सोचा जाता है तो वस्तु तत्त्व अनुकूल अनुकूल

दिखायी देती है, नकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाता है तो प्रत्येक वस्तु नकारात्मक दिखायी देती है।

एक बार द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों से कहा-मैंने आपको अध्ययन कराया, अब मैं आपकी परीक्षा लेना चाहता हूँ, आपके अंदर गुणग्रहण करने का भाव कितना जाग्रत हुआ, आपकी दृष्टि कितनी निर्मल हुयी है। शिष्यों ने कहा पूज्यवर जैसा आपका आदेश हम परीक्षा देने के लिये तैयार हैं। युधिष्ठर व सुयोधन (दुर्योधन) दोनों को बुलाया दोनों से कहा-आप नगरवर्ती गाँवों में जाओ अपने कागज कलम साथ में लेकर जाना इस गाँव में जितने भी अच्छे व्यक्ति हैं उन सबके नाम लिख कर लाना है। सुयोधन यह सुन पहले तो आश्चर्य चकित हुआ किन्तु गुरु का आदेश टालने का सामर्थ्य नहीं कर सका इसीलिये जी गुरुदेव कहकर चला जाता है नगर के अच्छे लोगों के नाम लिखने के लिये।

पुनः युधिष्ठर को बुलाकर कहा तुम्हें भी जाना है और इस गांव में रहने वाले सभी बुरे व्यक्तियों की नाम की लिस्ट बनाकर लाना है। वह भी गुरु आदेश मानकर चला गया। दोनों ने नगर में भ्रमण किया और संध्याकाल में लौटकर के आये, किन्तु दोनों के कागज खाली जैसे दिखायी दे रहे थे, गुरु ने सुयोधन से कहा-क्या आपने मेरे आदेश का पालन किया वह बोला जी गुरुदेव। मैं नगर में प्रायः सभी के घर गया और सभी व्यक्तियों से मिला, पर गुरुदेव क्या कहें मुझे इस ग्राम में कोई भी व्यक्ति अच्छा नहीं दिखाई दिया, अब आजकल हम और आप सब तो इसी ग्राम में रह रहे हैं इसलिए किसी का नाम तो लिखना ही था तो मैंने अपनी लिस्ट में एक ही नाम लिखा है और वह नाम है सुयोधन। गुरु ने कहा अच्छे व्यक्तियों में मात्र एक ही नाम लिखा है।

तब तक युधिष्ठिर भी आ गये-द्रोणाचार्य ने उनसे भी पूछा-वत्स ! क्या आपने अपना काम पूरा कर दिया, जी गुरुदेव ! मैं सभी जगह

गया, प्राय:कर सभी से मिला, गुरुदेव आपने बड़ा जटिल काम बताया था किन्तु मैंने पूरा करने का पूरा प्रयास किया और यह सूची बनाकर ले आया हूँ। द्रोणाचार्य ने देखा कि युधिष्ठर के हाथ में जो सूची थी उसके केवल एक ही नाम लिखा था-युधिष्ठर। द्रोणाचार्य ने पूछा-मतलब ? वे बोले-गुरुदेव इस नगर के आदमी बड़े ही भले हैं जहाँ भी गया वहाँ देखा कि क्या देवता तुल्य लोग हैं, उनका आदर सम्मान प्रशंसनीय है, क्या उनकी भक्ति और कर्त्तव्य निष्ठता है, गुरुदेव वास्तव में वे आदर्श व्यक्ति हैं आचार्य ने कहा फिर तुमने क्या किया-वह बोला गुरुदेव ! मुझे लगा इनके सामने मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, इसीलिये मुझे लगा कि इस गाँव में यदि कोई बुरा व्यक्ति है तो मैं हो सकता हूँ क्योंकि मैं बुरा व्यक्ति खोजने के लिये चला था इसलिये मैंने अपना नाम लिख दिया।

दुर्योधन उस गाँव में कोई अच्छा व्यक्ति न खोज सका, युधिष्ठर उसी गाँव में कोई बुरा व्यक्ति न खोज सका। गाँव वही था, व्यक्ति वही थे दृष्टिकोण दोनों का अलग-अलग था, इसी प्रकार आपके घर में, समाज में, संस्था में सब कार्य होते हैं एक व्यक्ति को लग रहा है कि कोई अच्छा कार्य नहीं हो रहा, उसे सर्वत्र बुराईयाँ ही बुराईयाँ दिखाई दे रही हैं दुर्योधन की तरह से अच्छाई कुछ भी दिखाई नहीं देती केवल अपनी ही अच्छाई दिखाई देती हैं। वहीं दूसरा व्यक्ति कहता है-अरे ! घर के सदस्य इतने अच्छे हैं, हमारी समाज बहुत नेक है, संस्था में सभी एक हैं अच्छे हैं, सभी इतने अच्छे हैं इन सबके बीच यदि कोई खराब है तो वो मैं हूँ। इस प्रकार के दृष्टिकोण वाला व्यक्ति अर्थात् जिसके पास युधिष्ठर जैसा दृष्टिकोण होता है उसे कभी कोई दु:खी नहीं कर सकता क्योंकि वह कभी किसी व्यक्ति/वस्तु विशेष को बुरा नहीं मानता और जिसके पास दुर्योधन जैसा दृष्टिकोण होता है उसे कोई सुखी नहीं कर सकता।

260

महानुभाव ! दृष्टिकोण भी हमारे शुभ अशुभ का निमित्त बन जाते हैं एक व्यक्ति तो कहता है देखो तो सही विधाता ने कितनी बड़ी भूल की है अरे बनाया भी तो क्या बनाया दो रात्रि के बीच में एक दिन बनाया, दूसरा कहता है धन्य है भगवान् तेरी महिमा धन्य है कहाँ तक तेरी स्तुति व आराधना करूँ दो दिनों के बीच में मात्र एक रात्रि क्या कहना। महानुभाव ! बात वही है किन्तु एक व्यक्ति को दो रात्रि के मध्य एक दिन व दूसरे को दो दिन के बीच में एक रात्रि दिखायी देती है। देखने में सबका अपना अलग-अलग दृष्टिकोण है।

जब दृष्टिकोण बदलता है तब व्यक्ति के भाव बदलने लगते हैं, व्यक्ति का दु:ख सुख में बदल जाता है एवं सुख दु:ख में बदल जाता है।

एक सेठ जी थे, उनके घर में एक नौकर था वह बहुत साल से उनकी सेवा कर रहा था। वह बहुत वफादार था। एक दिन उस नौकर के हाथ से सेठ जी की प्रिय घड़ी गिरकर के टूट गयी। नौकर को दु:ख तो बहुत हुआ और शाम को जैसे ही सेठ जी घर आये तो उसने हाथ जोड़कर क्षमा मांग ली। सेठ जी ने कहा-अरे ये घड़ी तो मैं विदेश से लेकर के आया था, मुझे बहुत ज्यादा प्रिय थी। सेठ जी क्या करते उसे डांटा और क्षमा कर दिया। वह नौकर अपने स्थान पर चला गया, सेठ जी अपने कक्ष में सोचते रहे अरे मेरी इतनी सुंदर व महंगी घड़ी थी विदेशी घड़ी थी और उसी में खो गये। थोड़ी देर बाद देखते हैं कि वह नौकर सेठ के पास ही सो रहा था और उसके खुर्राटे की आवाज आती है। सेठ जी घड़ी के टूट जाने से सो नहीं पा रहे हैं किन्तु वह सेवक जिससे घड़ी टूटी थी वह खर्राटे भरकर आराम से सो रहा था।

प्रात:काल हुआ सेठ जी ने सोचा मैं तो रात भर घड़ी के विकल्प में सो नहीं पाया अब क्या करना चाहिये। संध्याकाल में सेठ जी ने नौकर को बुलाया कहा-सेवक एक बात है वह कहने लगा-कहिये मालिक क्या बात है। वे बोले-बात यह है कि तू मेरा बड़ा प्यारा नौकर है तूने इतने सालों से मेरी बड़ी वफादारी से सेवा की है, मैं तुझसे बहुत संतुष्ट हुआ हूँ कल मैं सोच रहा था कि मैं तुझे कोई बहुत अच्छी ईनाम दूँ, जो मेरी सर्वप्रिय वस्तु थी वह घड़ी मैं तुझे ईनाम में देने वाला था, मेरी निशानी तेरे पास रहती किन्तु वह घड़ी अब टूट गयी, टूटी घड़ी को मैं क्या ईनाम में दूँ, अब सोचता हूँ कोई और वस्तु तुझे देने के लिये देखूँगा। संध्याकाल पूर्ण हुआ वह सेठ तो इतना कहकर अपने कमरे में गये और यह सोचकर कि घड़ी का क्या विकल्प करना मानो मैंने वह घड़ी नौकर को दे ही दी अब टूट गयी है तो फेंक दी जायेगी और चुपचाप सो गये। अब नौकर तो रात भर करवट बदलता रहा अरे! वह घड़ी नहीं टूटती तो मुझे मिल जाती आज नौकर नहीं सोया, कल मालिक नहीं सोया था क्योंकि कल दृष्टि मालिक की घड़ी के प्रति अपनत्व की थी और आज दृष्टि नौकर की घडी के प्रति अपनत्व की हो गयी। कल नौकर घड़ी को मालिक की समझ रहा था इसलिये खुर्राटे मार कर सो रहा था, आज मालिक घड़ी नौकर की समझकर खुर्राटे मारकर सो रहा है।

दृष्टिकोण बदलते ही व्यक्ति के व्यक्तित्व में, व्यवहार में, विचार में सबमें अन्तर आ जाता है, व्यक्ति की अनुभूति में अंतर आ जाता है।

एक मुनीम किसी सेठ के यहाँ नौकरी करता है तो सोचता है सेठ के व्यापार में लाभ हो या हानि मुझे क्या मतलब मुझे तो अपनी ड्यूटी पर जाना है, बंधी पगार लेना है। वह सबसे अलग है लाभ अलाभ में हर्ष व खेद का भाव नहीं होता। किन्तु सेठ ने कहा-मुनीम

साहब अब हम तुम्हें अपनी कम्पनी में 2% का हिस्सेदार बनाते हैं, अब वह मुनीम जब लाभ होता है तो आँखें चमक उठती हैं और घाटा होता है तो आँखों में आँसू आ जाते हैं। व्यापार ज्यों की त्यों वही चल रहा है, वही कारोबार है किन्तु अब दृष्टि बदल गयी। अभी उस व्यापार में नौकर था तब उसे कुछ लेना-देना नहीं था चाहे लाखों का मुनाफा हो या घाटा हो उसे तो उतना ही वेतन मिलना है किन्तु अब उसका व्यापार से लेना देना है अब वेतन से कोई लेना-देना नहीं है।

महानुभाव ! जैसे ही व्यक्ति की दृष्टि बदलती है वैसे ही उसकी सृष्टि बदलने लगती है। हमें दृश्यों को नहीं बदलना है, हमें इस ज्ञाता-दृष्टा आत्मा को नहीं बदलना है, हमें अपने इन दृग (नेत्रों) को नहीं बदलना है, हमें देखने का दृष्टिकोण हम कहाँ से किस दृष्टि से देख रहे हैं जो हमारी दूरदृष्टि है उसे हम बदलते चले जायें, हम सभी पाईंट से देखें, विचारें, समझें तो हम वस्तु के समग्र स्वरूप को देखने में समर्थ हो जायेंगे। वस्तु कभी भी एकान्तत: अहितकारक नहीं है और कोई भी वस्तु संसार में एकान्तत: सुखद भी नहीं कही जा सकती। सुखद व दुखद हमारी दृष्टि पर निर्भर करती है, वस्तु वस्तु है, इसीलिये हम अपने दृष्टिकोण को बदलने का सम्यक् पुरुषार्थ करें तब नि:संदेह हम अनंत दृष्टियों को प्राप्त करके अनंतदृष्टा बन जायेंगे, अनंतज्ञानी बन जायेंगे और अपने ही अनंत स्वभावों को प्राप्त कर लेंगे, अनंत काल के लिये शाश्वत सुख को प्राप्त करते हुये हम सिद्धत्व को प्राप्त कर लेंगें। आप और हम सभी अपने स्वभाव को प्राप्त करें यही भावना भाता हूँ और इसी मंगल भावना के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

॥ श्री शांतिनाथ भगवान की जय॥

२८. मर्यादा

जीवन नदी की धारा की तरह गतिशील है। प्रारंभ में जीवन को नदी की पतली धारा की तरह मोड़ना संभव है किन्तु बाद में जीवन की धारा को मोड़ना बड़ा कठिन है। जीवन की प्रारंभिक दशा छोटे पौधे की तरह है जिसे चाहे जिस ओर मोड़ा जा सकता है, जैसा चाहे वैसा ढाला जा सकता है। प्रारम्भिक जीवन गीली मिट्‌टी की तरह से भी माना जा सकता है किन्तु बाद में वह शुद्ध कलश की तरह से होता है या पाषाण की तरह से होता है जिसे मोड़ना बड़ा कठिन होता है। जीवन जीने के पहले एक आउटलाईन खींचना बहुत जरूरी है, जैसे नदी के दो तट होते हैं उन तटों के मध्य बहने वाली नदी अपने गन्तव्य तक पहुँचने में समर्थ होती है, यदि वह अपने तटों का उल्लंघन करती है, तब वह नदी समुद्र तक नहीं पहुँच पाती, मध्य में ही मरूथल में बिखर जाती है, अपने अस्तित्व को तो समाप्त करती ही है किन्तु अन्य अनेक जीवों के अस्तित्व को भी समाप्त करने में समर्थ हो जाती है। जो नदी सृजग थी वह नदी संहारक हो जाती है। अपने अस्तित्व को खोना व दूसरों के अस्तित्व को मिटा देना यह मर्यादा विहीन पुरुषों का ही कार्य होता है।

मर्यादाविहीन पुरुष भी इस नदी की तरह से हैं। वह उस ट्रेन की तरह से हैं जो अपनी पटरी को छोड़कर आगे बढ़ जाती है, वह नि:संदेह मंजिल तक तो पहुँचती ही नहीं स्वयं भी धराशाही होती है, उसका आश्रय लेने वाले भी मृत्यु के द्वार तक पहुँच जाते हैं। मर्यादा में रहने वाला पुरुष केवल पुरुष ही नहीं कहलाता पुरुषों में भी उत्तम पुरुष कहलाता है। मर्यादा की रक्षा करने वाला आदर्श होता है, मर्यादा की रक्षा करने वाला श्रेष्ठ होता है, वही प्रशंसनीय है, पूज्यनीय, वंदनीय, अनुकरणीय होता है, वही वास्तव में नेतृत्व करने की क्षमता रखता है।

मर्यादा चाहे धन की हो, चाहे परिवार की हो, चाहे देश की हो, चाहे समाज की हो, संस्था की हो, चाहे धर्म की हो मर्यादा मर्यादा है। जिसने भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन किया है वह निन्दनीय बना है, जिसने भी मर्यादा का उल्लंघन किया है उसका तिरस्कार हुआ है, जिसने भी मर्यादा का उल्लंघन किया है उसने नि:संदेह दु:खों की सेज को प्राप्त किया है। मर्यादा का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति या तो पराधीन दशा को प्राप्त होता है, गुलामी की जंजीरों को पहनता है अथवा दु:खों के गर्त में दीर्घ काल के लिये गिर पड़ता है। यदि अपनी मर्यादा में रहने वाली पतंग आकाश में रहती है तो ऊँचाई को छूती जाती है जैसे ही मर्यादा का उल्लंघन करती है, डोरी के बंधनों को तोड़ देती है तब नि:संदेह वह ऊँचाईयों को नहीं जमीन पर पड़ी धूल को चाटती रहती है। मर्यादा का उल्लंघन करने वाले पुरुषों की ओर भी एक दृष्टि डालें-

सीता ने यदि दु:ख को प्राप्त किया, रावण ने उसका हरण किया वह इसलिये कि उसने मर्यादा का उल्लंघन किया। कहते हैं-लक्ष्मण रेखा के बाहर आयी सीता जी, इसलिए रावण उठाकर ले गया। रावण ने अपनी मर्यादा का उल्लंघन किया इसलिये वह अधोगति को प्राप्त हुआ। कंस ने मर्यादा का उल्लघंन किया, साधुओं को जेल में डाल दिया धर्म का उल्लंघन किया, न्याय मार्ग का अतिक्रमण किया इसलिये निंदा और अपवाद को प्राप्त करके कुमौत को प्राप्त हुआ व दुर्गति का पात्र बन गया। मर्यादा का उल्लंघन तो महाराज धृतराष्ट्र ने भी किया था इसीलिये तो अपनी आँखों के आगे अपने 100 पुत्रों का शोक उन्हें झेलना पड़ा। मर्यादा का उल्लंघन शिशुपाल ने भी किया, कहा जाता है श्री कृष्ण ने उसे 100 बार की गलती को क्षमा करने का वचन दिया था किन्तु जब वह 100 को पार कर देता है तब उनके हाथों नि:संदेह मृत्यु को प्राप्त करता है।

मर्यादा एक ऐसा रक्षा कवच है जिसके अंदर शत्रुओं का प्रवेश नहीं होता। जैसे गुरु के चरण सान्निध्य में रहने वाले शिष्य सुरक्षा को प्राप्त होते हैं-'चत्वारि शरणं' उन चार शरणों में रहने वाली आत्मा कर्मों से व पापों से सुरक्षित रहती है, ऐसे ही मर्यादा के अंदर रहने वाला चाहे कोई भी प्राणी क्यों न हो वह नि:संदेह अपना सुखद जीवन दीर्घकाल तक व्यतीत करता रहता है। उसके मार्ग में कोई बाधा नहीं आती। मर्यादा का उल्लंघन करने वाले बहुत हैं किन्तु यहाँ उनके उदाहरण प्रस्तुत कर अपना मन खराब नहीं करना, हमें तो उनकी जीवनी व कथा कहानी सुननी है जिन्होंने अपनी मर्यादा का पालन किया, मर्यादा की रक्षा की और लोकोत्तम पुरुष कहलाये जैसे-अष्टम बलभद्र श्री रामचन्द्र जी।

यूँ तो बलभद्र नव होते हैं किन्तु उन नौ में विश्व प्रसिद्ध अष्टम बलभद्र हुये क्योंकि वे मर्यादा की रक्षा करने वाले थे, इतना ही नहीं चतुर्थकाल में ये ही एक ऐसे पुरुष माने जाते हैं जिन्हें ''मर्यादा पुरुषोत्तम'' कहा जाता है वे इस उपाधि से इसलिये सुशोभित नहीं हुये कि उन्होंने रावण की स्वर्ण लंका को जीत लिया या उन्होंने शिव जी के धनुष को तोड़कर सीता को प्राप्त कर लिया या उन्होंने राक्षसों का संहार कर दिया था, उन्होंने यथाजात दिगम्बर दीक्षा को अंगीकार कर मोक्ष को प्राप्त किया वे मर्यादा पुरुषोत्तम इसलिये कहलाये क्योंकि उन्होंने अपने जीवन के किसी भी मोड़ पर जीवन के किसी भी पथ पर अपनी सीमा रेखा का उल्लंघन नहीं किया।

पिता के वचनों का निर्वाह स्वयं तो किया ही किन्तु स्वयं अपने पिता के वचनों की रक्षा करते हुये, अपनी मर्यादा की रक्षा करते हुये भाई भरत को भी समझाते हैं, जब भरत उन्हें मनाने के लिये जंगल में अपनी तीनों माताओं कैकया, कौशल्या और सुमित्रा को साथ में लेकर के पहुँचे। जैन दर्शन कहता है चारों माताओं सुप्रभा को भी साथ

लेकर पहुँचे तो सभी ने रामचन्द्र जी को समझाने का प्रयास किया कि महाराज दशरथ का वियोग हो चुका है वे सन्यास को स्वीकार कर चुके हैं अब आपको अयोध्या लौट करके चलना चाहिये या वैदिक परम्परा के अनुसार राजा दशरथ दिवंगत हो गये हैं इसलिये आपको चलना आवश्यक है।

श्रीराम चन्द्र जी ने भरत से कहा-भईया भरत ! हम तुमसे अपेक्षा रखते हैं कि पिताजी के वचनों की रक्षा तुम करोगे और मैं आपसे अपेक्षा रखता हूँ कि पिता जी के वचनों का उल्लंघन करने वाली प्रार्थना नहीं करोगे, तुम मुझसे ऐसा आग्रह नहीं करोगे जिस आग्रह से पिताजी के वचनों का उल्लंघन होता हो। हम और आप दोनों मिलकर पिताजी के वचनों का पालन करें, अपने वचनों की रक्षा करने के लिये पिताजी ने मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया, माँ को वरदान दिया है पिताजी ने कि राज्य का संचालन भरत करेगा इसलिए आपको ही राज्य का संचालन करना चाहिये, पिताजी के वचनों का पालन करना चाहिये।

भरत राम के सामने रो रहे थे, उनकी राम के प्रति भक्ति उमड़-उमड़ कर आ रही थी, तो राम कर्त्तव्यबोध का पालन करते हुये, भरत की भक्ति में मेड़ बनकर नीचे खड़े हो गये, भरत की भक्ति की बाढ रामचन्द्र की मर्यादा का उल्लंघन न कर सकी। भरत को अपनी भक्ति समेट कर रखनी पड़ी। पुनः कैकया माँ रामचन्द्र से कहती है-पुत्र तुम मुझमें या कौशल्या में अंतर मानते हो क्या? वे बोले-नहीं माँ! तो वे बोलीं ठीक है तुम अभी अयोध्या लौटकर चलो। वे बोले-माँ तुमने तो सदैव मुझे मर्यादा का पाठ सिखाया है तो फिर क्या आप ही ये चाहेंगी कि एक बेटा अपने पिता के वचनों का पालन नहीं करे, जिन पिता ने अपने वचनों की रक्षा करने के लिये अपने प्राणों को विसर्जित कर दिया, जिन पिता ने अपने वचनों की रक्षा के

लिये अपने प्राणों से प्रिय पुत्र को अपनी आँखों से ओझल कर दिया, वह पिता जो हमें मर्यादा सिखा कर गये हैं, उसका उल्लंघन करना ही क्या हमारा धर्म है माँ। क्या माँ आप वास्तव में चाहती हैं कि हमारे पिता का नाम कलंकित हो।

कैकया रोती हुयी वहाँ से चली जाती है नि:संदेह केवल राम ने अपनी मर्यादा का पालन नहीं किया, राम ने सबको सिखाया कि आप सभी को अपनी-अपनी मर्यादा का पालन करना चाहिये। जब रामचन्द्र जी वनवास के लिये जाने लगे उस समय कौशल्या ने रामचन्द्र जी से कहा-पुत्र मैं तुम्हारे साथ चलूँगी तब रामचन्द्र जी कहते हैं-माँ ! नारी का धर्म है कि वह जब तक कुंवारी है तब तक पिता के साथ रहे, विवाहोपरांत उसे पति के साथ रहना चाहिये यदि पति नहीं है तब पुत्र के साथ रहना चाहिये। तुम्हारा कर्त्तव्य है अपने पति के साथ रहना और आप जानती हैं मेरे बिना वे दु:खित होंगे तो उस समय आपके सिवाय अन्य कोई और उन्हें धैर्य नहीं बंधा सकता।

कौशल्या को जब राम ने कर्त्तव्य पाठ पढ़ाया तो ये शब्द सीता जी ने सुने और कहा-मैं भी आपके साथ चलूँगी रामचंद्र जी सीता जी से कहने लगे-नहीं आपको यहीं रहकर माँ व पिताजी की सेवा करनी है, तुरंत सीता जी बोल पड़ी-अरे ! अभी तो आप अपनी माँ से कह रहे थे कि स्त्री को अपने पति के साथ रहना चाहिये। अब आप मुझे अपनी माँ के पास रहने के लिये क्यों बाध्य करते हैं। राम ने कहा-तुम ठीक कहती हो मर्यादा यही है और यदि आप अपनी मर्यादा का पालन करना चाहती हैं तो आप चल सकती हैं। लक्ष्मण भी अपने भाई के मोह में रंगा था, वह भी अपने भाई के साथ चल देता है।

महानुभाव ! रामचन्द्र जी का जीवन देखें-जहाँ पग-पग पर मर्यादा रही और उन्होंने कभी भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। चाहे चन्द्रनखा जब रामचन्द्र जी का चित्त मोहित करने के लिये

आयी किन्तु वे उस पर मोहित नहीं हुये। चाहे वज्रकर्ण की रक्षा का कर्त्तव्य बोध हुआ तो रामचन्द्र जी ने तुरंत लक्ष्मण जी को संकेत किया इसकी रक्षा करो, धर्म की रक्षा करो। चाहे कोई भी प्रसंग क्यों न आया हो किन्तु रामचन्द्र जी सुमेरु की तरह अड़े रहे। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी का जन्म से लेकर अन्त समय तक परमात्म दशा तक मर्यादा का उल्लंघन शास्त्रों में पढ़ने, सुनने व देखने में नहीं आया इसीलिये तो आज विश्व के प्रत्येक धर्मावलम्बी विश्व के प्रत्येक देश में रामचन्द्र जी को मानने वाले जितने लोग हैं उतने अन्य किसी देवी देवता को मानने वाले नहीं मिलेंगे।

मर्यादा की रक्षा करने के लिये-राजा हरिश्चन्द्र अपना राज्य देकर के चले गये। स्वयं ने मरघट की रखवाली की, उनकी पत्नी किसी द्विज के यहाँ पूजादि का कार्य करती, उनका पुत्र पूजा के लिये पुष्पादि लेकर आता था। देवताओं ने उनकी परीक्षा भी ली किन्तु वे विचलित नहीं हुये, उनके पुत्र को किसी देवता ने सर्प बनकर के डस लिया और जब उनकी पत्नी संस्कार करने के लिये जाती है तो वे मरघट की रखवाली करते हुये कहते हैं पहले टैक्स चाहिये कौन किसका पति कौन किसका पुत्र, कौन किसकी पत्नी कुछ नहीं पहले यहाँ का कर चुकाओ मैं अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकता। धन्य है ऐसे पुरुषों के लिये जिन्होंने अपनी उस दशा में भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया, मोह उन्हें डिगा नहीं पाया इसीलिये तो आज पूरा लोक उन्हें स्मरण करता है।

मातृभूमि की रक्षा करने के लिये, मर्यादा का पालन करने वाले राजपूताने के महाराणा प्रताप सिंह, जो बाल्यावस्था से ही मर्यादाओं के लिये ही संघर्ष का सामना करते रहे। महानुभाव ! धर्म के लिये साधक, सन्यासी जो भी धर्म का रूप धारण करता है जीवन में चाहे कितने ही उपसर्ग आयें या परीषहों को सहन करना पड़े किन्तु वे

उपसर्गों से कभी डिगते नहीं, डरते नहीं व मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं मर्यादा में रहने वाला पुरुष नि:संदेह परमात्म पद को प्राप्त करता है और मर्यादा का उल्लंघन करने वाला पुरुष नि:संदेह श्वभ्र नरक की अवस्था को प्राप्त करता है। जो राहगीर पर्वत की चोटी पर चढ़ना चाहता है वह यदि सीढ़ियों के साथ चढ़ता जायेगा तो चोटी तक पहुँच जायेगा और सीढ़ियों की मर्यादा का उल्लंघन करते ही उसका पैर फिसलकर नीचे गिर जायेगा।

मर्यादा सब जगह आवश्यक है। अपने परिवार की भी एक मर्यादा बनाओ। अपनी एक आन-बान-शान होना चाहिये, अपने धर्म की भी मर्यादा होना चाहिये, अपने कुल की भी कुछ मर्यादा होना चाहिये, सब जगह मर्यादा आवश्यक है। अरे पशु-पक्षी भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। पत्थर के बारे में कहा जाता है कि लकीर आने पर निशान पड़ जाता है, वहीं से टूट जाता है किन्तु मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। सर्प को यदि गोला खींचकर उसमें बंद कर दिया जाये तो वह उसको तोड़कर के बाहर नहीं आता। पुष्प में बंद हुआ भ्रमर उसकी सुगंधि में आसक्त होकर अपनी प्रेम की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता प्रेम को तोड़ता नहीं है। अपने प्राणों को छोड़ना स्वीकारता है किन्तु प्रेम की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता।

एक चातक पक्षी प्यास से व्याकुल होकर अपनी माँ से कहता है-माँ मेरा कंठ सूख रहा है, प्राण कंठ में आ गये मैं पानी पीना चाहता हूँ। उसकी माँ उसको समझाती है बेटा ! हम चातक हैं हम सरोवर का पानी नहीं पीयेंगे हम कोई राजहंस नहीं जो मान सरोवर का पानी पीलें, हम कोई मछलियाँ नहीं जो झील और नदी का पानी पीते हैं, हम चातक पक्षी हैं हम तो बरसात का पानी पीते हैं, स्वाति नक्षत्र का पानी पीयेंगे जिस स्वाती नक्षत्र की बूंद सीप में आ जाये तो मोती

बन जाती है। वह स्वाती नक्षत्र में बरसा पानी ही हमारी तृषा को संतृप्त करने में समर्थ होता है हम अन्य पानी नहीं पी सकते। वह बोला-माँ मैं इतनी इंतजारी नहीं कर सकता। माँ ने कहा ठीक है-जैसा तेरे मन करे और वह चातक पक्षी उड़कर मान सरोवर की ओर जाता है, कहता है मैं किसी छोटे-मोटे गड्ढे का पानी नहीं पीऊँगा।

वह चातक पक्षी चलते-चलते थक गया और एक वृक्ष की शाखा पर बैठ गया, दोपहर का समय था उस समय उसी वृक्ष के नीचे एक वृद्ध किसान भी बैठा हुआ था व साथ में उसका बेटा भी था। बेटे ने अपने पिता से पूछा-पिताजी आप इतनी देरी से क्यों आये, उसने कहा-बेटा मार्ग में मुझे एक रुपयों की थैली मिली थी, उसमें सोने के सिक्के भरे थे उसे लेकर उन रुपयों के मालिक तक पहुँचाने के लिये पता लगा रहा था, इसलिये मुझे आने में विलम्ब हो गया। वह बोला-पिताजी आप उन सिक्कों की थैली को यहाँ लेकर आ जाते, क्यों व्यर्थ में परिश्रम करते रहे। किसान बोला-नहीं बेटा हमारे कुल की यह मर्यादा है कि हम ईमानदारी से प्राप्त धन का ही उपभोग करते हैं, जो हमारे भाग्य का नहीं उसका नहीं। पिताजी-इससे क्या होता है? बेटा-कुल की मर्यादा रखने वाला ही जीवंत कहलाता है, जो कुल की मर्यादा का उल्लंघन करता है वह कभी जीवंत नहीं कहलाता।

वह समझाते हुये अपने पुत्र से कहता है कि अरे चातक पक्षी भी अपने प्राण दे देता है किन्तु कभी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। ये शब्द जब उसी पेड़ पर बैठे उस चातक पक्षी ने सुने तो वह अपनी माँ के पास लौटकर गया। माँ ने पूछा-बेटा पानी पी लिया, वह बोला-नहीं माँ पानी तो नहीं मिला किन्तु बहुत कुछ मिल गया-क्या मिल गया बेटा-माँ मुझे नहीं मालूम था कि आप मुझे पानी पीने से क्यों रोक रही थीं, आज मालूम चला कि हमारे कुल की मर्यादा की

चर्चा तो मनुष्यों में भी होती है, मनुष्य भी मानते हैं कि चातक पक्षी भले ही प्यासा मर जाये किन्तु किसी कूप, सरोवर या गड्ढे का पानी नहीं पीता वह वर्षा का ही पानी पीता है। चातक पक्षी की मर्यादा उदाहरण के रूप में मानी जाती है माँ, इसलिये मैं प्राण भले ही छोड़ दूँ किन्तु ऐसा-वैसा जल नहीं पीऊँगा।

महानुभाव ! निःसंदेह वह मर्यादा बहुत बड़ी चीज है। एक बहुरूपिया राजा के पास आया और आकर के कहने लगा-महाराज ! मैं बहुत अच्छे-अच्छे स्वांग रचता हूँ, इतने अच्छे स्वांग रचता हूँ कि कोई मुझे पहचान नहीं सकता कि असली रूप में क्या था। राजा ने कहा-हम तुम्हारी बातों पर ऐसे विश्वास नहीं कर सकते-वह कहता है यदि आप नहीं मानते तो मैं स्वांग रचता हूँ, किन्तु एक बात है कि आपको यदि मेरा स्वांग अच्छा लगा तो मैं 5 रु. से कम नहीं लूँगा-राजा भी इस बात के लिये राजी हो गया, वह बहुरूपिया वहाँ से चला जाता है और नगर के बाहर किसी शांत स्थान पर जाकर बैठ जाता है, अपने परिणामों को शांत करता है, अपने चेहरे पर शांति लाता है और रोम-रोम से शांत मुद्रा को धारण करता है।

वह भद्र परिणामी केसरिया वस्त्रों को पहनकर नगर के बाहर पर्वत की चोटी पर बैठ जाता है, उसे देखकर लोगों को लगा कि ये तो कोई बहुत बड़े संत महात्मा है और सभी उसको प्रणाम करने लगे, अनेक चढ़ावा चढ़ाने लगे किन्तु वह संत आँख बंद करके बैठा रहा। वहाँ नगर के सेठ, जौहरी, बड़े-बड़े लोग आकर भी उसे अपना मस्तक झुकाते किन्तु उसने किसी के सामने अपनी आँखें नहीं खोली। पुनः राजा के महामंत्री को पता चला तो वह रत्नों के थाल लेकर भेंट चढ़ाने के लिये आया कहने लगा-हे महात्मन् ! आपकी कृपा दृष्टि हम पर भी कीजिये इन्हें स्वीकार कीजिये किन्तु महात्मा ने फिर भी अपनी आँखें नहीं खोली और अपने ध्यान में मग्न रहे। यह समाचार

राजा के कानों तक भी पहुँचा कि हमारे नगर में बहुत बड़े तपस्वी महात्मा आये हैं पूरा नगर उनके दर्शनार्थ पहुँचा है, राजा भी स्वयं को रोक न सका और उन महात्मा के चरणों में पहुँचा और कहता है-महात्मन् मुझ पर कृपा दृष्टि कीजिये, आशीर्वाद दीजिये आपको मैं अपना आधा राज्य भेंट में चढ़ाता हूँ उसे आप स्वीकारिये, मैं आपसे बहुत प्रभावित हूँ आप कृपया अपनी आँखें खोलिये और मुझे आशीर्वाद दीजिये, किन्तु संत महात्मा ने अपनी आँखें नहीं खोली।

राजा, मंत्री नगर के सभी जन लौटकर घर आ गये। रात्रि भी हो गयी, पुनः प्रातःकाल तक भी महात्मा ज्यों की त्यों बैठे रहे। तीन दिन बाद वे महात्मा जी वहाँ से विहार करके चले गये, अदृश्य हो गये, अन्तर्ध्यान हो गये किसी को दिखाई नहीं दिये, किन्तु 3 दिन के बाद बहुरूपिया पुनः राजा के दरबार में पहुँचा कहता है-महाराज मुझे मेरा 5 रु. का पुरस्कार दीजिये। राजा ने कहा-तुमने कोई स्वांग तो दिखाया ही नहीं कैसा पुरस्कार? वह बोला महाराज मैंने स्वांग तो दिखाया था। वह स्वांग आपने भी देखा, मंत्री-पुरोहित व सभी नगरवासियों ने भी देखा। कौन सा स्वांग दिखाया तुमने, तुमने क्या रूप बनाया था? वह बोला महाराज क्षमा करें मैंने एक साधु का रूप बनाया था मैं साधु का स्वांग कर रहा था। कब ? जब उस पहाड़ पर मैं तपस्या रत था तब।

राजा ने कहा-जब उस समय लोग तुम्हारे सामने रत्नों के थाल चढ़ा रहे थे, हमने आपको आधा राज्य भी दिया तब आपने उसे स्वीकार क्यों नहीं किया। तब आपने अपने नेत्र क्यों नहीं खोले? महाराज ! उस समय मैं साधु था। साधु रहते हुये साधु की मर्यादा का उल्लंघन कैसे कर सकता था, साधु तो किसी से कुछ ग्रहण करता ही नहीं है वह तो देना जानता है लेना नहीं जानता, वह मुट्ठी भर लेता है दरियाभर लौटाता है उसे भौतिक सम्पत्ति माया से क्या लेना देना इसीलिये मैंने तब अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। वहाँ पर

वही मेरी मर्यादा थी, अब यहाँ पर मेरी मर्यादा है कि मैं पुरस्कार के रूप में आप से 5 रु. प्राप्त करूँ और आप भी अपनी मर्यादा का पालन करते हुये मुझे पुरस्कार दीजिये। राजा ने उसे पुरस्कृत भी किया साथ ही और भी बड़ा पुरस्कार दिया कहा-यह तो तूने 5 रु. मांगे हैं। मेरी भी मर्यादा है इस स्वांग ने मेरा अंतरंग सुधार दिया, मुझे भावुक कर दिया, जिस रूप को देखकर मैं अपनी विशुद्धी बढ़ा सकता हूँ और उसे खूब इनाम दिया।

महानुभाव ! जब उस बहुरूपिया ने अपनी मर्याया का उल्लंघन नहीं किया तो वह सबकी दृष्टि में पूज्य हो गया, बताते हैं उस बहुरूपिया को राजा ने अपना सारा वैभव दे दिया और राजा स्वयं सन्यास को प्राप्त कर लेता है। इसीलिये कहा जाता है कि मर्यादा का लोप कभी नहीं करना चाहिये, जिस किसी ने भी अपनी मर्यादा का लोप किया है, चाहे मर्यादा का लोप द्रोणाचार्य, कृपाचार्य ने किया हो, चाहे युधिष्ठिर ने किया हो, चाहे गांधारी या धृतराष्ट्र ने किया हो जिसने भी मर्यादा का ध्यान नहीं रखा उसकी निगाह सदैव नीची हुयी है, वह सबके सामने श्रेष्ठ पुरुषों की सभा में सम्मान व आदर को प्राप्त नहीं कर पाता, मर्यादा का लोप करने वाला हीन भावना से भर जाता है।

आप और हम सभी मर्यादा की रक्षा करें, मर्यादा की रक्षा करना ही आत्मा की रक्षा है, प्राणों की रक्षा है, धर्म की रक्षा है। जहाँ मर्यादा की रक्षा है वहाँ संस्कृति की रक्षा है जब मर्यादा चली गयी तो प्राण मृत्यु से ज्यादा बदतर हो जाते हैं इसलिये हम और आप सभी मर्यादा की रक्षा के लिये कृत संकल्पित हों और जीवन में अनुपम सुख शांति का अनुभव करें। यही मंगल भावना मैं आप सभी के लिये भाता हूँ। इसी मंगल भावना के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''श्री शांतिनाथ भगवान की जय''

नोट